पुस्तक मिलने का स्थान

१ श्री अभय जैन ग्रन्थालय
नाहटो की गवाड
वीकानेर (राजस्थान)

२ नाहटा ब्रदर्स,
४ जगमोहन मल्लिक लेन
कलकत्ता-७.

३ जौहरी श्री राजरूप जी टाक
जौहरी वाजार, टाक भवन,
जयपुर-३ (राजस्थान)

४ श्री छुट्टनलाल जी वैराठी
जौहरी वाजार
जयपुर-३ (राजस्थान)

महावीर निर्वाण स० २५०१
विक्रम स० २०३२

ईस्वी सन् १९७५

मुद्रक
महावीर प्रेस,
भेलूपुर, वाराणसी।
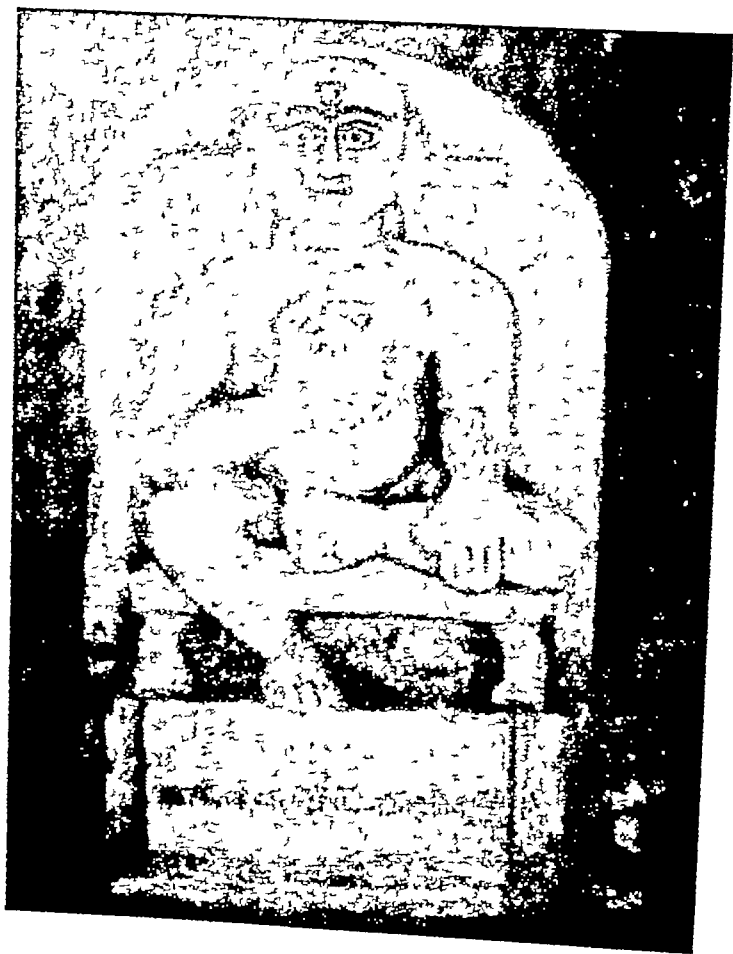
शासन प्रभावक श्री जिनप्रभ सूरि मूर्ति
(शत्रुंजय महातीर्थ खरतर वसही)

प्रकाशकीय

जैन-शासन की प्रभावना करने वाले महान् आचार्यों ने समय-समय पर शासन की रक्षा, प्रभावना और जैन-धर्म का प्रचार करके शासन का गौरव बढाया है। भगवान् महावीर का शासन ढाई हजार वर्षो तक अविच्छिन्न रूप से सुचारु रूप में जो चला आ रहा है, यह उन्ही आचार्यों की महान् देन है। जैन-धर्म में उन शासन-प्रभावक आचार्यों की बडी भक्ति-भाव से प्रशसा और पूजा की जाती रही है, उनमें खरतर-गच्छ के महान् आचार्यो का विशिष्ट एव उल्लेखनीय स्थान है। खरतर-गच्छ के आचार्यों में युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरि जी, उनके शिष्य मणिधारी जिनचद्रसूरि जी और उनकी परम्परा में प्रगट-प्रभावी श्री जिनकुशलसूरिजी और सम्राट् अकबर प्रदत्त युगप्रधान पद-धारक श्री जिनचन्द्रसूरि जी—ये चार तो दादा साहब के नाम से प्रसिद्ध और पूज्यमान हैं। उनकी प्रतिमाएँ, चरण दादावाड़ियो और जिनालयो में सैकडो हजारो की सख्या में भारत के कोने-कोने में विद्यमान-पूज्यमान हैं। उनकी जीवनी और स्तवना सम्बन्धी सैकडो रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। उससे भी अधिक अप्रकाशित स्तवनादि साहित्य ज्ञान-भडारो में पडा है। इन चारो दादा गुरुओ के जीवन-चरित्र हम बहुत वर्ष पूर्व प्रकाशित कर चुके हैं और उनके सस्कृत व गुजराती अनुवाद भी छप चुके हैं, कुछ छपने वाले हैं।

युगप्रधान चारो दादा साहब की ही भाँति खरतर-गच्छ में एक पाँचवें दादाजी महान् शासन-प्रभावक और हो चुके है जिनके सम्बन्ध में जनसाधारण को बहुत ही कम जानकारी है। कई वर्ष पूर्व प० लालचंद भगवान गाधी के लिखित "जिनप्रभसूरि अने सुलतान मुहम्मद" नामक गुजराती भाषा व देवनागरी लिपि में ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था, उसके बाद हमने विधिमार्ग-प्रपा के प्रारम्भ में श्रीजिनप्रभकी जीवनी सक्षेप में प्रकाशित की थी। आव-

श्यकता थी ऐसे महान् विद्वान् और शासन-प्रभावक आचार्य के व्यक्तित्व एव कृतित्व पर स्वतत्र ग्रन्थ प्रकाशन की। महोपाध्याय विनयसागरजी के प्रस्तुत ग्रन्थ द्वारा उस आवश्यकता की पूर्ति वहुत अच्छे रूप में हो रही है। हमारी प्रेरणा व सहयोग से उन्होने यह ग्रथ कई वर्ष पूर्व तैयार कर दिया था पर अभी तक प्रकाशन-सुयोग नही मिल सका था।

जयपुर के श्रीमालवश-विभूषण छुट्टनलालजी वैराठी एवं श्री राजरूपजी टाक ने प्रकाशन के लिए आर्थिक सहयोग देकर हमें प्रकाशन का सुअवसर दिया अत हम उनके आभारी है। भ० महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव के मगलमय प्रसग में उन्ही के शासन के एक महान् आचार्य का जीवन-चरित्र प्रकाशित करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में श्री विनयसागर जी ने प्राप्त समस्त साधनो और सूरि जी द्वारा रचित साहित्य का भली-भाँति उपयोग करते हुए उनके अप्रकाशित स्तोत्रो के साथ पुस्तक तैयार करके गच्छ और गुरुभक्ति का जो आदर्श उपस्थित किया है, उसके लिए हम उनके सविशेष आभारी हैं। इस ग्रन्थ में जिनप्रभसूरि जी के समस्त स्तोत्रो को प्रकाशित करने के लिए 'प्रेसकापी तैयार की गई थी, पर वैसा करने पर व्यय व समय अधिक लगता इसलिए प्रकाशित स्तोत्रों की केवल सूची देकर सन्तोप करना पडा है और अप्रकाशित स्तोत्र ही प्रस्तुत ग्रन्थ में दिए जा सके हैं।

श्रीमालवश-विभूषण श्री जिनप्रभसूरिजी चौदहवी शताब्दी के महान् विद्वान् और तत्कालीन सम्राट् मुहम्मद तुगलक को जैन-धर्म का बोध देकर जैन-शासन का गौरव वढ़ाने वाले महापुरुष हो गए हैं। उनमें सम्राट् से मिलने और विशिष्ट सम्मान प्राप्त करने के विश्वस्त उल्लेख तत्कालीन प्रामाणिक ग्रन्थो में पाये जाते हैं। सूरिजी के विविध-तीर्थकल्प नामक ग्रन्थ में कन्यानयनीय महावीर-तीर्थकल्प और कल्प परिशेप में उन घटनाओ का समावेश होने के कारण उनकी प्रामाणिकता एव महत्त्व निर्विवाद है। आपके

सम्बन्ध में रचित समकालीन गीतो को हमने बहुत वर्ष पूर्व उन्ही की परम्परा की प्राचीन सग्रह-प्रति से लेकर अपने सम्पादित 'ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह में प्रकाशित कर दिये थे। इसके बाद समकालीन परवर्ती खरतर-गच्छीय सामग्री के अतिरिक्त सूरिजी के सम्बन्ध में तपागच्छीय दो विद्वानो ने चामत्कारिक प्रवादो का अपने ग्रन्थो में संग्रह किया है, वह भी बहुत ही उल्लेखनीय एवं महत्त्वपूर्ण है।

आचार्यश्री के कई ग्रन्थ तो भारतीय व जैन-साहित्य की अमूल्य निधि हैं। उनमें से विविध-तीर्थकल्प तो अपने ढग का एक ही ग्रन्थ है जिसमें उस समय के प्रसिद्ध जैन-तीर्थों सम्बन्धी पौराणिक और ऐतिहासिक जानकारी प्राकृत और सस्कृत, गद्य एव पद्य उभय रूप में दी गई है। इसी तरह 'विधिप्रपा' में जैन विधि-विधानो सम्बन्धी जितनी अच्छी जानकारी प्राप्त होती है वैसी अन्य ग्रन्थो में उस रूप में किसी एक ही ग्रन्थ में अन्यत्र दुर्लभ है। ये दोनो ग्रन्थ सुसम्पादित रूप में प्रकाशित हैं। श्रेणिक द्व्याश्रय महाकाव्य आदि भी आपकी विशिष्ट रचनाएँ है। उक्त द्व्याश्रय बहुत वर्षों पहले गुजराती अनुवाद सहित अपूर्ण ही छपा इसका सुसम्पादित पूर्ण सस्करण सानुवाद और साहित्यिक अध्ययन सहित प्रकाशित किया जाना अपेक्षित है।

स्तोत्रो के क्षेत्र में तो जिनप्रभसूरिजी का सर्वोच्च स्थान है। विविध प्रकार के इतने अधिक व उच्चस्तर के स्तोत्र आपके ही प्राप्त हैं। खेद है कि ७०० स्तोत्रो मे से अब केवल १०० के भीतर ही आपके रचित स्तोत्र उपलब्ध है। आपकी अप्रकाशित रचनाएँ अभी भी बहुत-सी मिलनी चाहिए पर खरतर-गच्छ की जिस लघु आचार्य-शाखीय श्रीजिन-सिंहसूरि जी के आप पट्टधर थे, उस शाखा का अस्तित्व न रहने से रचनाएँ सुरक्षित नही रह सकी।

महान् श्वेताम्बर तीर्थ शत्रुञ्जय की खरतर-वसही में आपकी एक प्रतिमा स्थापित है जिसका ब्लाक प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रकाशित किया जा रहा है।

आपकी परम्परा की एक विशिष्ट सग्रह-प्रति बीकानेर के वृहद्-ज्ञान भडार में हमें प्राप्त हुई और एक उल्लेखनीय विशिष्ट सग्रह गुटका हमारे अभय जैन ग्रन्थालय के कला-भवन में प्रदर्शित है। आपकी परम्परा में कई आचार्य और मुनिगण अच्छे विद्वान् हुए हैं जिनका कुछ परिचय प्रस्तुत ग्रन्थ में दिया गया है। अठारहवी शताब्दी तक तो आप की परम्परा चलती रही पर आचार्य-परम्परा १७ वी शती में समाप्त हो गई थी। महान् टीकाकार चारित्रवर्द्धन आपकी परम्परा के उल्लेखनीय विद्वान् हैं।

परिशिष्ट में जिनप्रभसूरि गुण-वर्णन एव छप्पय त्रय दिये गये हैं। वैसे पट्टावलियो आदि में और भी कई उल्लेख और पद्य पाये जाते हैं। प्राप्त सामग्री से यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि मारे जैन-शासन में आप जैसे आचार्य विरले ही हुए हैं। ऐसी महान् विभूति के सम्बन्ध में यह ग्रन्थ प्रकाशित करते हुए हमे असीम हर्ष का अनुभव होना स्वाभाविक है। इससे भारतीय इतिहास का एक नया पृष्ठ खुलेगा। ऐसे महान् आचार्य का हमारे ऐतिहासिक एव साहित्यिक ग्रन्थो में उल्लेख होना ही चाहिए।

—अगरचन्द नाहटा

०

दो शब्द

विद्वच्छिरोमणि महाप्रभाविक आचार्य श्रीजिनप्रभसूरिजी रचित अनेक विधाओ, अनेक भाषाओ एव यमक-श्लेष परिपूर्ण स्तोत्र-साहित्य की ओर मैं वचपन से ही आकृष्ट रहा । वर्षों पूर्व मेरी अभिलाषा थी कि आचार्य-श्री के प्राप्त समग्र स्तोत्रो का सकलन प्रकाशित हो तो भक्तजन एवं विद्वद्गण अधिक लाभ ले सकेंगे । इसी अन्त प्रेरणा से प्रेरित होकर मैंने सन् १९६० तक प्राप्त समग्र स्तोत्रो का सकलन करना प्रारम्भ किया था । विजयधर्म-लक्ष्मी-ज्ञान मन्दिर आगरा के सग्रहस्थ स्वाध्याय पुस्तिका के ४ स्तोत्रो को छोडकर, प्रकाशित एव अप्रकाशित समग्र स्तोत्रो की मैंने पाण्डु-लिपि तैयार कर ली और उक्त सग्रह के परिचय-स्वरूप भूमिका भी ३१ जनवरी १९६१ को लिखकर पूर्ण कर दी थी । सयोगवश आज तक यह संग्रह प्रकाशित न हो सका । किन्तु मुझे प्रसन्नता है कि केवल वही 'भूमिका' आज वारह वप पश्चात् पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो रही है ।

आचार्यश्री के जीवन-चरित्र आलेखन में मैंने मुख्यत 'वृद्धाचार्य प्रवन्धावली', उपाध्याय जयचन्द्र गणि भण्डारस्थ 'पट्टावली', विजयधर्मलक्ष्मी ज्ञानभण्डारस्थ १ पत्रात्मक अपूर्ण 'पट्टावली', श्री सोमधर्म गणि रचित 'उपदेशसप्ततिका', श्री शुभशील गणि रचित 'पचशती कथा-प्रवन्ध', प०लालचन्द भगवान् गाधी लिखित 'श्रीजिनप्रभसूरि अने सुलतान मुहम्मद' पुस्तक, श्री अगरचन्द्र जी भवरलाल जी नाहटा लिखित 'शासन प्रभावक श्रीजिनप्रभसूरि' नामक लेख एव स्वय जिनप्रभसूरि रचित 'कन्यानयन-तीर्थकल्प' आदि अन्तःसाक्ष्य ग्रन्थो का उपयोग किया है ।

आचार्यश्री की चामत्कारिक घटनाओ का उल्लेख १६ वी शताब्दी में तपागच्छीय सोमधर्म गणि एव शुभशील गणि ने किया है । वर्तमान समय में भी पुरातत्त्वज्ञ डॉ. जी.व्युह्लर ने 'विविधतीर्थकल्प' गत

'मथुराकल्प' पर स्वतन्त्र निबन्ध लिखा, तब से ही जैन-विद्वानों का ध्यान इस ओर गया। खरतरगच्छीय स्व० श्रीजिनहरिसागरसूरिजी, उपाध्यायश्री सुखसागरजी म के प्रयत्नों से और पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिनविजयजी के सम्पादित ग्रन्थों, प० लालचन्द भ. गाधी, श्री अगरचन्दजी नाहटा के लिखित जीवन-चरित्र एव लेखों तथा स्व० चतुरविजयजी आदि विद्वानों द्वारा सम्पादित कतिपय स्तोत्र-सग्रहों में प्रकाशित स्तोत्रों से आचार्य जिनप्रभ के व्यक्तित्व और कृतित्व की कुछ झलक विद्वानों के सम्मुख आई। किन्तु आज भी जिनप्रभसूरि का अधिकाश साहित्य अप्रकाशित ही है। अत विद्वानों और साहित्य-प्रकाशिनी सस्थाओं से मेरा अनुरोध है कि जिनप्रभसूरि रचित न केवल स्तोत्र-साहित्य ही अपितु श्रेणिकचरित (द्वयाश्रयकाव्य), कल्पसूत्र-सदेहविषौषधि टीका, अनेकार्थसग्रह टीका एव विदग्धमुखमण्डन टीका आदि ग्रन्थों का सुसम्पादित संस्करण अवश्य प्रकाशित करें, जिसमे आचार्यश्री के कृतित्व का विद्वज्जगत् पूर्णरूपेण मूल्याकन कर सके।

जिनप्रभसूरि उल्लिखित कविदर्पण—

श्री जिनप्रभसूरि ने वि० स० १३६५ में 'अजितशान्तिस्तव' पर टीका की रचना की है। टीका की प्रान्तपुष्पिका में लिखा है—इस स्तोत्र में छन्दों के लक्षण मैंने प्राय करके 'कविदर्पण' के आधार से स्व-परोपकार हेतु प्रदान किये हैं। अत. मैं 'कविदर्पण' का 'उपजीव्य' हूँ।

कविदर्पणमुपजीव्य प्रायेण च्छन्दसामिह स्तोत्रे।
स्वपरोपकारहेतोरभिदधिरे लक्षणानि मया॥

'उपजीव्य' शब्द पर विचार करने के पूर्व कविदर्पणकार एव उसके रचनाकाल के सम्बन्ध में विचार करना अपेक्षित है।

कविदर्पण टीका के साथ प्रोफेसर हरि दामोदर (एच० डी०) वेलणकर, सह-सचालक भारतीय विद्या भवन, बम्बई द्वारा सुसम्पादित होकर, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर से सन् १९६२ में प्रकाशित हो

चुका है। उसकी प्रस्तावना में पृष्ठ ४ पर सम्पादक ने लिखा है कि कविदर्पण का प्रणेता कोई खरतरगच्छीय विद्वान् ही है।

कविदर्पण की टीका में टीकाकार ने छन्द-लक्षणो के उदाहरणो मे कई उदाहरण ऐसे दिये हैं जिनमें धर्मसूरि (पृ० २१), समुद्रसूरि (पृ० २८), तिलकसूरि (पृ० ४६), यशोघोपसूरि (पृ० ३७), सूरप्रभसूरि (पृ० ४६), लक्ष्मीसूरि (पृ० ३९), आदि जैनाचार्यों के स्तुति एवं प्रशसापरक पद्य है, तो कतिपय उदाहरण पादलिप्तसूरि (पृ० ८), हेमसूरि (पृ० ४३), जिनसिंहसूरि (पृ० २४), सूरप्रभसूरि (पृ० ४४), तिलकसूरि (पृ० ३४) आदि आचार्यों द्वारा प्रणीत है।

पूर्वोक्तआचार्यों में से सूरप्रभसूरि, तिलकसूरि और जिनसिंहसूरि खरतर-गच्छ के आचार्य एवं श्रेष्ठ विद्वानो में से है। इन तीनो आचार्यो का समय वि० सं० १२५० से १३४० के मध्य का है। जिनसिंहसूरि तो अजित-शान्तिस्तव टीका के टीकाकार जिनप्रभसूरि के गुरु ही है। अत यह तो नि सदेह कहा जा सकता है कि यह कृति किसी खरतरगच्छीय जैनाचार्य द्वारा ही प्रणीत है।

कविदर्पण की टीका में पृ० ८ पर 'शूर (सूर) परिभाषेय पूज्यप्रयुक्ता' वाक्य प्राप्त होता है। 'सूर की यह परिभाषा पूज्य द्वारा प्रयुक्त है' इस वाक्य से सूरप्रभाचार्य के लिये कल्पना की जा सकती है कि इन्होने भी छन्द शास्त्र का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ बनाया था, जो उस समय उपलब्ध था।

टीका में पृ० ३३, ३५, ३६, ३७ पर 'छन्द कन्दली' नामक छन्दो-ग्रन्थ के उदाहरण भी कतिपय स्थलो पर प्राप्त हैं। उदाहरणो की भाषा देखते हुये छन्द कन्दलीकार भी जैन-विद्वान् ही प्रतीत होते है।

जिनसिंहसूरि के गुरुभ्राता श्री जिनप्रबोधसूरि रचित 'वृत्तप्रबोध' (उल्लेख-युगप्रधानाचार्य गुर्वावली पृ० ५७) नामक छन्दोग्रन्थ का इसमें कही भी उल्लेख न होने से अधिक सम्भावना यही है कि इस ग्रन्थ का प्रणेता लघु खरतरशाखीय जिनसिंहसूरि का सहाध्यायी या शिष्य हो! किन्तु जब तक कोई पुष्ट प्रमाण प्राप्त न हो जाय तब तक कर्त्ता के सम्बन्ध

मे निश्चित रूप से निर्णय नही किया जा सकता, केवल अनुमान ही किया जा सकता है ।

कविदर्पण का सर्वप्रथम उल्लेख वि० सं० १३६५ में जिनप्रभसूरि ने किया है । अत यह निश्चत है कि कविदर्पण की रचना वि० स० १३६५ के पूर्व हो चुकी थी । खरतरगच्छीय पट्टावलियो के अनुसार जिनसिंहसूरि वि० स० १२८० में आचार्य बने थे । अत पृष्ठ २४ पर प्राप्त 'जिनसिंह-सूरि कृत 'चूडालदोहक' से स्पष्ट है कि वि० स० १२८० के पश्चात् ही इसका निर्माण हुआ है । इसलिये कविदर्पण का रचना समय १२८० से १३६५ के मध्य में माना जा सकता है ।

जिनप्रभसूरि ने अजितशान्तिस्तव के छन्दो के लक्षण-निर्धारण में ८, ३२, ३३ वी गाथाओ के लक्षण हेमचन्द्रसूरि कृत 'छन्दोनुशासन', गाथा २४, २५ के लक्षण केदारभट्ट कृत 'वृत्तरत्नाकर', गाथा ३ री सिलोगो (श्लोक) का लक्षण 'नन्दिताढ्य छन्द ग्रन्थ' और गाथा तथा मागधिका छन्द के लक्षण 'कविदर्पण' के आधार से दिये हैं । शेष समस्त छन्दो के लक्षण किस छन्दोग्रन्थ के आधार से दिये हैं, उल्लेख न होने से स्पष्ट नही हैं । किन्तु 'कविदर्पणमुपजीव्य प्रायेण च्छन्दसामिह स्तोत्रे' पक्ति से स्पष्ट ध्वनित है कि प्राय करके समस्त छन्दो के लक्षण कविदर्पण के ही प्रदान किये हैं । यदि केवल दो छन्दो के लक्षण मात्र कविदर्पण के देने अभीष्ट होते तो 'उपजीव्य' और 'प्रायेण' शब्दो का प्रयोग कदापि सम्भव नही था । ऐसी अवस्था में प्राय. समस्त छन्दो के लक्षण कविदर्पण के ही स्वीकार करने होगें ।

अजितशान्तिस्तव टीका मे, प्राकृत भाषा में उद्धृत छन्दो के लक्षण कविदर्पण के मुद्रित सस्करण में प्राप्त नही है । अत निश्चित है कि सम्पादक महोदय को प्राप्त आदर्श प्रति पूर्णरूपेण खण्डित एव अपूर्ण ही थी । अत शोध-विद्वानोका कर्त्तव्य है कि इसकी पूर्ण प्रति की शोध करें एव उसके प्राप्त होने पर उसे प्रकाश में लाने का प्रयत्न करें ।

रहस्यकल्पद्रुम

इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में प्रस्तुत पुस्तक के पृष्ठ ११८ पर मैंने लिखा है कि—"रहस्य कल्पद्रुम नामक ग्रन्थ में जैन समाज में प्रचलित अनेक मन्त्रो के इष्ट प्रयोगो का अनुकथन है। पूर्ण ग्रन्थ प्राप्त न होकर कुछ प्रयोग मात्र ही प्राप्त हैं।"

श्रीजैनप्रभसूरि के स्वर्गवास के ५-७ वर्ष पश्चात् ही रुद्रपल्ली गच्छीय श्री सोमतिलकसूरि ने सं० १३९७ में रचित त्रिपुराभारती लघुस्तव पद्य ६ की टीका में इस ग्रन्थ का उल्लेख करते हुए निम्न अश उद्धृत किया है।

"यदाहु श्रीजिनपदसूरिपादा रहस्ये—पुसो वश्यार्थ शिवाक्रान्त शक्तिबीज रक्तध्यानेन। स्त्रियास्तु वश्यार्थ शक्त्याक्रान्त शिवबीजं ध्यायेदिति।"

ग्यारह पत्रात्मक इस ग्रन्थ का केवल अन्तिम ग्यारहवाँ पत्र श्रीनाहटा जी को प्राप्त हुआ है। ग्यारहवें पत्र की लेखन प्रशस्ति के अनुसार यह प्रति वि० स० १५४६ श्रावण शुक्ला १३ गुरुवार के दिन मण्डपदुर्ग (मांडवगढ़) में खरतरगच्छीय श्रीजिनप्रभसूरि, श्री जिनचन्द्र सूरि के पट्टधर श्रीजिनसमुद्रसूरि के धर्मसाम्राज्य मे महोपाध्याय श्री तपोरत्न के शिष्य वाचनाचार्य श्री साधुराज गणि के आदेश से और भक्तिवल्लभ गणि के सानिध्य में शिष्यलेश " ने लिखा था।

इस प्राप्त पत्र में महात्मातगिनी, रक्तचामुण्डा, प्रत्यगिरा देवी के उच्चाटन, आकर्षण, कार्मण सम्बन्धी मन्त्र प्राप्त है और अन्त में औषध के प्रयोग भी हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मात्रिक रहस्यो के साथ-साथ औपध के अनुभूत प्रयोग भी इस ग्रन्थ में सम्मिलित है। भंडारो में इस ग्रन्थ के खोज की आवश्यकता है। पूर्ण ग्रन्थ प्राप्त होने पर मान्त्रिक रहस्यो व अनुभूत प्रयोगो पर विशेप प्रकाश पड सकता है।

आभार

प्रसिद्ध साहित्यसेवी विद्वान् श्री अगरचन्दजी नाहटा की सतत प्रेरणा और सामग्री संकलन में पूर्ण सहयोग मुझे सदैव ही प्राप्त होता रहा है। अतः श्री नाहटाजी का मैं अत्यन्त ही आभारी हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक में प्रूफ-संशोधन में असावधानी अधिक रहने से अशुद्धि-बाहुल्य रहा है, जिसका मुख्य कारण प्रकाशक महोदय का प्रेस वालों पर आधारित रहना ही प्रतीत होता है। अतः पाठकों के प्रति मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

३३ A, न्यू कॉलोनी गुमानपुरा,
कोटा
म० विनयसागर
दिनाङ्क २२–१०–१९७३

विषयानुक्रम

पृष्ठाङ्क

तत्कालीन स्थिति

मुहम्मद-तुगलक-कालीन भारत २
राजनीतिक स्थिति ३
सामाजिक दशा ६
आर्थिक स्थिति ७
धार्मिक जीवन ९
साहित्यिक विकास १०
सास्कृतिक मूल्याकन ११

गुरु-परम्परा

आचार्य वर्द्धमान और जिनेश्वर सूरि १२
जिनचन्द्रसूरि १६
अभयदेवसूरि १६
जिनवल्लभसूरि १७
युगप्रधान जिनदत्तसूरि २०
मणिधारी जिनचन्द्रसूरि २२
जिनपतिसूरि २३
जिनेश्वरसूरि २६

जन्म, दीक्षा और आचार्य पद

जन्म २७
आचार्य जिनसिंहसूरि २८
पद्मावती आराधना ३०

सुभटपालकी दीक्षा और आचार्य पद ३२
जन्म-दीक्षा-आचार्यपद सवत् ३३
दीक्षा-नाम ३४
अध्ययन और अध्यापन ३५
तीर्थयात्रा और विहार ३९
सोमप्रभसूरिसे मुलाकात या सोमतिलकसूरिसे ८८
मुहम्मद तुगलक प्रतिबोध और तीर्थ-रक्षा ४५
सघरक्षा और तीर्थरक्षाके फरमान ४७
कन्यानयनीय महावीर प्रतिमाका इतिहास और उद्धार ४८
देवगिरिकी ओर विहार और प्रतिष्ठानपुर यात्रा ५४
देवगिरिके जैन मन्दिरोंकी रक्षा ५५
सम्राट्का पुन स्मरण और आमन्त्रण ५६
देवगिरिसे प्रयाण और अल्लावपुरमें उपद्रव-निवारण ५६
दिल्लीमें सम्राट्से पुनर्मिलन ५७
पर्युषणमें धर्मप्रभावना ५८
दीक्षा और बिम्ब प्रतिष्ठादि उत्सव ५८
सम्राट् समर्पित भट्टारक सरायमें प्रवेश ५८
मथुरा तीर्थका उद्धार ५९
हस्तिनापुरकी यात्रा और प्रतिष्ठा ५९
स्वर्गवास ६०
चमत्कारी घटनाएँ
मुहम्मदशाहसे मुलाकात ६२
मुहम्मदशाहकी राणी बालादेका व्यन्तरोपद्रव दूर करना ६३
राघव चैतन्यका अपमान ६४
कलदरका गर्वहरण ६६
अद्भुत निमित्त कथन ६७
वटवृक्षको साथ चलाना ६८

क्या भोजन करूँगा ? ६८
मीठी कहाँ ६८
सरोवर छोटा कैसे हो ? ६९
पृथ्वी पर मोटा फल कौन सा ? ६९
विजय-यन्त्र महिमा ६९
मरुस्थलमें दान ७०
ज्वरका जलमें आरोप ७०
तैलग वन्दी मोचन ७०
अमावस्याकी पूर्णिमा ७१
महावीर प्रतिमाका वोलना ७१
रायणवृक्षसे दूध वरसाना ७२
चौसठ योगिनी प्रतिवोध ७३
सघका उपद्रव निवारण ७४
आचार्य सोमप्रभसे मिलाप और चूहोको शिक्षा ७५
खडेलपुरके निवासियोको जैन वनाना ७६
कवला तपा विवाद निवारण ७७
शिष्य-परम्परा
आचार्य जिनदेवसूरि, जिनमेरुसूरि, जिनहितसूरि ७७
जिनसर्वसूरि, जिनचन्द्रसूरि, जिनसमुद्रसूरि ७९
वाचनाचार्य चारित्रवर्द्धन ७९
जिनतिलकसूरि, जिनराजसूरि, जिनचन्द्रसूरि, ८८
जिनभद्रसूरि, जिनमेरुसूरी, जिनभानुसूरि ८८
विद्वद्-परम्परा ८८
साहित्य-सर्जना ९०
स्तोत्र ९८
आचार्य जिनप्रभका साहित्य
काव्य १०२

१०६

१०७

१०८

१०९

११६

११७

११९

१२०

१२४

१२८

१३५

१३७

१५६

१५७

१५८

१६३

१६६

१६९

१६९

१७०

१७१

१७३

१७३

१७६

शुद्धिपत्र १७७

जैनप्रभीय प्रकाशित स्तोत्र-सूची १९२

जैनप्रभीय अप्रकाशित स्तोत्र

१ मङ्गलाष्टकम् १९७

२ पञ्चपरमेष्ठिस्तव १९७

३ द्वित्रिपञ्चकल्याणस्तव १९८

४ युगादिदेवस्तव २००

५. चन्द्रप्रभ-चरित्रम् २०५

६ पारसी भाषा चित्रकेण शान्तिनाथाष्टकम् २०७

७ पार्श्वस्तव २०९

८ फलवर्द्धिपार्श्वस्तव २१३

९ फलवर्द्धिपार्श्वजिनस्तवः २१५

१० षड्ऋतुवर्णनागर्भित-पार्श्वस्तव २१६

११ उवसग्गहरस्तोत्रस्य समग्रपादपूर्तिरूप पार्श्वजिनस्तोत्रम् २१६

१२. तीर्थमालास्तव २१८

१३ विज्ञप्ति २२०

१४ सुधर्मस्वामीस्तवनम् २२३

१५ ४५ नामगर्भित आगस्तवनम् २२६

१६ परमतत्त्वाववोध द्वात्रिंशिका २२७

१७ हीयाली २३०

१८ कालचक्रकुलकम् २३०

जिनप्रभसूरि-गीतानि

श्रीजिनप्रभसूरि परम्परागीत २३३

जिनप्रभसूरीणा गीतम् २३४

श्रीजिनप्रभसूरि गीत २३४

जिनदेवसूरि गीत २३५

●

शासन-प्रभावक आचार्य जिनप्रभ और उनका-साहित्य

कोई भी शासन हो, चाहे दर्शन हो या समाज, सघ या परंपरा हो वह तव ही स्थायी, दीर्घजीवी और प्रभावशाली हो सकता है जव कि उस शासन-दर्शन-समाज-सघ-परंपरा में समय-समय पर प्रतिभाशाली साहित्य-कार, वक्तृत्वकलाधारी उपदेशक (प्रावचनिक), सिद्धिधारक चमत्कारी, अत्युग्रतपस्वी और सिद्धान्तज्ञ और वादी हो, अन्यथा वर्षा के अभाव मे जैसे नदियाँ शुष्क और क्षीण हो जाती है वैसे शासन आदि का स्रोत निर्बल होता हुआ समाप्तप्राय हो जाता है। क्योकि व्यक्ति अपने स्व-अर्थ (भौतिक और आध्यात्मिक) साधन में सलग्न रहता है, और प्रतिभा-युक्त व्यक्तित्वधारी स्व-अर्थ साधन के साथ समाज के उत्कर्ष में लीन रहता है। यही कारण है कि जैन ग्रन्थो में ऐसे व्यक्तित्वधारियो को 'प्रभावक' शब्द से सबोधित किया है और प्रभावक आठ प्रकार के वत-लाये गए है —

पावयणी धम्मकही वाई नैमित्तिओ तवस्सी य।
विज्जा-सिद्धा य कवी अट्ठे य प्रभावगा भणिया॥

[[1]प्रावचनिक, [2]धर्मकथाप्ररूपक, [3]वादी, [4]नैमित्तिक, [5]तपस्वी, [6]विद्या-धारक, [7]सिद्धिधारक और [8]कवि—ये आठ प्रकार के प्रभावक होते हैं।]

ऐसे प्रभावक अपने चमत्कारो से रक से लेकर राजा-महाराजाओ को अपने शासन के प्रेमी वनाते है, तो दर्शन और साहित्य द्वारा समस्त दार्शनिको और साहित्कारो को अपना अनुगत और स्वदर्शन तथा साहित्य के रसिक वनाते हैं।

रुचि थी। स्वयं विद्वान् होने के साथ-साथ वह विद्वानो का समादर भी करता था।

मुहम्मद तुगलक के समय की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा आर्थिक स्थिति समझने के लिए हमे तत्कालीन मुसलमान इतिहासकारो के ग्रथो से वडी सहायता मिलती है, परतु कुछ ऐसे कारण है कि हम सम्पूर्णत. उन्ही को आधार नही वना सकते। जियाउद्दीन वरनी मुहम्मद तुगलक का समकालीन प्रसिद्ध इतिहासकार है। एसामी, वद्रेचाच, अमीरखुर्द, शिहावुद्दीन अल उमरी, यहया विन अहमद सहरिन्दी, अव्दुल कादिर वदायूनी, मुहम्मद कासिम हिन्दूशाह 'फिरिश्ता' आदि इतिहास व साहित्यकारो के ग्रन्थो से भी तुगलककाल के विषय मे यथेष्ट सामग्री प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त सवमे अधिक प्रामाणिक सामग्री इब्नवतूता नामक प्रसिद्ध अफ्रीकी यात्री के यात्रा-वर्णन से मिलती है। इन सभी प्रमाणो के आधार पर हम तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक स्थिति का मूल्याकन तटस्थ दृष्टि से इस प्रकार कर सकते है।

राजनीतिक स्थिति

भारत में राष्ट्रीयता को भिन्नत समझा गया था। यहाँ वैयक्तिक भेदो से ऊपर उठकर विश्ववन्धुत्व की ओर होनेवाले मानसिक विकास के मार्ग के एक स्थितिस्थान (Station) को राष्ट्रीयता माना गया है। जव तक भारतीयो की इस मान्यता पर आघात न होता, तव तक वे वाहर से आनेवाली जातियो से भी युद्ध को तैयार नही होते थे। पूर्व-मध्यकाल में अनेक जातियाँ मध्य एशिया से आकर भारत में वस गई। उनके वडे-वडे साम्राज्य भी भारत में स्थापित हुए और मिट गये। सच्चे भारतीय की तरह ही उन्होने भी भारतीय धर्म और दर्शन की रक्षा के लिए प्रयत्न किए। ७ वी शती के अन्त होते ही अरवो के आक्रमण सिन्ध पर होने लगे। राष्ट्रीय स्तर पर इसका तीव्र विरोध नही हुआ। भारतीयो को वैदान्तिक एकेश्वरवाद और इस्लाम के एकेश्वरवाद में कोई भेद

दृष्टिगत नही हुआ। यही कारण है कि लगभग ४ शताब्दियो तक भारत के इस्लाममत का प्रचार करने मुस्लिम सन्त आते रहे। भारतीयो ने उनका आदर किया और उनके उपदेशो का श्रवण करते रहे, किन्तु १२ वी शताब्दी में उत्तर-पश्चिमी सीमान्त से उत्तरी भारत पर भिन्न प्रकार के आक्रमण प्रारभ हुए, जिन्हे वडे पैमाने पर सशस्त्र डकैती कहा जा सकता है। आक्रमणकारी महमूद गजनवी और मुहम्मद गोरी यद्यपि मुसलमान थे, परन्तु उनके आक्रमणो का इस्लाम से कोई सम्वन्ध न था। गजनवी तो केवल धन लूटने ही अनेक वार भारत आया था। गोरी ने धन के साथ साम्राज्य स्थापना की ओर भी ध्यान दिया और यो, उत्तरी भारत में मुसलमानी-साम्राज्य स्थापित हुआ।

गोरी की मृत्यु के वाद भारत में गुलामवशी व खिलजीवंशी शासको ने राज्य किया। अलाउद्दीन खिल्जी ने तो लगभग सारे भारत को जीत लिया। इन सभी शासको ने इस्लाम के नाम पर स्वार्थी मुसलमानो को अपने वश मे करके तलवार के वल पर शासन किया। वहुसख्यक प्रजा के ऊपर अत्याचार किए गए, धनिको का धन व स्त्रियों का यौवन लूटा गया। सत्ता क्रूरता का पर्याय वन गई। जो जितना सशक्त सुल्तान होता वह उतना ही प्रजा को आतकित किया करता। अधिकतर सत्ताधारी विलासिता का जीवन विताते और विलासिता मे ही किसी सामन्त की तलवार के शिकार हो जाते थे। इस प्रकार की राजनीति भारत के लिए नई थी। भारतीयो के मन मे इन शासको से अधिक उनके धर्म से घृणा हो गई थी, क्योकि उन पर सभी अत्याचार धर्म के नाम पर किए जाते थे। इस्लाम के प्रति इस घृणा ने इस आगन्तुक जाति को सदैव विदेशी वनाए रक्खा; किन्तु तथ्य की वात तो यह है कि इस्लाम का शासको की क्रूरता के साथ स्वार्थ के अतिरिक्त कोई सम्वन्ध न था।

सन् १३२० ई० में गयासुद्दीन तुगलक ने खिल्जीवश समाप्त करके तुगलक वश की नींव डाली। इसके चार वर्ष वाद ही मुहम्मद तुगलक

शासक बना जिसने १३५३ ई० तक राज्य किया। इसके राज्य की सीमाएँ सुदूर दक्षिण तक विस्तृत थी। वह विद्वान् होने से अन्य मुसलमान सुल्तानो से कही अधिक उदार था। मुसलमान इतिहासकारो ने उसकी दानशीलता व क्रूरता का समान रूप से उल्लेख किया है, किन्तु मुसलमानी सल्तनत के लब्धप्रतिष्ठित विचारशील-स्तम्भ की उन उपलब्धियों का उल्लेख नही किया, जिनको उसने बहुसख्यक हिन्दू प्रजाजनो के लिए प्रयुक्त किया होगा। हाँ, अन्य धर्मों के प्रति उसके द्वारा प्रदर्शित उदार दृष्टिकोण की उन्होने जीभरकर निन्दा तक की है। इसीलिए ऐतिहासिक तिथिक्रम की दृष्टि से प्रमाणित तत्कालीन इतिहास भी राष्ट्रीय तत्त्वो की दृष्टि से अप्रामाणिक है।

मुहम्मद तुगलक के समय कई प्रान्तो में विद्रोह हुए। मुहम्मद के जीवन का अधिक समय युद्धो में ही व्यतीत हुआ। मुसलमान इतिहासकारो के उल्लेखो से प्रमाणित होता है कि मुहम्मद तुगलक के समय सभी विद्रोह उसके मुसलमान सामन्तो ने किए थे। ऐसा ज्ञात होता है कि सुल्तान की हिन्दुओ के प्रति उदारनीति ने कदाचित् उन्हे विद्रोह के लिए प्रेरित किया होगा। सुल्तान मुहम्मद ने दूर देशो के अरबी, ईराकी आदि विद्वानो को बुलाकर ऊँची पदवियो पर नियुक्त किया था। इसका कारण भी कदाचित् अपने सामन्तो पर अविश्वास ही रहा होगा। उसने कई विद्रोहियो व विद्रोह के प्रेरक धार्मिक नेताओ को मौत के घाट उतार दिया था। इतिहासकारो ने उसकी इस क्रूरता की बडी निन्दा की है और साथ ही उसके हिन्दू सलाहकारो पर सारा दोपारोपण किया है। परन्तु सत्य बात तो यह है कि वे १५० से अधिक वर्षो तक धर्म के नाम पर अत्याचार करने के आदी हो चुके थे और कदाचित् मुहम्मद की उदार नीति की इसीलिए प्रशसा करने में समर्थ न थे। दूसरी ओर सुल्तान स्वयं विगत काल में की गई सुल्तानो की हत्या से सचेत रहा करता था, और शायद इसीलिए उसने विद्रोहियो का क्रूरतापूर्वक वध कराया हो। कुछ भी हो, मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में साम्राज्य पर्याप्त विस्तृत

हो गया था फिर भी राजनीतिक अवस्था असन्तुलित होने से विद्रोह हुए और विद्रोहियो से युद्ध करते रहने के कारण उसकी मानसिक उदारता के प्रतिफलन के रूप में साम्राज्य की ऐसी नीति सफलता को प्राप्त करके प्रसिद्धि में न आ सकी जिसका सभी धर्मो की प्रजा के हित से सम्बन्ध हो। हाँ, मुहम्मद के उत्तराधिकारी फिरोज तुगलक ने सर्वप्रथम प्रजा-हितार्थ कल्याणकारी राज्य की परपरा को सफलतापूर्वक क्रियान्वित किया।

सामाजिक दशा

राजनीतिक असन्तुलन के युग मे किसी भी प्रकार की सामाजिक प्रगति की योजना की राज्य से आशा नही की जा सकती। मुहम्मद तुगल्क निश्चय ही अपने अधीनस्थ सामन्तो की नीति से असन्तुष्ट था, किन्तु वह प्रत्यक्ष रूप से उनका विरोध करके हिन्दू लोगो को उनका स्थान देने का साहस नही करता था। इसलिए उसने अरवी, ईराकी व ईरानी लोगो को वुलाकर योग्यतानुसार कार्य सौंपा था। शासन के अतिरिक्त वह हिन्दू लोगो का अन्य कार्यो मे भरपूर सहयोग प्राप्त करता था। कुकृत्य करनेवाले सामन्तो को वह हिन्दुओ की सहायता से ही दण्ड दिया करता था। उसने इस्लाम के प्रचार के लिए प्रयत्न किया अवश्य, किन्तु कदाचित् उसका ध्यान इससे अधिक ज्ञान की खोज करने में लगा हुआ था। वह विद्वानो का समादर करता था।

सामान्य हिन्दू मुसलमानो से आक्रान्ता के रूप में घृणा करते थे, किन्तु इस्लाम के सिद्धान्तो व मुसलमान फकीरो व पीरो का आदर करते थे। तीव्र घृणा के उपरान्त भी सामान्य लोगो में सहअस्तित्व की भावना पनप रही थी। हिन्दू लोग पीर-पैगम्बरो में आस्था रखने लगे थे। वैष्णव सम्प्रदायों का प्रचार वढने लगा था। कदाचित् हिन्दू लोग अपने धर्म का नमनशील संस्करण तैयार करने में व्यस्त थे। हिन्दुओ में जाति-भेद चरम अवस्था पर पहुँच रहा था। मुसलमानी शासको के अत्याचारो

ने उन्हे मानव के एक घृणास्पद, वीभत्स रूप से परिचय कराया था, जिससे एक मनुष्य अपने सहयोगी के प्रति आस्था खो चुकता है। इस अनास्था का परिणाम हम आज तक भोग रहे हैं। जातिभेद और छुआ-छूत इसी अनास्था की चरमावस्था के परिणाम हैं जो इस उत्तरमध्य-काल में सामाजिक कोढ के रूप मे भारत को मिले।

भारतीय-सस्कृति की नमनशीलता का चरम रूप १४हवी से १७ वी शताव्दी के वीच में मिलता है। इस काल मे भारतीय समाज ने सवसे अधिक सास्कृतिक नेता पैदा किए, किन्तु दुर्भाग्यवश फिर भी भारतीय सस्कृति इस्लाम को आत्मसात् नही कर सकी। इसका कारण कदाचित् जीवन के प्रति इस्लाम का दृष्टिकोण उतना नही है जितना भारत मे उसके प्रचारको का अनुदार व अनुत्तरदायित्वपूर्ण रुख है।

मुहम्मद तुगलक के शासनकाल मे उत्तर भारत में इस्लाम का प्रचार वढ रहा था। राजस्थान व गुजरात में जैनधर्म का प्रचार अधिक हो रहा था। वुद्धधर्म मुसलमानो के आक्रमणो से अपना सामान्य जनता पर प्रभाव खोकर भारत से समाप्त हो चुका था। भारतीय जनता अनेक वर्गों में विभाजित थी फिर भी उसमें सामाजिक व्यवहारो की समानता के कारण सास्कृतिक ऐक्य विद्यमान था, जिसे इस्लाम के प्रचारको ने नही समझा और न शासको ने ही उसकी ओर ध्यान दिया। धनिक वर्ग तो प्राप्त साधनो के आधार पर अपना बचाव कर सकते थे, किन्तु सामान्य लोग राजनीतिक व धार्मिक अत्याचारों से पीडित थे। भारत में अनेक अछूत जातियाँ इस प्रकार के अत्याचारो से पीडितो की ही हैं जिन्हे उच्च वर्गों ने विवशता के दण्ड के रूप मे पीछे रह जाने को अपने भाग्य पर छोड दिया।

आर्थिक स्थिति

मुसलमान सुल्तान योग्य योद्धा तो अवश्य थे किन्तु व्यावसायिक उन्नति की ओर उनका ध्यान नही था। लूटकर या प्रजा को आतंकित करके धन

प्राप्त कर लेना ही उनके लिए पर्याप्त था। प्रजा के लिए उन्होने विशद व्यापक आर्थिक नीति का निर्धारण नही किया। तुगलककालीन राजनीतिक अवस्था ही असन्तुलित थी अत आर्थिक क्षेत्र में मुहम्मद तुगलक ने कोई उल्लेखनीय प्रयत्न नही किया। हाँ, उसने प्रतीकमुद्रा चलाने की आयोजना अवश्य निर्धारित की थी, जिससे वाणिज्य-व्यवसाय में प्रभूत सुविधा होने की सभावना थी, किन्तु ठीक तरह से कार्यान्वित न किए जाने से योजना सफल न हो सकी।

कृषि व वाणिज्य पर अब भी हिन्दूप्रजा का एकाधिकार स्थापित था। अपनी राजनीतिक व आर्थिक आवश्यकताओ के हेतु कुछ सुल्तानो व प्रान्तीय-शासको ने भी वाणिज्य-व्यापार व उद्योगो को प्रोत्साहित किया। अधिकाश जनता तो आज ही की तरह उस समय में भी कृषिजीवी ही थी। कृषक गाँवो मे रहते थे। वस्त्र-व्यवसाय, मिट्टी लकडी, व धातु की चीजें बनाना आदि ग्रामीण-क्षेत्र के व ईंट-निर्माण, शक्कर व कागज बनाना, रगसाजी, शस्त्र, सुरा, तेल, इत्र आदि बनाना नागरिक-क्षेत्र के प्रमुख व्यवसाय थे। ऊनी, सूती व रेशमी कपडे महीन से महीन बनाए जाते थे।

आन्तरिक व्यापार उन्नत व व्यापक था। कभी-कभी कठोर शासकीय नियन्त्रण के कारण व्यापारियो को हानि भी उठानी पडती थी। मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में आन्तरिक विद्रोहो व निरन्तर युद्धो से व्यापार को पर्याप्त हानि हुई थी। फिर भी बाह्य व्यापार की दृष्टि से योरोप के दूरस्थ प्रदेश, पूर्वी द्वीपसमूह, चीन व प्रशान्त महासागरीय अन्य देशो से भारत का व्यापारिक सम्पर्क था। अफगानिस्तान, ईरान, तिब्बत आदि से स्थलमार्ग मे व्यापार चलता था। अरब से घोडे बहुत सख्या मे आते थे। भारतीय वस्त्रो की ख्याति इन सभी देशो में फैली हुई थी।

शासक, सामन्त व उच्चवर्गीय लोग भोग-विलासो में लिप्त थे। दास-दासियो का व्यापार चलता था। कृषको की दशा बडी दयनीय थी। उन्हें अधिक कर देना पडता था। मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में दुर्भिक्ष

भी पडा था। जिसमें सुल्तान ने पर्याप्त अन्न व धन बँटवाया, कर माफ कर दिये गये। तो भी काफी संख्या में निर्धन मर गये। फिर भी तुगलक-कालीन कृषक आधुनिक कृषकों से कही अधिक संपन्न थे। इनके गांव आत्म-निर्भर थे। मुसलमान शासको ने ग्रामो की व्यवस्था मे कोई हस्तक्षेप नही किया। इसका लाभ के साथ दुष्परिणाम यह हुआ कि ग्रामीण जनता शासन व शासको के प्रति अधिक उदासीन होती गई। १६वी शताब्दी की जनता की उदासीनता का परिचय तुलसीदास ने 'कोऊ नृप होउ हमहिं का हानी।' शब्दो में यथातथ्य दिया है। इस उदासीनता का परिणाम यह हुआ कि १९वी शती के उत्तरार्द्ध तक ग्रामीण जनता ने राजनीतिक षड्यन्त्रो-क्रान्तियो में कोई उल्लेखनीय भाग नही लिया। १८५७ का स्वातन्त्र्य संग्राम कदाचित् इसी उदासीनता के कारण असफल रहा, यद्यपि इसमें जनता के एक अंग का सहयोग अवश्य रहा।

धार्मिक जीवन

सुल्तानो ने धर्म के नाम पर राजनीतिक स्वार्थों की सिद्धि को प्रमुख उद्देश्य बना लिया था। इसलिए अत्याचार पीडित लोगो के मन मे इस्लाम के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक ही था। विगत १००० वर्षो का इतिहास प्रमाणित करता है कि नमनशील धर्म के अनुयायी होने पर भी आर्थिक संकटो से विवश होकर २०वी शती के अतिरिक्त कभी भारतीयो ने धर्मपरिवर्तन नही किया, न अत्याचार ही उन्हे धर्मपरिवर्तन के लिए विवश कर सके थे। फिर भी तुगलक काल में इस्लाम का प्रचार बढता जा रहा था। वह कदाचित् उसकी मूलभूत अच्छाइयो का परिणाम था और बढती हुई घृणा इसी प्रकार शासको की अत्याचारपूर्ण नीति के परिणाम-स्वरूप उत्पन्न हुई थी।

भारतीय धर्मचेता संकट से जाति को बचाने के लिए विचाररत थे। रामानुजाचार्य ने वैष्णवभक्ति का प्रचार करते हुए विश्वास व विचार का समन्वय उपस्थित किया था, जो इस्लाम से कही अधिक आगे की

वस्तु थी। रामानुज के मतानुसार सभी जातियो के स्त्री-पुरुष ईश्वरोपासना व मुक्ति के समान रूप से अधिकारी थे। भक्ति-सप्रदाय का आन्दोलन स्पष्टत इस्लाम के प्रतिरोध के लिए किया गया भारतीय जनता का सास्कृतिक अभियान था।

राजस्थान, मालवा व गुजरात मे जैनधर्म का प्रचार था। जैनसाहित्य का स्वर्णकाल समाप्तप्राय था, किन्तु अब भी अनेक जैनाचार्य लोकजीवन में अपना प्रमुख स्थान बनाये हुए थे। आचार्य जिनप्रभ जैनसाहित्य के स्वर्णयुग के प्रमुख साहित्यकार थे। बहुमुखी प्रतिभा के धनी होने से सुल्तान के कानो तक उनकी ख्याति पहुँची थी और उन्होने सुल्तान से भेंट करके उसे अपने विचारो से प्रभावित किया था।

मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में एक ओर तो हिन्दूधर्म पर इस्लाम का प्रभाव पड रहा था, दूसरी ओर इस्लाम पर भी हिन्दुओ के संपर्क से प्रभाव बढता जा रहा था। सूफी सन्तो पर भारतीय वेदान्त का सर्वाधिक प्रभाव पडा था। एक ओर हिन्दू सास्कृतिक अभियान के लिए अपने को तैयार कर रहे थे। दूसरी ओर मुसलमान हिन्दुओ के धार्मिक व ज्ञान-विज्ञान-सम्बन्धी विचारधाराओ से परिचित होते जा रहे थे।

साहित्यिक विकास

इस समय मे सस्कृत और अपभ्र श साहित्य का ह्रास होता जा रहा था, साथ ही प्रान्तीय भाषाएँ अधिक प्रभाव ग्रहण करती जा रही थी। फिर भी दार्शनिक व धार्मिक साहित्य अब भी सस्कृत में ही लिखा जाता था। जैन साहित्यकारो ने उस समय में अनेक नाटको व काव्यो की रचना भी की थी उनका प्रकाश में आना अभी शेष है। सस्कृत भाषा में ग्रन्थरचना इसलिए भी होती थी कि जिससे उनका भारतभर में प्रचार हो सके, क्योकि संस्कृत उस समय भी अन्त प्रान्तीय व्यावहारिक भाषा थी। हिन्दी, मराठी, बगला व दक्षिण की तमिल, तेलगू आदि भाषाओ मे प्रौढ साहित्य की रचना प्रारम्भ हो गई थी। हिन्दी का प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो खिल्जी व तुग-

लक सल्तनत का राजकवि था। वह हिन्दी में मनोरजन साहित्य का जन्मदाता था। उसे खडी वोली को सर्वप्रथम प्रयोग करने का श्रेय प्राप्त है। इब्नवतूता नामक अफ्रीकी यात्री मुहम्मद तुगलक के समय भारत मे आया था। उसका यात्रावर्णन साहित्य व इतिहास की वहुमूल्य सम्पत्ति है। जियाउद्दीन वर्नी तुगलककाल का सवसे प्रसिद्ध इतिहासकार है जो मुहम्मद का दरवारी था। मुहम्मद तुगलक के दरवार में एसामी, वद्रे-चाच आदि कवियो को भी पर्याप्त सम्मान प्राप्त था। विद्या-व्यसनी होने से मुहम्मद तुगलक साहित्यकारो का पर्याप्त सम्मान करता था और स्वय भी काव्यरचना करता था।

सास्कृतिक मूल्याकन

मुहम्मद तुगलक ने अनेक योजनाएँ वनाईं और क्रियान्वित न कर पाने के कारण उसे इतिहास में पागल तक कहा गया। किन्तु फिर भी उसका शासनकाल उसकी उदारदृष्टि के परिणाम स्वरूप अत्यन्त महत्त्व पूर्ण रहा। उसके विचारो से प्रभावित होकर ही उसके उत्तराधिकारी फिरोज तुगलक ने अनेक जनहितकारी योजनाओ को क्रियान्वित किया।

हिन्दू संस्कृति के लिए तो यह काल पर्याप्त महत्त्व का था ही। गुजरात, राजस्थान, मालवा आदि पददलित हो चुके थे या निरन्तर आक्र-मणो के शिकार वनते जा रहे थे। इस भूखण्ड के जैन-साहित्यकारो ने निश्चय ही इस काल में महत्त्वपूर्ण सास्कृतिक कार्य किया। अनेक राज-नैतिक उत्थान-पतनो के उपरान्त भी वैदिक साहित्य को कण्ठस्थ करके सुरक्षित वनाए रखने का गौरव ब्राह्मणो को प्राप्त है। लगभग यही गौरव इस काल के जैन-साहित्यकारो को मिलना चाहिए जिन्होने विनाश के लोमहर्षक दृश्यो के वीच गुजरात व राजस्थान में पल्लवित व विकसित जैन-साहित्य की स्वर्णकालीन परपरा की पवित्रता व गुरुता को नष्ट होने से ही नही वचाया वरन् नवीन साहित्य के सृजन में भी पर्याप्त योग दिया।

राजा दुर्लभराज के सन्मुख पहुँचे और उन्हें स्मरण दिलाया कि "आपके पूर्वज चायोत्कट वंशीय महाराज वनराज ने 'वनराज विहार' नाम से पार्श्वनाथ मन्दिर की स्थापना करके यह व्यवस्था दे दी थी कि यहाँ केवल चैत्यवासी यतिजन ही ठहर सकते हैं।" अत इन क्रियाधारियो को नगर से बाहर निकालने का आदेश प्रदान करें। महाराज दुर्लभराज केवल अन्धानुकरण करनेवाले व्यक्ति नही थे, वे गुणी थे, गुणिजनो के प्रति उनके हृदय में आदरभाव था अत चैत्यवासियो के दुराग्रह को उन्होने उपेक्षा की दृष्टि मे देखा। यहाँ भी अपने प्रयत्नो को असफल होते देखकर उन्होंने शास्त्रार्थ का प्रस्ताव रखा। इस प्रस्ताव को महाराजा ने उपयुक्त समझा और पुरोहित सोमेश्वर के द्वारा आचार्य वर्धमान से इसकी स्वीकृति चाही। वर्धमान और जिनेश्वर तो यह चाहते ही थे, भला वे ऐसे स्वर्णावसर को कैसे छोड सकते थे। उन्होंने स्वीकृति दे दी और महाराजा दुर्लभराज की अध्यक्षता में पचासरा पार्श्वनाथ मन्दिर मे शास्त्रार्थ होने का निश्चय हुआ।

निश्चित समय पर सूराचार्य के नेतृत्व में ८४ चैत्यवासी आचार्य खूब सज-धज कर वहाँ उपस्थित हुए। ठीक समय पर दुर्लभराज भी वहाँ पधारे। इनकी अध्यक्षता में शास्त्रार्थ प्रारभ हुआ। एक ओर से जिनेश्वराचार्य और दूसरी ओर से सूराचार्य थे। शास्त्रार्थ सूराचार्य ने प्रारभ किया। उनका कहना था कि 'जिन गृहवास ही मुनियों के लिए समुचित है और वही पर निरपवाद ब्रह्मव्रत का पालन सभव हो सकता है।' 'वसतिवास अपवाद से रहित नही है इसीलिए त्याज्य है।' सूराचार्य ने अनेक युक्तियो के द्वारा अपने पक्ष का समर्थन किया परन्तु जिनेश्वर ने उन सभी युक्तियो का खण्डन बडी योग्यता के साथ करते हुए वसतिमार्ग का प्रतिपादन किया। उन्होने अत्यन्त स्पष्ट और कटु आलोचना करते हुए चैत्यवास के तत्कालीन अनुचित और अपवादपूर्ण वातावरण को मुनि-जीवन के लिए सर्वथा अनुपयुक्त तथा असगत बतलाया। जिनेश्वर की वाक्पटुता, अकाट्य तर्क-शैली तथा प्रकाण्ड पाडित्य से न केवल उनके प्रतिपक्षी ही पराभूत और पराजित हुए अपितु

वहाँ पर बैठे हुए निष्पक्ष विद्वान् तथा गणमान्य लोग भी प्रभावित हुए।[1] इसी के फलस्वरूप राजा दुर्लभराज ने (सं० १०६६-१०७८ के मध्यकाल में) करडी हट्टी मे वसतिमार्गियो के लिये एक स्थान प्रदान किया और इस प्रकार गुजरात में वसतिमार्ग का सर्व प्रथम आविर्भाव हुआ।

खरतरगच्छीय परम्परा एव पट्टावलियो के अनुसार जिनेश्वरसूरि की शास्त्रार्थ में विजय और उनकी उग्र एव प्रखर चारित्रिक क्रियाशीलता देखकर राजा दुर्लभराज ने इन्हें खरतर-विरुद से सबोधित किया। यही से इस पक्ष का नाम खरतरगच्छ पडा और यह विरुद व्यवहार मे भी प्रयुक्त होने लगा।

वर्धमानसूरिजी रचित निम्नलिखित कृतियाँ प्राप्त होती है —

१ उपदेशपद टीका र० सं० १०५५,
२. उपदेशमाला वृहदवृत्ति
३. उपमितिभवप्रपञ्च कथासमुच्चय
४ वीरपारणकस्तोत्र गाथा ४६,
५ वर्धमानजिनस्तुति गाथा ४ (पापाघाघानि)।

जिनेश्वरसूरि न केवल वाक्चातुरी और शास्त्र-चर्चा के ही आचार्य थे अपितु लेखिनी के भी प्रौढ आचार्य थे। इनकी प्रणीत निम्न रचनाएँ प्राप्त होती हैं —

१. प्रमालक्ष्म स्वोपज्ञटीकासहित
२. अष्टकप्रकरणटीका र० सं० १०८०
३. चैत्यवन्दनकप्रकरण र० सं० १०९६
४. कथाकोपप्रकरण स्वोपज्ञटीकासह र० स० ११०८,

---

१. चौलुक्यनृपति दुर्लभराज की सभा में चैत्यवासी पक्ष के समर्थक अग्रणी सूराचार्य जैसे महाविद्वान् और प्रवल सत्ताशील आचार्य के साथ शास्त्रार्थ कर उसमें विजय प्राप्त किया।—मुनि जिन विजय : कथा कोष प्रस्तावना, पृ० ४

आचार्य जिनप्रभसूरि इस गौरव के अधिकारी साहित्यकारो में शीर्ष स्थानीय है।

गुरु-परम्परा

श्रमण भगवान् महावीर के शासन में विक्रम की ८ वी शती से पूर्व चैत्यवास नाम से प्रसिद्ध जिस शिथिलाचार परम्परा का उद्भव और ११ वी शती तक जिसका प्रवल वेग से प्रचार हुआ उस चैत्यवास-प्रथा का उत्मूलन कर सिद्धान्तोक्त श्रमण एव श्रावक वर्ग को पुन प्रतिष्ठित करने का श्रेय खरतरगच्छ के आचार्यों को ही प्राप्त है। सुविहित पक्ष और विधिपक्ष इस गच्छ के अपर नाम हैं। इस गच्छ का जहाँ शास्त्रीय दृष्टि से महत्व है वहाँ इसका ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस गच्छ का नामकरण अन्य गच्छो की तरह सामान्य विशेषताओ के कारण नही हुआ है अपितु सैद्धान्तिक आधार पर प्रवल सघर्ष करते हुए क्रान्ति की ज्वाला फैलाने के कारण हुआ है। इस क्रान्ति के प्रमुख सूत्रधार हैं आचार्य वर्धमान और आचार्य जिनेश्वर।

आचार्य वर्धमान अम्मोहर प्रदेश में ८४ स्थानो के नायक चैत्यवासी जिनचन्द्राचार्य के शिष्य थे। सिद्धान्त-वाचना ग्रहण करते हुए जिन मन्दिर के विषय में ८४ आशातनाओ के प्रसग को पढकर और चैत्यवास के व्यावहारिक जीवन को देखकर इन्हें ग्लानि उत्पन्न हुई, फलस्वरूप सारा वैभव त्यागकर सुविहित श्रमण उद्योतनाचार्य के शिष्य वनकर शास्त्रोक्त साधुत्व का अतरग और वहिरग समान रूप से प्रतिपादन करने लगे।

आचार्य जिनेश्वर इन्ही वर्धमानाचार्य के सुयोग्य शिष्य एवं पट्टधर हैं। प्रभावकचरित के अनुसार आचार्य जिनेश्वर दीक्षित होने के पूर्व मध्य देश के निवासी कृष्ण नामक ब्राह्मण के पुत्र थे। इनका पूर्व नाम श्रीधर था तथा इनके अनुज का नाम श्रीपति था। दोनो भाई वडे प्रतिभा-शाली और मेधावी थे। इन्होने वेद, वेदाग, इतिहास, पुराण, षड्दर्शन शास्त्र और स्मृतिशास्त्र आदि समग्र साहित्य का विधिवत् अध्ययन किया

था। अध्ययनोपरान्त देशाटन करते हुए ये दोनो भाई धारानगरी[1] में पहुँचे। धारानगरी के श्रेष्ठि लक्ष्मीपति के सपर्क से दोनो भाइयो का आचार्य वर्धमान से साक्षात्कार हुआ। आचार्य के उपदेश और साधना से प्रभावित होकर दोनो ने वर्धमानाचार्य का शिष्यत्व अंगीकार किया। दीक्षा-ग्रहण के पश्चात् दोनो भाइयो ने जैन-शास्त्रो का अध्ययन वडी लगन तथा तत्परता के साथ किया। शास्त्रो के पारंगत होने पर आचार्य वर्धमान ने दोनो भाइयो को आचार्यपद प्रदान किया। इसी समय से ये दोनो जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि के नाम से प्रख्यात हुए।

वर्धमानसूरि को चैत्यवास जीवन का कटु अनुभव होने के कारण इस परम्परा के प्रति क्षोभ एव वेदना थी कि महावीर के शासन का यह विकृत रूप दूर होना ही चाहिए और इधर जिनेश्वर जैसे दुर्धर्ष विद्वान् शिष्य का संयोग मिल जाने से इन्होने इस प्रथा का उन्मूलन करने का दृढ निश्चय करके १८ शिष्यो के साथ चैत्यवासियो के गढ अणहिलपुर पत्तन की ओर प्रयाण किया। दिल्ली से विहार करते हुए पाटण पहुँचे। क्रिया-शील साधु होने के कारण इन्हे निवास के लिए स्थान भी प्राप्त नही हुआ, आचार्य जिनेश्वर के वाग्वैदग्ध्य से प्रभावित होकर राज-पुरोहित सोमेश्वर ने अपनी चतु शाल में रहने का आग्रह किया। जैनेतर समाज में आचार्य की यशःकीर्त्ति को वढते देखकर चैत्यवासियो ने इन्हे निकालने के लिए अनेक प्रकार के षड्यन्त्र रचे, असफल होने पर पाटण के तत्कालीन महा-

---

१. धारानगरी मे इस समय महाराजा भोज का राज्य था। स० १०६७ का मोडासा का अभिलेख मिलने से यह निश्चित है कि १०६७ से ११११ तक भोज का राज्यकाल था। राजा भोज के समय मे धारा-नगरी विद्वानो की क्रीडास्थली रही है। सभवत श्रीवर और श्रीपति विद्योपार्जन के पश्चात् अपने पाण्डित्य प्रदर्शन या सम्मान प्राप्त करने हेतु यहाँ आये हो।—डा० दशरथ शर्मा · राजा भोज निवन्ध (पवार वश दर्पण)।

५ पञ्चलिङ्गीप्रकरण
६ निर्वाणलीलावतीकथा
७ षट्स्थानप्रकरण
८ सर्वतीर्थमहर्षिकुलक
९ वीरचरित्र ।

इनके अनुज एव गुरुभ्राता वुद्धिसागरसूरि भी प्रतिभाशाली विद्वान् थे । इनकी एक ही कृति प्राप्त होती है, 'वुद्धिसागर व्याकरण ।'

जिनेश्वरसूरि का शिष्य-समुदाय भी विशाल था । आपने अपने स्व-हस्त से जिनचन्द्रसूरि, अभयदेवसूरि, धनेश्वरसूरि अपरनाम जिनभद्र-सूरि और हरिभद्रसूरि को आचार्यपद तथा धर्मदेवगणि, सुमतिगणि, सहदेवगणि और विमलगणि को उपाध्यायपद प्रदान किया था । ख्याति-प्राप्त ४ आचार्य और तीन उपाध्याय जहाँ शिष्य हो वहाँ मुनिमण्डल का और पौत्रशिष्यो का अत्यधिक सख्या में होना स्वाभाविक ही है ।

जिनचन्द्रसूरि—जिनेश्वरसूरि के पट्ट पर जिनचन्द्रसूरि हुए । इनके सम्वन्ध मे कोई इतिवृत्त प्राप्त नही है । ये वहुश्रुत गीतार्थ थे । इनकी एक मात्र कृति 'सवेग रंगशाला' नामक प्राकृत भाषा में गुफित कथाग्रथ प्राप्त है जिसकी रचना ११२५ में हुई है ।

अभयदेवसूरि—जिनचन्द्रसूरि के पट्ट पर अभयदेवसूरि हुए । इनका पूर्व नाम अभयकुमार था । ये धारानगरी के निवासी श्रेष्ठी महीधर के पुत्र थे । इनकी माता का नाम धनदेवी था । जिनेश्वरसूरि के कर-कमलो से ही इन्होने दीक्षा एव आचार्यपद प्राप्त किया था ।

अभयदेवसूरि समग्र जैन-समाज में नवागी टीकाकार के रूप में सिद्धान्तशास्त्रो के प्रामाणिक आप्त आचार्य माने जाते है । इन्होने स्थानाग आदि नव अंगो पर टीकाओ की रचना की । इन टीकाओ का सशोधन तत्कालीन चैत्यवासी समाज के प्रमुख एवं प्रसिद्ध आचार्य द्रोणाचार्य ने किया है । इनकी सर्जित साहित्य-सम्पत्ति आज भी ६२०० श्लोक परिमाण मे प्राप्त होती है । सर्जित साहित्य इस प्रकार है—

वल्लभ की विनयशीलता, ज्ञान-पिपासा और योग्यता का अकनकर वडे आत्मीयभाव से जिनवल्लभ को समस्त आगामो की वाचना प्रदान की। अभयदेवसूरि के भक्त एक दैवज्ञ से समस्त ज्योतिप्शास्त्र का भी जिनवल्लभ ने अध्ययन किया।

वाचनानन्तर जव जिनवल्लभ अपने गुरु के पास वापस जाने लगे तो अभयदेवसूरि ने पीठ थपथपाकर वडे प्रेम से कहा कि 'वत्स! सिद्धान्त के अनुसार जिस प्रकार साधुओ का आचार-व्रत है उसी प्रकार पालन करने का प्रयत्न करना।' अभयदेवाचार्य के वचनो का इन्होने मार्ग में ही पालन किया और मरुकोट्ट के देवगृह में विधिवाक्य के श्लोक उत्कीर्ण करवाये। अपने गुरु जिनेश्वर से मिलकर, चैत्यवास त्याग की आज्ञा प्राप्त कर पुन पत्तन लौटे और आचार्य अभयदेव के कर-कमलो से उपसम्पदा ग्रहण कर अभयदेवसूरि के शिष्य वने।

उपसम्पदा ग्रहण करने के पश्चात् जिनवल्लभगणि चित्तौड आये और वहाँ चैत्यवासियो को निरस्तकर पार्श्वनाथ और महावीरविधि-चैत्यो की स्थापना की। नागपुर तथा नरवरपुर मे भी विधिचैत्यो की स्थापना की। आचार्य जिनेश्वर ने जिस क्रान्ति की चिनगारी पाटन में लगायी थी उसको मेवाड और मारवाड आदि देशो में ज्वालारूप में फैलाकर चैत्यवास-परम्परा को भस्मीभूत करनेवाले क्रान्तिकारी जिनवल्लभगणि ही हैं। इनकी समस्यापूर्त्ति-सवधी पाण्डित्य से धारानगरी के नृपति नरवर्मा भी प्रभावित हुए थे और इनके भक्त हो गये।

आचार्य देवभद्रसूरि ने जिनवल्लभगणि को स० ११६७ आपाढ शुक्ल ६ को चित्तौड नगरी में वीरविधिचैत्य मे विधि-विधान महोत्सव के साथ आचार्यपद प्रदानकर अभयदेवसूरिका पट्टधर घोपित किया। आचार्यपदानन्तर कुछ मास के ही पश्चात् अर्थात् ११६७ कार्त्तिक कृष्णा १२ के दिन जिनवल्लभसूरि का स्वर्गवास हो गया।

जिनवल्लभसूरि जहाँ क्रान्तिकारी और प्रवल सुधारक थे वहाँ समग्र

शास्त्रो के निष्णात आचार्य भी थे। इनकी अनेक रचनाओ पर तत्कालीन अन्य गच्छों के प्रमुख एवं प्रभावशाली आचार्यों ने टीकाएँ रचकर इन्हें आप्तपुरुष स्वीकार किया है। इनकी रचित निम्नलिखित कृतियाँ आज भी उपलब्ध हैं —

१. सूक्ष्मार्थविचारसारोद्धारप्रकरण
२. आगमिकवस्तुविचारसारप्रकरण
३ पिण्डविशुद्धिप्रकरण
४. सर्वजीवशरीरावगाहनास्तव
५ श्रावकव्रतकुलकम्
६. पौषधविधिप्रकरण
७ प्रतिक्रमणसमाचारी
८ द्वादशकुलक
९. धर्मशिक्षाप्रकरण
१०. संघपट्टक
११ प्रश्नोत्तरैकषष्टिशतकाव्य
१२ शृंगारशतक
*चित्रकूटीयवीरचैत्यप्रशस्ति
१३. आदिनाथचरित
१४. शान्तिनाथचरित
१५ नेमिनाथचरित
१६ पार्श्वनाथचरित
१७. महावीरचरित
१८. वीरचरित्र
१९ चतुर्विंशतिजिनस्तोत्राणि
*स्वप्नसवृत्तिका
२०. पञ्चकल्याणकस्तव
२१ सर्वजिनपञ्चकल्याणकस्तव
२२ प्रथमजिनस्तव
२३ ऋषभजिनस्तुति
२४ लघु अजितशान्तिस्तव
२५. स्तम्भनपार्श्वजिनस्तव
२६ क्षुद्रोपद्रवहरपार्श्वस्तोत्र
२७ पार्श्वस्तोत्र (चित्रकाव्य)
२८ पार्श्वनाथाष्टक
२९ महावीरविज्ञप्तिका
३०. सर्वज्ञविप्तातिका
३१. नन्दीश्वरचैत्यस्तव
३२. भवारिवारणस्तोत्र
३३ पञ्चकल्याणकस्तोत्र
३४. कल्याणकस्तव
३५ सर्वजिनस्तोत्र
३६-४० पार्श्वस्तोत्र
४१. सरस्वतीस्तोत्र
४२ नवकारस्तव।

जिनपालोपाध्याय द्वारा चर्चरी टीका में उल्लिखित आगमोद्धार तथा प्रचुरप्रशस्ति आदि ग्रन्थ आज अनुपलब्ध हैं।

युगप्रधान जिनदत्तसूरि[1]—जिनवल्लभसूरि के पट्टधर जिनदत्तसूरि हुए। ये धवलका (धोलका) निवासी हुम्ब ज्ञातीय श्रेष्ठि वाछिग के पुत्र है। इनकी माता का नाम वाहड देवी था। इनका जन्म ११३२ मे हुआ। स० ११४१ में नव वर्ष की अवस्था में धर्मदेवोपाध्याय के पास दीक्षा ग्रहण की। इनका दीक्षा-समय का नाम सोमचन्द्र था। इनका प्रारम्भिक अध्ययन सर्वदेवगणि के पास हुआ। न्याय-दर्शन का अध्ययन पाटन मे तथा सिद्धान्तो की वाचना हरिसिंहाचार्य के पास मे हुई। स० ११६९ वैशाख शुक्ला १ के दिन चित्तौड के महावीर-विधिचैत्य में बडे महोत्सव के साथ देवभद्राचार्य ने इनको आचार्यपद प्रदान कर जिनवल्लभसूरि का यह पट्टधर-घोषित किया। आचार्यपद के समय आपका सोमचन्द्र नाम परिवर्तित कर जिनदत्तसूरि रखा गया।

आचार्य होने के पश्चात् आपने मरुधरदेश की ओर विहार किया। नागोर होकर अजमेर आये। अजमेर के चौहान नृपति अर्णोराज ने आपके समागम का लाभ उठाया और श्रद्धापूर्वक विधिचैत्य-निर्माण के लिये भूमि भेंट रूप में प्रदान की। यहाँ से वागड देश की ओर गये। क्रमश. रुद्रपल्ली, विक्रमपुरा, उच्चानगरी; नवहर, चित्रकूट आदि मरुधर के प्रसिद्ध नगरो में विहार करते हुए जिनेश्वराचार्य एव जिनवल्लभसूरि प्रतिपादित विधिपक्ष का प्रबलवेग एवं प्रखरता से प्रचार किया तथा अनेको विधिचैत्यो का निर्माण करवा कर स्व करकमलो से प्रतिष्ठाएँ करवाई। यही कारण है कि इनकी शास्त्रसम्मत विशुद्ध चारित्रसम्पदा देखकर अनेको चैत्यवासी आचार्यों ने आपके पास उपसम्पदा ग्रहण की। जिनमें से कतिपय के नाम इस प्रकार है :—जयदेवाचार्य, जिनप्रभाचार्य, विमलचन्द्र, जयदत्तमन्त्रवादी, गुणचन्द्रगणि, ब्रह्मचन्द्रगणि, रामचन्द्रगणि, जीवानन्द,। जहाँ चैत्यवासी

---

१. विशेष परिचय के लिये देखें, मुनि जिनविजयजी सपादित 'खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली' (सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रथाक ४२), तथा अगरचन्द भवरलाल नाहटा लिखित 'युगप्रधान जिनदत्तसूरि'।

आचार्य भी चैत्यवास-परम्परा का त्याग कर उपसम्पदा ग्रहण करते हो, वहाँ श्रावक समुदाय का लक्षाधिक मात्रा मे सुविहित पक्ष का स्वीकार करना स्वाभाविक ही है।

इसके बाद त्रिभुवनगिरि के नृपति कुमारपाल को प्रतिबोध देकर जैन मुनियो के सम्बन्ध में जो प्रतिबन्ध लगाये गए थे, उन्हें निरस्त करवाये।

आपने स्वहस्त से जिनचन्द्र, जीवदेव, जयसिंह, जयचन्द्र को आचार्य पद, जिनशेखर, जीवानन्द को उपाध्याय पद, जिनरक्षित, शीलभद्र, स्थिर-चन्द्र, ब्रह्मचन्द्र, विमलचन्द्र, वरदत्त, भुवनचन्द्र, वरनाग, रामचन्द्र, मणिभद्र को वाचनाचार्यपद तथा श्रीमती, जिनमती, पूर्णश्री, जिनश्री, ज्ञानश्री नामक पाँच साध्वियो को महत्तरापद प्रदान किया। इससे स्पष्ट है कि आपका शिष्य-प्रशिष्य समुदाय सहस्राधिक हो तो कोई आश्चर्य की बात नही है।

पट्टावलियो के अनुसार अम्बिका देवी द्वारा नागदेव के हथेली मे अंकित पद्य पढने से ये 'युगप्रधान' कहलाये।

सं० १२११ आषाढ शुक्ला ११ को इनका अजमेर में स्वर्गवास हुआ। जैसे आप धर्म प्रचार तथा उपदेश देने में सिद्धहस्त थे वैसे ही साहित्य-सर्जन करने में भी सिद्धहस्त थे। इनका प्राकृत, संस्कृत तथा अपभ्रंश भाषा पर पूर्ण आधिपत्य था। रचित साहित्य इस प्रकार है —

१ गणधरसार्द्धशतक	९ महाप्रभावक-स्तोत्र
२ गणधरसप्ततिका	१० चक्रेश्वरीस्तोत्र
३ सर्वाधिष्ठात्रीस्तोत्र	११ योगिनीस्तोत्र
४. गुरुपारतन्त्र्य-स्तोत्र	१२ सर्वजिनस्तुति
५ सिग्घमवहरउ स्तोत्र	१३ वीरस्तुति
६ श्रुतस्तव	१४ सदेहदोलावलीप्रकरण
७ अजितशान्ति-स्तोत्र	१५ उत्सूत्रपदोद्घाटनकुलक
८ पार्श्वनाथमन्त्रगर्भित-स्तोत्र	१६ चैत्यवन्दनकुलक

१७ उपदेशकुलक
१८ उपदेशधर्मरसायन
१९ कालस्वरूपकुलक
२० चर्चरी
२१ अवस्थाकुलक
२२ विंशिका
२३ पदव्यवस्था
२४ शान्तिपर्वविधि
२५ वाडीकुलक
२६ आरात्रिकवृत्तानि
२७ आध्यात्मगीतानि ।

परम्परागत जनश्रुतियो एव पट्टावलियो के अनुसार आपके सम्बन्ध मे अनेको चमत्कारी घटनाओ तथा ओसवाल जाति के ५२ गोत्रो की स्थापना के उल्लेख प्राप्त होते है ।

मणिधारी जिनचन्द्रसूरि[१]—युगप्रधान जिनदत्तसूरि के पट्टधर मणिधारी जिनचन्द्रसूरि हुए । इनका जन्म स० ११९७ भादो शुक्ला अष्टमी को हुआ था । विक्रमपुर निवासी साह रासल के पुत्र है । इनकी माता का नाम देल्हणदेवी है । स० १२०३ फाल्गुन शुक्ला ९ को इन्होने दीक्षाग्रहण की । स० १२०५ वैशाख शुक्ला ६ को विक्रमपुर में जिनदत्तसूरि ने अपने करकमलो से इनको आचार्यपद प्रदान कर जिनचन्द्रसूरि नाम रखा । नव वर्ष जैसी लघु अवस्था में युगप्रधान जिनदत्तसूरि जैसे आचार्य की दृष्टि में परीक्षोत्तीर्ण होकर आचार्य वनना इनके विशिष्ट व्यक्तित्व का द्योतक है । स० १२११ आषाढ शुक्ला ११ को जिनदत्तसूरि का स्वर्गवास होनेपर इन्होंने गच्छनायक पद प्राप्त किया ।

सं० १२२२ में रुद्रपल्ली नगर में पद्मचन्द्राचार्य के साथ आपका 'न्यायकन्दली' पठन के प्रसंग को लेकर 'तम' द्रव्य है या नही है' इस पर चर्चा हुई । इस चर्चा ने शास्त्रार्थ का रूप ले लिया । अन्त में रुद्रपल्ली की

---

१ विशेष परिचय के लिए देखें, मुनि जिनविजय-सपादित 'खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली' तथा अगरचंद भवरलाल नाहटा द्वारा लिखित 'मणिधारी जिनचन्द्रसूरि' ।

राजसभा मे शास्त्रार्थ हुआ और पद्मचन्द्राचार्य पराजित हुए। आपको राजकीय सम्मान के साथ विजयपत्र मिला।

तत्कालीन दिल्ली के महाराजा मदनपाल के अत्याग्रह से अनिच्छा होते हुए भी स० १२२३ मे आपने दिल्ली पधार कर चातुर्मास किया। इसी चातुर्मास में भादो कृष्णा १४ को आप स्वर्गवासी हुए।

आपके भालप्रदेश में मणि होने से आप मणिधारी के नाम से प्रख्यात हुए। मन्त्रीदलीय (महत्तियाण, महता) जाति को प्रतिबोध देकर जैन बनाने वाले आप ही थे।

आपकी प्रणीत केवल 'व्यवस्थाशिक्षाकुलक नामक' एक ही कृति प्राप्त है।

जिनपतिसूरि—मणिधारी जिनचन्द्रसूरि के पट्टधर षट्त्रिंशद्वाद-विजेता जिनपतिसूरि का जन्म वि० सं० १२१० विक्रमपुर में माल्हू गोत्रीय यशोवर्धन की धर्मपत्नी सूहवदेवी की रत्नकुक्षि से हुआ था। स० १२१७ फाल्गुन शुक्ला १० को जिनचन्द्रसूरि के कर-कमलो मे दीक्षा ग्रहण की। दीक्षानाम नरपति था। सं० १२२३ कार्तिक शुक्ला १३ को बडे महोत्सव के साथ युगप्रधान जिनदत्तसूरि के पादोपजीवी जयदेवाचार्य ने इनको आचार्यपद प्रदानकर जिनचन्द्रसूरि के पट्टधर गणनायक घोषित कर, आचार्य अवस्था मे जिनपतिसूरि नाम प्रदान किया। यह महोत्सव जिनपति-सूरि के चाचा मानदेव ने किया था।

स० १२२८ में विहार करके आशिका पधारे। आशिका के नृपति भीमसिंह भी प्रवेश महोत्सव में सम्मिलित हुए। आशिका स्थित महा-प्रामाणिक दिगम्बर विद्वान् को इन्होने शास्त्रचर्चा में पराजित किया था।

स० १२३९ कार्त्तिक शुक्ला सप्तमी के दिन अजमेर में अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की अध्यक्षता मे फलवर्द्धिका नगरीनिवासी उपकेशगच्छीय पद्मप्रभ के साथ आपका शास्त्रार्थ हुआ। इस समय राज्य-सभा में महामन्त्रि मण्डलेश्वर कैमास तथा वागीश्वर, जनार्दन गौड, विद्यापति

आदि प्रमुख विद्वान् उपस्थित थे। प्रतिवादी पद्मप्रभ मूर्ख, अभिमानी एवं अनर्गल प्रलापी होने से शास्त्रार्थ में शीघ्र ही पराजित हो गया। निजपति-सूरि की प्रतिमा एव सर्वशास्त्रो में असाधारण पाण्डित्य को देखकर पृथ्वीराज चौहान वहुत प्रसन्न हुए और विजयपत्र हाथी के ओहदे पर रखकर वडे आडम्बर के साथ स्वय उपाश्रय में आकर आचार्यश्री को प्रदान किया।[1]

स० १२४४ में उज्जयन्त-शत्रुञ्जयादि तीर्थों की यात्रार्थ संघ सहित प्रयाण करते हुए आचार्यश्री चन्द्रावती पधारे। यहाँ पर पूर्णिमापक्षीय प्रामाणिक आचार्यश्री अकलङ्कदेवसूरि पाँच आचार्य एव १५ साधुओ के साथ सघ दर्शनार्थ आये। आचार्यश्री के साथ अकलकदेवसूरि की 'जिनपति' नाम एव 'सघ के साथ सावु-साध्वियो को जाना चाहिये या नही' इन प्रश्नो पर शास्त्र-चर्चा हुई और आचार्य अकलंक इस चर्चा में निरुत्तर हुए।

इसी प्रकार कासह्रद में पौर्णमासिक तिलकप्रभसूरि के साथ 'संघपति' तथा 'वाक्यशुद्धि' पर चर्चा हुई जिसमें जिनपतिसूरि ने विजय प्राप्त की।

उज्जयन्त-शत्रुञ्जयादि तीर्थों की यात्रा करके वापस लौटते हुए आशापल्ली पधारे। यहाँ वादिदेवाचार्य परम्परीय प्रद्युम्नाचार्य के साथ 'आयतन-अनायतन' पर शास्त्रार्थ हुआ जिसमें प्रद्युम्नाचार्य पराजय को प्राप्त हुए। इस शास्त्रार्थ का अध्ययन करने के लिये प्रद्युम्नाचार्य का 'वादस्थल' तथा जिनपतिसूरि का 'प्रवोधोदयवादस्थल' द्रष्टव्य है।

आशापल्ली से आचार्यश्री अणहिलपुर पाटन पधारे। यहाँ पर स्वगोत्रीय ४० आचार्यो को स्वमण्डली में समुद्देश करवाकर वस्त्रदानपूर्वक सम्मानित किया।

---

१ इन शास्त्रार्थ का प्रामाणिक सजीव वर्णन के लिये देखें, जिन-पालोपाध्याय-रचित खरतरगच्छवृहद्गुर्वावली, पृ० २५३४ तक।

स० १२५१ में लवणखेटक में राणक केल्हण के आग्रह से दक्षिणावर्त आरात्रिकावतरणोत्सव' वडी धूमधाम से मनाया ।

सं० १२७३ में वृहद्द्वार नगरकोटीय राजाधिराज पृथ्वीचन्द्र की सभा में काश्मीरी प० मनोदानन्द के साथ आचार्यश्री की आज्ञा से जिनपालोपाध्याय ने किया । शास्त्रार्थ का विषय था, 'जैन षड् दर्शनवाह्य हैं ।' इस शास्त्रार्थ में प० मनोदानन्द बुरी तरह पराजय को प्राप्त हुए । राजा पृथ्वीचन्द्र ने जयपत्र जिनपालोपाध्याय को प्रदान किया ।

स० १२७७ आषाढ शुक्ला १० को आचार्यश्री ने गच्छ सुरक्षा की व्यवस्था कर वीरप्रभगणि को गणनायक वनाने का सकेत कर अनशन पूर्वक स्वर्ग की ओर प्रयाण किया ।

आचार्य जिनपतिसूरिकृत प्रतिष्ठाएँ, ध्वजदण्डस्थापन, पदस्थापन महोत्सव, शताधिक दीक्षा महोत्सव आदि धर्मकृत्यो का तथा आचार्यश्री के व्यक्तित्व का अध्ययन एव शिष्य-प्रशिष्यो की विशिष्ट प्रतिमा का अकन करने के लिये द्रष्टव्य है जिनपालोपाध्याय कृत 'खरतरगच्छवृहद् गुर्वावली पृ० २३ से ४८ ।

जिनपतिसूरि-प्रणीत निम्न कृतियाँ प्राप्त है —

१ सघपट्टकवृहद्वृत्ति
२. पञ्चलिङ्गीप्रकरणटीका
३ प्रवोधोदयवादस्थल
४ खरतरगच्छसमाचारी
५ तीर्थमाला
६ पचकल्याणक-स्तोत्र
७ चतुर्विशतिजिनस्तुति
८ विरोधालङ्कारऋषभ-स्तुति
९ अजितशान्तिस्तोत्र
१० अजितशान्तिस्तुति
११ नेमिस्तोत्र
१२ चिन्तामणिपार्श्वनाथ-स्तोत्र
१३ ,, ,,
१४ पार्श्वस्तव
१५ स्तम्भतीर्थ-अजितस्तव
१६ महावीरस्तव
१७ महावीर-स्तोत्र
१८ महावीरस्तुति ।

जिनेश्वरसूरि—जिनपतिसूरि के पट्टधर जिनेश्वरसूरि हुए। इनके जन्म-संवत् का पट्टावलियो में उल्लेख प्राप्त नही है। इनके पिता का नाम नेमिचन्द्र भाण्डागारिक था। इनकी दीक्षा स० १२५८ चैत्रवदी दो को जिनपतिसूरि के करकमलो से हुई, दीक्षा नाम वीरप्रभा रखा गया और १२६० आषाढ कृष्णा ६ को उपस्थापना (बृहद्दीक्षा) हुई। स० १२७३ मे बृहद्द्वारा मे नगरकोटीय राजाधिराज पृथ्वीचन्द्र की राजसभा मे काश्मीरी पडित मनोदानन्द के साथ जिनपालोपाध्याय का जो शास्त्रार्थ हुआ था उसमे आप भी सम्मिलित थे। इस प्रसग में वीरप्रभगणि का उल्लेख होने से यह निश्चित है कि स० १२७३ के पूर्व ही इनको गणिपद प्राप्त हो गया था। स० १२७७ माघ शुक्ला ६ को जावालिपुर (जालोर) के महावीरचैत्य में बडे महोत्सव के साथ सर्वदेवसूरि नामकरण किया गया।

स० १२८९ में स्तम्भतीर्थ (खभात) में यमदण्ड नामक दिगम्बर के साथ पण्डितगोष्ठी हुई। यही पर महामात्य श्री वस्तुपाल ने सपरिवार आकर आचार्यश्री की अर्चना की। सं० १३१९ मे आपके राज्यकाल में उज्जैन में अभयतिलकोपाध्याय ने तपागच्छीय प० विद्यानन्द को शास्त्रार्थ में पराजित कर जयपत्र प्राप्त किया। शास्त्रार्थ का विषय था 'प्रासुक शीतल जल यति को ग्राह्य है या नही।'

स० १३२६ में सघपति अभयचन्द्र ने पालनपुर से आपकी अध्यक्षता में शत्रुंजय-उज्जयन्त आदि तीर्थों की यात्रार्थ सघ निकाला। आपके शासन में प्रतिष्ठाओ एव दीक्षाओ की धूम लगी हुई थी। अनेक प्रकार से शासन-प्रभावना करते हुए स० १३३१ आश्विन कृष्णा ५ को आप स्वर्ग की ओर प्रयाण कर गये।

इनके द्वारा निर्मित-साहित्य निम्नलिखित प्राप्त है :—

१ श्रावकधर्मविधिप्रकरण
२ आत्मानुशासन
३ द्वादशभावनाकुलक
४ सर्वतीर्थमहर्षिकुलक
५. चन्द्रप्रभचरित्र
६ यात्रास्तव

७ रुचिररुचिदण्डकस्तुति
८ चतुर्विंशतिजिनस्तोत्र
९ ,, ,,
१० वासुपूज्यस्तोत्र-यमकमय
११ पार्श्वनाथस्तोत्र
१२ ,, ,,
१३ वावरी
१४ वीरजन्माभिषेक
१५ पालनपुरवासुपूज्यवोली
१६ वीसलपुरवासुपूज्यवोली
१७ शान्तिनाथवोली ।

आचार्य जिनेश्वरसूरि के राज्यकाल में गच्छ में शाखाभेद हुआ जो लघु खरतरशाखा के नाम से प्रसिद्ध है। इस शाखा के प्रथम आचार्य जिनसिंहसूरि हुए जिनका परिचय एव शाखाभेद का कारण आगे के परिच्छेदो में लिखा गया है।

●

जन्म-दीक्षा और आचार्यपद

जन्म

प्राकृत भाषा में रचित वृद्धाचार्य प्रवन्धावलि[1] के अनुसार मोहिलवाडी[2] नगरी में श्रीमालवशीय ताम्वी गोत्रीय मर्हाधक श्रावक महाधर[3]

---

१ मुनि जिनविजयजी द्वारा सम्पादित खरतरगच्छालकार युगप्रधानाचार्य गुर्वावली में प्र० ।

२ नाहटाजी लिखित स० चरित में सोहिलवाडी, शुभशीलगणि-रचित पचशतीकथाप्रवन्ध २९५ में गलितकोटकपुर खरतरपट्टावली न० ३ के अनुसार झूझणू और उ० जयचन्द्रजी भडारस्य पट्टावली में वागड देश के वडौदा ग्राम ।

३ पचशती, जिनदत्त, विजयधर्मसूरि ज्ञानभण्डार आगरा की एक पत्रात्मक अपूर्णपट्टावली के अनुसार दस भाई (दशभ्रातर) थे ।

रहते थे। उनके पुत्र का नाम रत्नपाल था। श्रेष्ठि रत्नपाल की धर्मपत्नी क नाम सेतलदेवी था[१]। इनके कई[२] पुत्र थे जिनमें आप सबसे छोटे थे और आपका नाम सुभटपाल था। एक[3] पट्टावली के आधार पर चरणो की एक अगुलि कम थी इसलिये चलते समय ऐसा आभास होता था कि किंचित् लगडे हो। सात[४]-आठ वर्ष की अवस्था तक आप माता-पिता के सानिव्य में रहे। पश्चात् आचार्य जिनसिंहसूरि के संपर्क मे आये जिसका कारण निम्न था —

आचार्य जिनसिंहसूरि

खरतरगच्छ[५] अपरनाम सुविहित गण के अधिनायक पट्त्रिंशद् वाद-विजेता युगप्रवरागम श्रीजिनपतिसूरि[६] के पट्टधर द्वितीय आचार्य जिनेश्वर-सूरि थे जिनका शासनकाल स० १२७८ से १३३१ तक था। एक समय आचार्य जिनेश्वर पल्हूपुर की एक औषधशाला में विराजमान थे। उस समय अचानक ही आचार्यश्री का दण्ड तड-तड शब्द करता हुआ टूट गया। आचार्यश्री ने तड-तड शब्द सुनकर शिष्यो से पूछा कि यह शब्द कहाँ हुआ? शिष्यो ने कहा—भगवन्! आपके हस्त दण्ड के दो टुकडे हो गए। उसी समय आचार्यश्री ने इस आकस्मिक प्रसग के फल का चिन्तन-विचार किया

---

१ एक प्राचीन पद्य में भी —

रमणपाल णिम्मल विसाल कुलकमलदिवायर।
खेतलएवि वरकुक्खिसर रायहस सुदर चरिय।

२. पच० सातपुत्र, स० पट्टावली ३० पाचपुत्र में तृतीय नवर वि० धर्म० दश भाइयो में से एक भाई के पुत्र (तत्र एकस्य लघु)।

३ विजयधर्म० पट्टावली।

४ पच भूमिगृह में आपका लालन-पालन हुआ था (भूमिगृहे वर्धमान)।

५ खरतरगच्छ की उत्पत्ति के सम्बन्ध में देखें लेखककृत 'वल्लभभारती'।

६ आचार्य जिनपतिसूरि और जिनेश्वरसूरि का जीवन चरित देखें, लेखककृत 'खरतरगच्छ का इतिहास', प्रथम भाग।

और हृदय में निश्चित किया कि 'मेरे पश्चात् इस विशाल खरतरसंघ में त्रिभेद पड जायगा' तो क्यो नही मैं अपने हाथो से ही शाखाभेद कर दूँ।

इसी अवसर पर (सभवतः दिल्ली प्रदेशीय) श्रीमालसघ ने मिलकर विचार किया कि अपने देश में कोई गुरु-धर्माचार्य नही आते हैं तो क्यो नही गच्छनायक से निवेदन कर अपने धर्माचार्य को इस प्रदेश मे लावें। ऐसा विचार कर श्रीसघ के प्रमुख-प्रमुख श्रेष्ठि आचार्य जिनेश्वर के पास आये और विधिपूर्वक वन्दन कर प्रार्थना की कि भगवन्! हमारे देश में कोई भी गुरु नही आते है तो आपही श्रीमुख से फरमाइये कि हम क्या करें। गुरु के विना धर्म साधन नही हो सकता। स्वामिन्! आप जानते हैं कि सुयोग्य चालक (सारथी) के विना बैल कभी भी सीधे मार्ग पर नही चलते हैं। अत हमें धर्मसारथी शीघ्र ही प्रदान कीजिये।

श्रीमालसघ की प्रार्थना को हृदयगम और पूर्वनिमित्त फल का विचार करके आचार्य जिनेश्वर ने लाडनू निवासी[1] श्रीमालवशोत्पन्न जिनसिंह गणि[2] को सं० १२८० पल्हूपुर[3] में आचार्य बनाकर जिनसिंहसूरि नामकरण किया और सूरिमन्त्र सहित पद्मावती मन्त्र साधना सहित प्रदान किया

---

१ प्राकृतप्रबन्ध में "लाडणुवाउत्तो" प्रयोग किया है। इस पद का क्या अर्थ है? विद्वद्गण विचार करें।

२ जिनसिंहगणि का जन्म कब हुआ? उनके माता-पिता का क्या नाम था? उन्होंने कब दीक्षा ग्रहण की? कब गणि बने? आदि इतिवृत्त प्राप्त नही है।

३ जिनपालोपाध्याय लि गुर्वावली के अनुसार स १२८० में आचार्य जिनेश्वर श्रीमालनगर में विराजते थे। और इस शाखाभेद तथा जिनसिंहगणि आचार्यपदप्राप्ति आदि का कोई उल्लेख नही है। अतः यह स्थल विचारणीय है। क्योकि जिनपालोपाध्याय ने गणनायक के जीवन में घटित प्रत्येक घटना का आलेखन किया है, तो क्या यह घटना आलेख्य नही थी।

और आदेश दिया कि 'यह श्रीमालसघ तुम्हे सौपता हूँ। सघ सहित उस प्रदेश मे जाओ और धर्मपताका फहराओ।' इस आदेश को प्राप्त कर जिन-सिंहसूरि श्रीमालसघ सहित उस प्रदेश मे आये।

इस प्रकार यह जिनसिंहसूरि से 'लघु खरतरशाखा' का उद्भव हुआ। आचार्य जिनेश्वरसूरि ने स० १३३१ में ओशवशीय जिनप्रबोधसूरि को अपने पद पर स्थापित किया, जो कि मूलगच्छा परम्परा में मर्वमान्य थे।

पद्मावती आराधना

एक समय आचार्य जिनचन्द्रसूरि ढिल्ली (दिल्ली) आये। धर्मोपदेश के समय आचार्य ने कहा कि 'मोक्ष का साधन होने के कारण नवीन जिन-प्रासादो का निर्माण करना चाहिये।' उपदेश श्रवण कर उपासक वर्ग ने विवेचन किया कि—नूतन प्रासादो के निर्माण का फल क्या ? क्योकि मुसल-मान लोग न केवल जैनो के अपितु हिन्दुओ के भी प्राचीनतम तीर्थो, मदिरो, प्रतिमाओ का नाश करते है और नष्ट करके उत्सव भी मनाते है। उनके इस अधार्मिक कार्य को रोकने की किसी में शक्ति नही है। अब हम प्राचीन-ऐतिहासिक स्थलो का भी रक्षण नही कर सकते तो नूतन निर्माण का क्या फल है ? यदि आप मे रक्षण की शक्ति है तो पहिले प्राचीनो का रक्षण कीजिये ?

उपासक वर्ग के इस आह्वान को सुनकर आचार्य जिनसिंह ने देवारा-धन का निश्चय किया और कहा कि—मैं छ. मास पर्यन्त पद्मावती का आराधन कर उसे प्रत्यक्ष करूँगा और श्रीसघ के कष्ट का निवारण करूँगा। किन्तु आराधनविधि के अनुसार यह अपेक्षित है कि पद्मिनी स्त्री द्वारा परोसा हुआ भोजन किया जाय और पद्मिनी दिन-रात मेरे समीप रहे। अर्थात् पद्मिनी लक्षणायुक्त नारी के निकटवर्ती रहने पर कठोर मान-सिक ब्रह्मचर्य का पालन और एकनिष्ठ ध्यान से पद्मावती प्रत्यक्ष होती है।' उपासक वर्ग ने साधना-विधि के अनुसार समग्र साधन उपलब्ध कर दिये।

आचार्य जिनसिंह ने छः मास पर्यन्त एकनिष्ठ होकर प्रभावती देवी की उपासना की। आचार्य की दृढभक्ति से पद्मावती प्रत्यक्ष हुई। देवी को प्रत्यक्ष देखकर भी आचार्य बोले नही। ऐसी अवस्था मे पद्मावती ने कहा—

भगवन्! आप बोलते क्यो नही ? विलम्ब से आने का कारण है। आपकी आराधना का मूलभूत कारण समझकर मैं प्रभु के पास गई थी और उनसे पूछकर आई हूँ किन्तु प्रभु द्वारा प्रदत्त प्रत्युत्तर कहने मे असमर्थ हूँ। मुझे क्षमा करिये।

आचार्य . प्रभु द्वारा प्रदत्त क्या उत्तर है ? कहो.

देवी (पराधीन होकर) आपकी आयु थोडी है।

आचार्य · अब मेरी आयु कितनी अवशेष है।

देवी (निश्वासपूर्वक) केवल छ मास।

आचार्य . देवि! यह ठीक है कि मेरी आयु बढ नही सकती। किन्तु जिस प्रसग को लेकर मैंने यह आराधना की है, सफल होनी चाहिये, निष्फल नही।

देवी . अवश्य, आपकी आराधना अवश्य सफल होगी।

आचार्य कैसे ?

देवी आपके शिष्य को मैं प्रत्यक्ष रहूँगी और उसके द्वारा महती शासनसेवा कराऊँगी।*

आचार्य ऐसा कौन-सा भाग्यशाली है जिसको तुम प्रत्यक्ष सहायता करोगी।

देवी आपके गच्छ में कोई योग्य शिष्य नजर में नही आ रहा है।

आचार्य . जब गच्छ में कोई योग्य नही है तो मेरे पट्ट योग्य कोई शिष्य दीजिये।

देवी · मोहिलवाणी निवासी रत्नपाल का पुत्र सुभटपाल आपके पट्ट के योग्य है, जिसकी अवस्था अभी सात-आठ वर्ष की है।

आचार्य देवि ! वह तो अभी निरा-बालक है उसके द्वारा सेवा तो अनागत की कल्पना है—आवश्यकता है तात्कालिक सेवा की।

देवि अनागत की कल्पना होने पर भी निकट भविष्य में ही वह शासन की महती सेवा करेगा। अत आप उसे प्रतिबोधित कर शीघ्र ही पट्ट शिष्य बनाइये। इतना कहकर पद्मावती देवी अन्तर्धान हो गई ।[1]

सुभटपाल की दीक्षा और आचार्यपद

पद्मावती देवी के कथनानुसार आचार्य जिनसिंहसूरि शीघ्र ही विहार कर मोहिलवाडी आये। उपासक वर्ग ने बडे उत्सव के साथ नगर-प्रवेश करवाया। एक समय आचार्यश्री महाधर के निवास-स्थान पर गये। हर्षोल्लासित हृदय से श्रेष्ठि महाधर ने विधिपूर्वक वन्दन कर कहा—

भगवन् ! मेरे घर पर आकर आपने मुझ पर महा उपकार किया है, इससे मैं कृतकृत्य हुआ हूँ। अब कृपा करके पधारने का कारण कहिये ?

आचार्यश्री महानुभाव ! तुम्हारे घर मैं शिष्य के निमित्त आया हूँ। आप अपना एक पुत्र मुझे प्रदान करिये।

महाधर जैसी आज्ञा, और सुभटपाल को छोडकर अन्य पुत्रो को वस्त्राभूषणो से सुसज्जित कर आचार्यश्री के सन्मुख लाया और कहा—पूज्यवर ! इन पुत्रो में से जो आपको प्रिय हो उसे ग्रहण कीजिये।

आचार्य सात-आठ वर्षीय लघु पुत्र को न देखकर कहा—श्रेष्ठि ! दीर्घायुषी ये पुत्र तुम्हारे कुल की शोभा बढावें। परन्तु मुझे सुभटपाल चाहिये।

श्रेष्ठि महाधर को अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि आचार्यश्री लघु सुभटपाल को ही क्यो चाहते हैं ? सुभट तो सबके हृदय का हार है, बच्चा है, उसे कैसे दूँ।

---

१ शुभशील पच के आधार पर।

श्रेष्ठि महाधर की विचारशील मुद्रा को देखकर आचार्य जिनसिंह ने पद्मावती देवी का आदेश सुनाया और कहा कि आपके इसी पुत्र के द्वारा निकट भविष्य में शासन की महाप्रभावना होगी, यह ज्योतिर्धर शासन-प्रभावक आचार्य होगा।

'शासनप्रभावक होगा' यह सुनकर महाधर ने हर्षाभिभूत हृदय से श्रद्धापूर्वक सुभटपाल को आचार्यश्री के सानिध्य मे समर्पित किया।

स० १३२६ में आचार्य जिनसिंह ने सुभटपाल को महामहोत्सव के साथ दीक्षा प्रदान की। शिक्षा-दीक्षा-शास्त्राभ्यास और पद्मावती की साधना करते हुए सुभटपाल को गीतार्थ होने पर स० १३४१ मे किढिवाणा नगर में स्वहस्त से आचार्यगणनायक पद प्रदान कर जिनप्रभसूरि नाम रखा।

जन्म-दीक्षा-आचार्यपद-सम्वत्

प्राकृत वृद्धाचार्यप्रवन्धावली के अनुसार सुभटपाल की दीक्षा स० १३२६ में हुई है। उक्त प्रवन्धावली एवं अन्य पट्टावलियो के अनुसार सुभटपाल की दीक्षा के समय आयु वाल्यावस्था या ७-८ वर्ष की है। अत सुभटपाल की उस समय आयु कम से कम ८ वर्ष की मानी जावे तो आ० जिनप्रभ का जन्म-समय वि स १४१८ के आस-पास स्वीकार किया जा सकता है।

पद्मावती-आराधना के प्रसंग पर देवी ने आचार्य जिनसिंहसूरि की ६ मास आयु शेष कही है, व दीक्षा १३२६ और आचार्यपद १३४७ में स्वहस्त से प्रदान करने का कहा है, जो युक्तियुक्त प्रतीत नही होता। सन्दर्भ को देखते हुए 'छ मास आयु शेष' वाला वाक्य परम्परागत किम्वदन्तीमात्र प्रतीत होता है। सत्य नहीं। अत आचार्य जिनप्रभ का दीक्षा-समय १३२६ और आचार्यपद स० १३४१ ही उपयुक्त प्रतीत होता है। आ० जिनसिंह-सूरि का स्वर्गवास भी १३४१ के वाद ही सम्भव है।

सोमधर्मगणि ने स० १५०३ में रचित 'उपदेशसप्ततिका', पृ० ४८ पर लिखा है—

दन्तविश्वमिते वर्षे (१३३२) श्री जिनप्रभसूरय ।
अभूवन् भूभृता मान्या प्राप्तपद्मावतीवरा ॥

अर्थात् वि० स० १३३२ में, पद्मावतीवरप्राप्त एव राजाओ के मान्य श्री जिनप्रभसूरि हुए ।

इसमें सोमधर्मगणि ने १३३२ किस आधार से दिया है ? विचारणीय है । क्या यह सम्वत् जन्म का सूचक है अथवा दीक्षा सम्वत् का सूचक है या आचार्यपद प्राप्ति का विचार करने पर दीक्षा एवं आचार्यपद-सम्वत् 'प्राकृतवृद्धाचार्यप्रबन्धावली' में प्रदत्त सम्वत् ही उपयुक्त प्रतीत होते हैं । स० १३३२ की कोई सगति नही बैठती ।

दीक्षा-नाम

अष्टभाषाम आदिजिनस्तोत्र 'निरवधिरुचिर ज्ञानमय' पद्य ४० श्री जिनप्रभसूरि की कृति मानी जाती है। इस स्तोत्र के पद्य ४० वें मे चक्र-बन्धकाव्य में कर्त्ता ने अपना नाम 'शुभतिलक' दिया है—

नन्दासोरुविशुद्धयोग[1]रसभोन्मीलेत्[4]प्रतोपान्वितम्,
शास्त सौष्ठवभ[2]ग्नमोहरचनं त्वं क[5] जहस्तच्छवि ।
रुच्या भास्करति[3]ग्मसिद्धिरमणी सक्लृप्तभाव परम्,
दन्ताज्ञानरमा शमास्तरुप मे तन्या सुविद्या चिरम् ॥ ४० ॥

वि० स० १५८३ की लिखित प्रति की अवचूरि में अवचूरिकार ने लिखा है—

'शुभतिलक' इति प्राक्तन नाम । श्री जिनप्रभसूरि-विरचितभाषाष्टक-मयुतस्तवावचूरि ।'

अर्थात् 'शुभतिलक' यह नाम जिनप्रभ की दीक्षावस्था का है ।

श्री अगरचन्दजी नाहटा के संग्रह की प्रतिलिपि में, 'गायत्रीविवरण' की प्रान्त-प्रशस्ति में लिखा है—

'चक्रे श्रीशुभतिलकोपाध्यायै स्वमनिशिल्पकल्पात् ।
व्याख्यानं गायत्र्या क्रीडामात्रोपयोगसिद्धम् ॥
इति श्रीजिनप्रभसूरिविरचितं गायत्रीविवरण समाप्तम् ।''

इन दो आधारो से यह माना जा सकता है कि जिनप्रभसूरि का दीक्षा-नाम शुभतिलक ही था । जिनप्रभ उपाध्याय पदधारी भी बने और सं० १३४१ में आचार्य बने फिर नाम परिवर्तन होने पर श्रीजिनप्रभसूरि कहलाये।

अध्ययन और अध्यापन

प्राप्त सामग्री के आधार पर जिनप्रभ के सम्बन्ध मे कोई उल्लेख प्राप्त नही है कि जिनप्रभ ने किन-किन के पास अध्ययन किया और किन-किन ग्रन्थो का निर्माण किया । हाँ, आचार्य जिनसिंह का जिनप्रभ की दीक्षा के ६ मास पश्चात् स्वर्गारोहण सत्य है और जिनसिंह से लघु खरतरशाखा का विहार-स्थल दिल्ली का निकटवर्ती प्रदेश होने से एव वृद्ध-खरतर-शाखा के आचार्यों के साथ इस शाखा के सम्पर्क का उल्लेख न होने से दो तथ्य सामने आते है । प्रथम-पद्मावतीप्रत्यक्ष और दूसरा लघु शाखीय गीतार्थो द्वारा शिक्षा-ग्रहण । इसमें तो तनिक भी सन्देह का अवकाश नही है कि पद्मावती देवी आपको प्रत्यक्ष थी । गुरु जिनसिंह की आराधना का पूर्ण फल जिनप्रभ को प्राप्त हुआ जो आगे के परिच्छेदो से स्पष्ट है । किन्तु क्या विद्वत्प्रतिभा का सारा श्रेय भी पद्मावती को ही है ? 'अनक्षर भी असाधारण विद्वान् हो सकता है ?' इसमें सन्देह ही है, परन्तु यह समीचीन हो सकता है कि स्वशाखीय गीतार्थ-विद्वानो से शिक्षा-अध्ययन विधिवत् किया हो और उसके विकास में पद्मावती का सान्निध्य हो । यदि ६ मास आयु का वर्णन कल्पना मात्र है तो, स्पष्ट है कि इनका सारा अध्ययन अपने गुरु श्री जिनसिंहसूरि के सान्निध्य में ही हुआ है ।

यह निश्चित है कि व्याकरण, कोश, साहित्य, लक्षण, छन्द, न्याय, षड्दर्शन, मन्त्र-तन्त्र साहित्य, कथा और स्वदर्शन-शास्त्रो के वे पूर्ण पारगत थे। जैसा कि आगे के परिच्छेदो में स्पष्ट है। यदि विधिवत् अध्ययन न किया होता तो यह सम्भव नही था कि दूसरे साधुओ को पढाते और उनके रचित ग्रन्थो का सशोधन करते ? क्योकि अध्ययन करने और कराने में महदतर है। जव तक स्वय का किसी भी विषय पर पूर्णाधिपत्य न हो तो अध्ययन कराना सहज नही है। अत इन्होने विधिवत् अध्ययन अवश्य किया है।

आचार्य जिनप्रभ शिक्षा-प्रसार के प्रेमी थे। शिक्षा-प्रसार के सन्मुख उनके लिये गच्छ या सम्प्रदाय, हिन्दू या अहिन्दू का भेद नही था। यही कारण है कि स्वय खरतर-गच्छ के अग्रणी होते हुये भी अन्य गच्छो के कई आचार्यो-साधुओ को आपने विद्यादान दिया था और उनके रचित-ग्रन्थो के सशोधक और सहायक भी थे, तो कइयो को आचार्य-पद भी प्रदान किया था, जैसा कि तत्तद् आचार्य रचित ग्रन्थो से स्पष्ट है—

१ राजशेखरसूरि—हर्षपुरगच्छीय मलधारी आचार्य राजशेखर[1] ने न्याय का प्रसिद्ध और उत्कृष्ट ग्रंथ श्रीधरकृत न्यायकदली का अध्ययन आचार्य जिनप्रभ से किया और न्यायकदली पर पजिका नाम की टीका रची —

---

१ हर्षपुरगच्छीय मलधारी विरुदधारी अभयदेवसूरि सतानीय नरेन्द्र-प्रभसूरि, पद्मदेवसूरि श्रीतिलकसूरि के शिष्य राजशेखरसूरि उस समय के नामाकित विद्वानो में से थे। आपके रचित निम्नग्रन्थ प्राप्त है—

१ प्रवन्धकोष (चतुर्विंशतिप्रवन्ध) र० स० १४०५ ज्ये० शु० ७ मुहम्मदतुगलक से सम्मानित जगत्सिंह के पुत्र महणसिंह द्वारा निर्मापित वसति, दिल्ली।

२ प्राकृतद्वयाश्रयवृत्ति स० १३८७,　　३ स्याद्वादकलिका,

४ रत्नावतारिका पजिका,　　५ न्यायकदली पजिका।

श्रीमज्जिनप्रभविभोरधिगत्य न्यायकन्दलीं कञ्चित् ।
तस्या विवृतिलवमहं, करवै स्वपरोपकाराय ॥ ३ ॥

२ सङ्घतिलकसूरि—रुद्रपल्लीयगच्छीय श्रीगुणशेखरसूरि के शिष्य आचार्य सघतिलक[२] ने आचार्य जिनप्रभ के निकट रहकर विद्याभ्यास किया था और आपको योग्य समझ कर आचार्य जिनप्रभ ने आचार्यपद पर अभिषिक्त किया था—

ढिल्ल्यां साहिमहम्मदं शककुलक्ष्मापालचूडामणिं
ये न ज्ञान कलाकलापमुदित निर्माय षड्दर्शनी ।
प्राकाश्यं गमिता निजेन यशसा साक च सर्वागम-
ग्रन्थज्ञो जयतात् जिनप्रभगुरुर्विद्यागुरुर्नः मुदा ॥ ८ ॥
(सम्यक्त्वसप्ततिवृत्तिप्रशस्ति)

---

६ षड्दर्शनसमुच्चय, ७ नेमिनाथ फागु ।

आचार्य राजशेखर के निर्देश से साधुपूर्णिमागच्छीय गुणचन्द्रसूरि के शिष्य पं० ज्ञानचंन्द्र ने रत्नकरावतारिका टिप्पण बनाया और सशोधन राजशेखर ने किया । तथा मुनिभद्रसूरिरचित शान्तिनाथ महाकाव्य (र० १४१०) का सशोधन भी राजशेखर ने ही किया ।

२ सघतिलकसूरिरचित निम्नग्रन्थ प्राप्त है—

१ सम्यक्त्वसप्ततिवृत्ति—र० १४२२ का० कृ० १४ सारस्वतपत्तन (सरसा) देनेन्द्रसूरि की प्रेरणा से, प्रथमादर्शलिखन, यशकुशल, सोमकुशल सहाय से, श्लो० ७७११,

२. ऋषिमडलस्तव श्लो० ३७,
३ वर्द्धमान विद्याकल्प,
४ धूर्ताख्यान,

आचार्यपदप्रदान का उल्लेख सघतिलकसूरि के शिष्य सोमतिलकसूरि[१] अपरनाम विद्यातिलकसूरि ने शीलोपदेशमालावृत्ति मे किया है—

तदीयचरणद्वयी सरसिजैकपुष्पन्वय
स सङ्घतिलकप्रभुर्जयति साम्प्रत गच्छराट् ।
गकक्षितिपवोधकृत् प्रभुजिनप्रभानुग्रहा,
न्ववाप्तगणभृत्पदप्रमुखतत्त्वविद्यागम ॥ ९ ॥

३ मल्लिषेणसूरि—नागेन्द्रगच्छीय महेन्द्रसूरि, आनन्दसूरि,[२] हरिभद्रसूरि,[३] विजयसेनसूरि,[४] उदयप्रभसूरि[५] के शिष्य आचार्य मल्लिषेणसूरि ने

---

१ विद्यातिलक आपका दीक्षावस्था का नाम है और आचार्य बनने पर सोमतिलकसूरि के नाम से आप प्रसिद्ध हुए। आपके रचित निम्नलिखित ग्रन्थ प्राप्त हैं—

१.	कन्यानयनतीर्थकल्प	१३८९	(प्र० विविधतीर्थकल्प)
२	लघुस्तवटीका	१०९७	घृतघटीपुरी कावोजकुलीयढ स्याणु अभ्यर्थतया, (प्र० मुनि जिनविजयजी संपादित)
३	षड्दर्शनटीका	१३९२	आदित्यवर्द्धनपुर,
४	शीलोपदेशमालाटीका	१३९३	लालाधाजूप्रेरणया,
५	कुमारपालप्रबन्ध	१४२४	(प्र० सिंघी जैन ग्रन्थमाला),

२ सिद्धराज जयसिंह द्वारा प्रदत्त व्याघ्रशिशुकविरुदधारी,

३ तत्त्वप्रबोधादिकग्रथकार और कलिकालगौतमविरुदधारी,

४ मन्त्रीश्वर वस्तुपाल तेजपाल के पितृपक्ष के गुरु और तन्निर्मित आबू + लूणिगवसही के प्रतिष्ठापक।

५ मंत्रीश्वर वस्तुपाल ने आपको आचार्यपद प्रदान किया था। आपके रचित धर्मशर्माभ्युदयमहाकाव्य, आरंभसिद्धि, नेमिनाथ चरित्र, उपदेशमालाकर्णिका, सुकृतकल्लोलिनी, षड्शीति टिप्पणक आदि प्राप्त हैं।

कुमारपालप्रतिबोधक आचार्य हेमचन्द्ररचित 'अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका' पर सं० १३४९ में विस्तृत टीका रची जो 'स्याद्वादमञ्जरी' के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्याद्वादमजरी की रचना में आचार्य जिनप्रभ ने सहयोग दिया था—

श्रीजिनप्रभसूरीणां सहाय्योद्भिन्नसौरभ।
श्रुतावुत्तसतु सता वृत्ति स्याद्वादमञ्जरी ॥ ३ ॥
(स्याद्वादमजरी टीका-प्रशस्तिः)

४ मुनि चतुरविजयजी ने जैनस्तोत्रसदोह की प्रस्तावना[1] (पृ० ६९) में लिखा है कि आचार्य जिनसेन के शिष्य उभयभाषाकविशेखर आचार्य मल्लिषेणसूरि-रचित भैरवपद्मावती कल्प की रचना में आचार्य जिनप्रभ सहायक थे।

तीर्थयात्रा और विहार

स्वय रचित कन्यानयनीय महावीरप्रतिमाकल्प और विद्यातिलक रचित कन्यानयनीयमहावीरकल्पपरिशेष के अनुसार सम्राट् के साथ शत्रुञ्जय, गिरनार तीर्थ, मथुरा, आगरा की यात्रा, दिल्ली से देवगिरि प्रतिष्ठानपुर, और देवगिरि से अल्लावपुर, सिरोह होकर दिल्ली, हस्तिनापुर की यात्राओ का उल्लेख है। शुभशीलगणि के कथाकोषानुसार जघरालपुर, मरुस्थल-प्रवास का वर्णन है।

स्वय रचित विविधतीर्थकल्प के अवलोकन से ज्ञात होता है कि इतिहास और स्थल भ्रमण से इनको बडा प्रेम था। इन्होने अपने जीवन मे भारत के बहुत से भागो मे परिभ्रमण किया था। गुजरात, राजपूताना, मालवा, मध्यप्रदेश, बराड, दक्षिण, कर्णाटक, तेलग, बिहार, कोशल,

---

१ 'श्रीजिनसेनशिष्योभयभाषाकविशेखरश्रीमल्लिषेणसूरिविरचिते भैरवपद्मावतीकल्पेऽप्यस्यैव सहाय्यम्।'

अवध, युक्तप्रान्त और पजाब आदि के कई पुरातन और प्रसिद्ध स्थानो की उन्होने यात्रा की थी।[1] × × × × × × यदि इन सब स्थानो को प्रात या प्रदेश की दृष्टि से विभक्त किये जायँ तो इनका पृथक्करण कुछ इस प्रकार होगा —

गुजरात और काठियावाड	युक्तप्रान्त और पजाब
शत्रुञ्जयमहातीर्थ	अहिच्छत्रपुर
गिरनारमहातीर्थ	हस्तिनापुर
अश्वावबोधतीर्थ	दिल्ली
स्तम्भनकपुर	मथुरा
अणहिलपुर	वाराणसी
शखपुर	कौशाम्बी
हरिकखीनगर	(आगरा)
(जघरालपुर)	कन्यानयन
(जीरापल्लीपार्श्वनाथ)	
अवध और विहार	**राजस्थान और मालवा**
वैभारागिरि	अर्वुदाचलतीर्थ
पावापुरी	सत्यपुरतीर्थ
पाटलीपुत्र	शुद्धदन्दनगरी
चम्पापुरी	फलवर्द्धि तीर्थ
कोटिगिला	ढिपुरीतीर्थ
कलिकुडकुर्कुटेश्वर	कुडगेश्वरतीर्थ
मिथिला	अभिनदनदेवतीर्थ
रत्नपुर	**दक्षिण और वराड**
काम्पिल्यपुर	नासिकपुर

---

१ विविधतीर्थकल्प, स० मुनि जिनविजय प्रास्ताविक निवेदन, पृ० १-२ ।

अयोध्यापुरी
श्रावस्तीनगरी
कर्णाटक और तैलंग
कुल्यपाक माणिक्यदेव
अमरकुण्ड पद्मावती
प्रतिष्ठानपत्तन
(देवगिरि)
अतरीक्षपार्श्वतीर्थ

स० १३७६ मे दिल्ली के संघपति सा० देवराज ने शत्रुञ्जय, गिरनार आदि तीर्थो का सघ निकाला था। उस सघ मे सूरिजी भी साथ थे। ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी को शत्रुजय तीर्थ की और ज्येष्ठ शुक्ला १५ को गिरनार तीर्थ की यात्रा की थी।[1] इस प्रसंग पर रचित तीर्थयात्रास्तोत्र से सघ ने निम्नलिखित तीर्थो की यात्रा की थी—

शत्रुजय, गिरिनार, शेरीषक, फलवर्द्धि-शखेश्वर-स्तभनकपार्श्वनाथ, पाडलनगर, नारगा, भृगुकच्छ, वायडनगर जीवितस्वामी, हरपट्टण, अहिपुर, जालोर, पाल्हणपुर, भीमपल्ली, श्रीमाल, अणहिलपुर, सिसिखिज्ज, आगापल्ली धोलका और धघुका।

स० १३६९ फलवर्द्धिपार्श्वनाथ की यात्रा[2] की थी और स० १३८६ में ढिपुरीतीर्थ की यात्रा। स० १३९१ उपकेशगच्छीय कक्कसूरि रचित नाभिनदनजिनोद्धारप्रबन्ध के अनुसार सं० १३७७ के पश्चात् शत्रुञ्जयतीर्थ के उद्धारक संघपति समरसिंह के सघ के साथ सूरिजी ने मथुरा, हस्तिनापुर आदि तीर्थो की यात्रा की थी और समरसिंह को सघपति पद प्रदान किया था—

'पातसाहिस्फुरन्मानाद्धर्मवीर स्मरस्तथा।
मथुराया हस्तिनागपुरे जिनजनिक्षितौ ॥ ३२८ ॥

---

१ देखें, तीर्थयात्रास्तोत्र और स्तुतित्रोटक।
२ देखें, फलवर्द्धिमण्डनपार्श्वस्तोत्र।

बहुभि सङ्घपुरुपै श्रीजिनप्रभसूरिभि ।
समन्वितस्तीर्थयात्रा चक्रे सङ्घपतिर्भवन् ॥ ३२९ ॥
(प्रस्ताव ५, श्लो० ३१८-३२९)

उपदेश मे प्रवुद्ध—जैन पुस्तकप्रशस्ति-सग्रह, प्रथम भाग, प्रशस्ति १७ गूर्जरवशीय सावु महणसिंह लिखित (भावदेवसूरिकृत) पार्श्वनाथचरित्र पुस्तक प्रशस्ति के अनुसार गुर्जरवशीय सौम्य ने आचार्य जिनप्रभ से सुधर्म ग्रहण किया था—

सौम्योऽजनि प्रवरघोर्विपुलेऽत्रवशे
य सोमकान्त इव सज्जनदर्शनीय ।
श्रीमज्जिनप्रभविभोर्भवभित्प्रसाद
मासाद्यसद्गुणनिधिर्विदधे सुधर्मम् ॥ ३ ॥[1]

× × × ×

जैन पुस्तक प्रशस्तिसग्रह प्रथम भाग, प्रशस्ति ६०, पल्लिवालवशीय श्राविका कुमरदेवी लिखित औपपातिक-राजप्रश्नीय सूत्रद्वयपुस्तक प्रशस्ति के अनुसार पल्लिवालवशीय अरिसिंह की पत्नी कुमरदेवी ने आचार्य जिनप्रभ के पास विधिवत् श्राविका धर्म स्वीकार किया—

श्रीमत्सूरिजिनप्रभाङ्घिकमले धर्म प्रपद्यानघ,
या तुर्या प्रतिमामुवाह विधिवत्सुश्रावकाणा मुदा ।
श्रद्धावृद्धित एव वित्तपवन क्षेत्रेषु सप्तस्वधो,
तन्वन्ती तनुजानसूत मनुजानीश समाजस्तु ताम ॥४॥

× × × ×

अश्रावि सुश्राविकया, कुमरदेव्याऽन्यदा मुदा ।
श्रीजिनप्रभसूरीणा, गुरूणा धर्मदेशना ॥ १५ ॥

---

१ इसका लेखन-काल १३७९ आश्विन सुदि १४ वुधवार है ।

विचारणीय प्रश्न

जिनप्रभसूरि रचित सिद्धान्तागमस्तव के अवचूरिकार आदिगुप्त ने अवतरणिका में लिखा है

"पुराश्रीजिनप्रभसूरिभिः प्रतिदिन नवस्तवनिर्माणपुरसार निरवद्याहार ग्रहणाभिग्रहवद्भि: प्रत्यक्षपद्मावतीदेवीवचसामभ्युदयिन श्रीतपागच्छ विभाव्य भगवता श्रीसोमतिलकसूरीणा स्वशैक्षशिष्यादिपठनविलोकनाद्यर्थं यमकश्लेष-चित्रछान्दोविशेषादिनवनवमङ्गीसुभगाः सप्तशतीमिता स्तवा उपदीकृता निजनामाङ्किता ।"

अभिप्राय यह कि पद्मावतीदेवी के वचनो से तपागच्छ का उदय देख-कर ७०० स्तोत्र सोमतिलकसूरि को अर्पित किये ।

विचारणीय प्रश्न इतना ही है कि आचार्य जिनप्रभ ने तपागच्छ का भविष्य में उदय देखकर सहज सौहार्द से स्तोत्र-साहित्य अर्पित किया था? क्योकि जहाँ स्वय ने तपोरमतकुट्टनशत में तपागच्छ को शाकिनीमत तुल्य मानकर भर्त्सना की है, त्याज्य बतलाया है, वहाँ 'उदय' देखकर अर्पण करना युक्ति-सगत प्रतीत नही होता ।

इतिहास एव परपरा से भी यह सिद्ध है कि खरतरगच्छ और तपागच्छ आचार्य जिनप्रभ से लेकर २९वी शती पूर्वार्ध तक दोनो गच्छो का विपुल समुदाय, साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका समुदाय समान रूप से ही रहा, न कि खरतरगच्छ का ह्रास और तपागच्छ का उदय । यह विपुल समुदाय पिष्ट मे ही नही अपितु साहित्य-सर्जना शासन-प्रभावना आदि प्रत्येक दृष्टियो से आँका जा सकता है । हाँ, वर्तमान समय में खरतरगणीय समुदाय का प्रत्येक दृष्टि से ह्रास और तपागच्छ का अभ्युदय अवश्य हुआ है ।

दूसरी बात, जहाँ तपागच्छीय शुभशीलगणि ने अपने कथाकोप में जिनप्रभसूरि के अनेक चमत्कारो के वर्णन में कई प्रबन्ध लिखे हैं, वहाँ

इस प्रसंग की गंध भी नहीं है। अन्यथा ऐसी महत्त्वपूर्ण वार्ता का अवश्य उल्लेख करते।

अवचूरिकार के अतिरिक्त इस प्रसंग का किसी भी लेखक ने उल्लेख नहीं किया है। अतः 'तपागच्छ का अभ्युदय' केवल लिखना गच्छाग्रह मात्र प्रतीत होता है।

हाँ, इसमें सन्देह नही कि आचार्य जिनप्रभ के हृदय में गच्छाग्रह या गच्छवाद नाम की कोई वस्तु नही थी। यही कारण है कि हर्षपुरीयगच्छीय राजशेखरसूरि, रुद्रपल्लगच्छीय संघतिलकसूरि, विद्यातिलकसूरि, नागेन्द्र-गच्छीय मल्लिषेणसूरि आदि विविधगच्छीय आचार्यों और साधुओं को मुक्तहृदय से अध्ययन कराया था। और शुभशील गणिकृत कथाकोशानुसार तपागच्छीय सोमप्रभसूरि के साध्वाचार की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी। अतः संभव है कि "सोमतिलकसूरीणां स्वशैक्षशिष्यादिपठनविलोकनार्थं" कहने पर स्वरचित ७०० संख्यात्मक स्तोत्र-साहित्य की प्रतिलिपि उन्हें सहज सौहार्द से उदारमना होकर प्रदान किये हों।

सोमप्रभसूरि से मुलाकात या सोमसुन्दरसूरि से ?

शुभशीलगणि के लेखानुसार सम्राट् के साथ प्रवास करते हुए जयराल नगर में सोमप्रभसूरि से मुलाकात हुई और दोनों ने दोनों का हार्दिक अभिनन्दन ही नहीं किया अपितु मुक्तकण्ठों से प्रशंसा भी की, जो वस्तुतः आज के साधु-समाज के लिये मननीय और अनुकरणीय है।

इतिहास से सिद्ध है कि जिनप्रभसूरि का सम्राट् से मिलन सं० १३८५ में हुआ था जब कि सोमप्रभसूरि का स्वर्गवास सं० १३७३ में हो गया था। अतः सोमतिलकसूरि से जिनप्रभ की भेंट हुई होगी। भ्रम से सोमतिलक के स्थान पर सोमप्रभ का उल्लेख हो गया प्रतीत होता है।[1]

---

१ देखें, जिनप्रभसूरि अने सुलतानमुहम्मद, पृ० ६६-६७ की टिप्पणी।

मुहम्मद तुगलक-प्रतिरोध और तीर्थरक्षा[1]

वैक्रमीय चौदहवी शती के अन्तिम चरण में दिल्ली के सिंहासन पर तुगलकवशीय सुलतान मुहम्मद[2] आसीन था, जो कि अपनी न्यायप्रियता, उग्र प्रकृति और अस्थिर स्वभाव के लिये प्रसिद्ध था। एक समय राजसभा मे विद्वानो के साथ विद्वद्गोष्ठी करते हुए मुहम्मद तुगलक ने पण्डितो से पूछा कि 'इस समय विशिष्ट प्रतिभाशाली विद्वान् कौन है ?'

सभासदस्थ ज्योतिषी धाराधर ने कहा कि 'सम्राट्! इस समय दिल्ली में ही क्या अपितु भारतवर्ष में अपने विद्या, चमत्कार और अतिशय के कारण आचार्य जिनप्रभसूरि प्रसिद्ध है। आचार्य के गुणो की क्या प्रशंसा की जाय, वे तो साक्षात् सरस्वतीपुत्र है।'

सम्राट्—अच्छा! ऐसे समर्थ विद्वान् है!! तो धाराधर यह बतलाओ कि वे आज कल कहाँ रहते है ?

धाराधर—दिल्ली का परम सौभाग्य है कि वे आज कल दिल्ली के शाहपुरा में विराजमान हैं।

---

१ यह अध्याय स्वयं आचार्य जिनप्रभसूरि रचित कन्यानयनमहावीर-तीर्थकल्प और विद्यातिलक प्रणीत कन्यानयनमहावीरकल्प परिशिष्ट के आधार पर लिखा गया है।

२ मुहम्मद तुगलक (राज्यकाल १३२५-५१ ई०) के लिये देखें, डा० ईश्वरीप्रसाद लिखित ,भारत का इतिहास पृ० २२३, से २३२, मुहम्मद तुगलक का पूर्वनाम फखरुद्दीन जूना खा था। इसी के सहयोग मे, इसके पिता गाजी मलिक दिल्ली पर अधिकार कर सके। जूना खा ने वारंगल विजय कर सुल्तानपुर नाम रखा था। यह वही तुगलक है जो दौलताबाद को भारत की राजधानी बना रहा था। इसी के समय में तांबे के सिक्के का प्रचार हुआ था।

सम्राट्—धाराधर ! तो क्या ऐसे प्रभावशाली आचार्य के दर्शन हमें नही कराओगे ?

धारा—राजन् । वे तो परम निस्पृही मुनि है । फिर भी आप की विनती है तो वे आप को अवश्य दर्शन देंगे ।

सम्राट्—तो धाराधर, यह कार्य तुम्हे सौंपा जाता है । तुम बडे सन्मान के साथ आचार्य को यहाँ अवश्य लाना ।

बादशाह से मिलन व सत्कार

धाराधर के द्वारा सम्राट् का आमन्त्रण पाकर सं० १३८५ पौष शुक्ला द्वितीया की सन्ध्या को आचार्य सम्राट् से मिले । सम्राट् ने अपने समीप ही आचार्य को बैठाकर प्रेमपूर्वक कुशल-प्रश्न किया । प्रत्युत्तर में आचार्य श्री ने नवीन पद्य रखकर आशीर्वाद प्रदान किया । आशीर्वादात्मक पद्यो का लालित्य और छटा देखकर सम्राट् बहुत प्रसन्न हुआ । लगभग अर्द्ध रात्रि तक आचार्यश्री के साथ सम्राट् की एकान्तगोष्ठी होती रही । रात्रि अधिक व्यतीत हो जाने के कारण सूरिजी ने अवशेष रात्रि वही महलो में ही पूर्ण की । प्रात-काल सुलतान ने पुन आचार्यश्री को अपने पास बुलाया और सन्तुष्ट होकर १००० गाय, द्रव्य समूह, मनोहर एव रमणीय उद्यान, १०० वस्त्र, १०० कम्बल एवं अगर, चंदन, कर्पूरादि सुगन्धि द्रव्य आचार्यश्री को अर्पण करने लगा । परन्तु 'जैन-साधुओ को यह सब ग्रहण करना आचार विरुद्ध है' आदि वाक्यो से सुलतान को समझाते हुये उन सब वस्तुओ को ग्रहण करना अस्वीकार कर दिया । फिर भी सम्राट् का विशेष आग्रह देखकर, सम्राट् को अप्रीति न हो इसलिये राजाभियोग वश उनमे से कुछ कम्बल, वस्त्र आदि ग्रहण किये ।

सम्राट् ने विविधदेशीय विद्वानो के साथ आचार्यश्री की वाद-गोष्ठी करवाकर दो श्रेष्ठ हाथी मँगवाये । उनमे से एक पर आचार्य जिनप्रभसूरि को और दूसरे पर आचार्यश्री के शिष्य आचार्य जिनदेवसूरि को बिठा-

---

१ देखें, 'शिष्य परिवार-परपरा और साहित्यसर्जन' परिच्छेद ।

कर[1], मदनभेरी, शख, मृदंग, मर्दल, कंसाल और दोल आदि अनेक प्रकार के शाही वादित्रो के समारोहपूर्वक, आचार्यश्री को शाहपुरा की पौपधशाला में पहुँचाया। उस समय भट्ट-चारण आदि विरुदावली गा रहे थे, राज्याधिकारी प्रधानवर्ग और चारो वर्णो की प्रजा भी प्रवेशोत्सव मे सम्मिलित थी। जैन सघ में आनन्द का पार नही था। आचार्यश्री के जय-जयकार से दशो दिशाएँ मुखरित हो रही थी। उपासक वर्ग ने इस सुअवसर मे आडम्बर के साथ प्रवेश महोत्सव किया और याचको को प्रचुर दान देकर सन्तुष्ट किया।

सघरक्षा और तीर्थरक्षा की फरमान

सुलतान का आचार्यश्री से सम्पर्क बढता गया और आचार्यश्री की साधुता, गम्भीरता, विद्वत्ता आदि की छाप सम्राट् के हृदय पर पडी। उस समय जैन-समाज पर आये दिन अनेक प्रकार के उपद्रव हुआ करते थे। उनका निवारण करने के लिये आचार्यश्री ने सम्राट से एक फरमान-पत्र प्राप्त किया और उसकी नकले प्रत्येक प्रान्तो में भिजवा दी। इसमे श्वे० जैन-सघ उपद्रवरहित हुआ और शासन की विशेष उन्नति हुई। इसी प्रकार एक समय सम्राट् आचार्यश्री पर अत्यन्त प्रसन्न[2] हुआ और आचार्य के कथनानुसार सम्राट् ने तत्काल ही शत्रुजय, गिरनार,

---

१ हाथी पर चढना जैन मुनि के आचार के प्रतिकूल है किन्तु सम्राट् का आग्रह और शासन की प्रभावना को ही लक्ष्य में रखकर यह अपवाद्-मार्ग ग्रहण किया प्रतीत होता है। इसी प्रकार का एक और उल्लेख प्रभावक चरित मे भी सूराचार्य के लिये प्राप्त होता है।

२ स्वय कवि रजित 'शत्रजयतीर्थकल्प', जिसका कि कवि ने स्वयं 'राजप्रसादकल्प' अमरनाम रखा है, जिसका कारण यही प्रतीत होता है कि सम्राट् ने प्रसन्न होकर जब तीर्थरक्षा के फरमान दिये तो आचार्य ने सम्राट् का नाम चिरकाल तक रहे—इस दृष्टि से राजप्रसाद यह नाम रखा —

फलवर्द्धि आदि तीर्थो की रक्षा के लिये फरमान-पत्र लिखवाकर आचार्य को दिये। उन फरमान-पत्रो की नकलें भी तीर्थस्थानो में भेज दी गई। इसी प्रकार एक समय आचार्यश्री के उपदेश से सम्राट् ने वहुत से वदियो को मुक्त किया।

कन्यानयनीय[१] महावीर प्रतिमा का इतिहास और उद्धार।

विक्रमपुर[२] निवासी (युगप्रवरागम जिनपतिसूरिजी[३] के चाचा[४])

प्रारम्भेप्यस्य राजाविराज सङ्घेप प्रसन्नवान्।
अतो राजप्रसादाख्य कल्पोऽय जयताच्चिरम्॥
श्रीविक्रमाब्दे वाणष्टविश्वदेवमिते शितौ।
सप्तम्या तपस काव्यदिवसेऽय समर्थित॥

(शत्रुञ्जयकल्प)

१-२ कन्यानयन और विक्रमपुर के स्थान निर्णय में काफी मतभेद है। पं० लालचन्द भगवान् गांधी दक्षिणदेश में कानानूर और उसी के निकट विक्रमपुर को स्वीकार करते है किन्तु श्री अगरचन्दजी भवरलालजी नाहटा कन्यानयन को कन्याणा (जिंदरियासत और विद्यमधुर जैसलमेर के निकट स्वीकार करते है, जो युक्तियुक्त प्रतीत होता है। यह देखिये नाहटाजी के प्रमाण—

प० लालचन्द भगवानदास का मत है कि उपरयुक्त कन्नाणय या कन्यानयनवर्त्त मान कालानूर है। पर हमारे विचार से यह ठीक नही है। क्योकि उपर्युक्त वर्णन मे, स० १२४८ में उधर तुर्कों का राज्य होना लिखा है, किन्तु समय दक्षिण देश के कानानूर में तुर्को का राज्य होना अप्रमाणित है। 'युगप्रधानाचार्य गुर्वावली' में (जो कि श्री जिनविजयजी द्वारा सम्पादित होकर 'सिंघि जैन ग्रन्थमाला' में प्रकाशित होनेवाली है) कन्यानयन का कई स्थलो में उल्लेख आता है। उससे भी कन्नाणय, आसीनगर (हाँसी के निकट, वागुड देश में होना सिद्ध है। जिस कन्यानयनीय महावीर प्रतिमा के सम्वन्ध में ऊपर उल्लेख आया है उसकी प्रतिष्ठा के विषय मे भी

गुर्वावली में लिखा है कि—सं० १२३३ के ज्येष्ठ सुदी ३ को* आशिकामें बहुत से उत्सव समारोह होने के पश्चात्, आसाढ महीने में कन्यानयन के जिनालय में श्री जिनपति सूरिजी ने अपने पितृव्य सा० मानदेव कारित महावीर बिंब की प्रतिष्ठा की और व्याघ्रपुर में पार्श्वदेवगणि को दीक्षा दी। कन्यानयन के सम्बन्ध में गुर्वावली के अन्य उल्लेख इस प्रकार है—

संवत् १३३४ में श्रीजिनचन्द्र सूरिजी की अध्यक्षता में कन्यानयन निवासी श्रीमालज्ञातीय सा० कालाने नागोर से श्रीफलोधी पार्श्वनाथजी का संघ निकाला, जिसमें कन्यानयनादि सकल वागड देश व सपादलक्ष देश का संघ सम्मिलित हुआ था।

संवत् १३७५ माघ सुदी १२ के दिन नागोर में अनेक उत्सवो के साथ श्रीजिनकुशल सूरिजी के वाचनाचार्य-पद के अवसर पर संघ के एकत्र होने का जहाँ वर्णन आता है वहाँ 'श्रीकन्यानयन, श्रीआशिका, श्रीनरभट प्रमुख नाना नगर-ग्राम वास्तव्य सकल वागड देश समुदाय' लिखा है।

संवत् १३७५ वैशाख वदी ८ को मन्त्रिदलीय ठक्कुर अचलसिंह ने सुलतान कुतुबुद्दीन के फरमान से हस्तिनापुर और मथुरा के लिये नागौर से संघ निकाला। उस समय, श्रीनागपुर, रुणा, कोसवाणा, मेडता, कडुयारी नवाहा, झुंझुणु, नरभट, कन्यानयन, आसिकाउर, रोहद, योगिनीपुर, धामइना, जमुनापार आदि स्थानो का संघ सम्मिलित हुआ लिखा है। संघने क्रमश चलते हुए नरभट मे श्रीजिनदत्तसूरि प्रतिष्ठित श्रीपार्श्वनाथ महातीर्थ की वन्दना की। फिर समस्त वागड देश के मनोरथ पूर्ण करते हुए कन्यानयन में श्रीमहावीर भगवान् की यात्रा की।

श्रीजिनचन्द्र सूरिजी ने खण्डासराय (दिल्ली) मे चातुर्मास करके मेडता के राणा मालदेव की विनती से विहार कर मार्ग मे धामइना, रोहद आदि नाना स्थानों से होकर कन्यानयन पधार कर महावीर प्रभु को नमस्कार किया।

---

*गुर्वावली, पृ० २४ के अनुसार आषाढ मास है।

सवत् १३८० में सुलतान गयासुद्दीन के फरमान लेकर दिल्ली से शत्रुजय का सघ निकाला। वह सर्वप्रथम कन्यानयन आया, वहाँ वीर प्रभु की यात्रा कर फिर आशिका, नरभट, खाटू, नवहा, झुझणू आदि स्थानो मे होते हुए, फलौधी पार्श्वनाथजी की यात्राकर, शत्रुजय पहुँचा उपर्युक्त इन सारे अवतरणो से कन्यायन का, आशिका के निकट बागड देश मे होना सिद्ध होता है। श्रीजिनप्रभ सूरिजी ने कन्यानयन के पास 'कयवासस्थल' का जो कि मडलेश्वर कैमास के नाम से प्रसिद्ध था, उल्लेख किया है। मडलेश्वर कैमास का सम्बन्ध भी काननूर से न होकर हाँसी के आस-पास के प्रदेश मे ही हो सकता है। गुर्वावली के अवतरणो से नागौर से दिल्ली के रास्ते मे नरभट और आशिका के बीच में कन्यानयन होना प्रमाणित है। अनुसन्धान करने पर इन स्थानो का इस प्रकार पता लगा है—

नरभट—पिलानी से ३ मील।

कन्यानयन—वर्तमान कन्नाणा दादरी से ४ मील जिंद रियासत मे है।

आशिका—सुप्रसिद्ध हाँसी।

प० भगवानदासजी जैन ने ठ० फेरु विरचित 'वस्तुसार' ग्रन्थ की प्रस्तावना में कन्यानयन को वर्तमान करनाल बतलाया है, परन्तु हमें वह ठीक नही प्रतीत होता है। गुर्वावली के उल्लेखानुसार करनाल कन्यानयन नही हो सकता।

इसमें अब एक यह आपत्ति रह जाती है कि श्रीजिनप्रभ सूरिजी ने स्वय 'कन्यानयनीय-महावीरकल्प' में कन्यानयन को चोल देश में लिखा है। हमारे विचार से यह चोल देश, जिस स्थान को हम बतला रहे है; पूर्वकाल में उसे भी चोल देश कहते हो। इस विषय मे विशेष प्रमाण न मिलने से विशेष रूप से नही कह सकते परन्तु गुर्वावली में महावीर प्रतिमा की प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में जब यह उल्लेख है कि—स० १२३३ के ज्येष्ठ सुदी ३ को, आशिका में धार्मिक उत्सव होने के पश्चात् आषाढ में ही

कन्यानयन में महावीर विंव की प्रतिष्ठा श्रीजिनपति सूरिजी द्वारा हुई, और वहाँ से फिर व्याघ्रपुर आकर पार्श्वदेव को दीक्षित किया। श्रीजिन-प्रभसूरिजी ने भी प्रतिमा को 'सा० मानदेव कारित, स० १२३३ आषाढ सुदी १० को प्रतिष्ठित, मानदेव को श्रीजिनपति सूरिजी का चाचा होना, और प्रतिष्ठा भी श्रीजिनपति सूरिजी द्वारा होना' लिखा है। उसी प्रकार ये सारी वातें प्राचीन गुर्वावली से भी सिद्ध और समर्थित है। पिछले उल्लेखो में भी जो कि कन्यानयन के महावीर भगवान् की यात्रा के प्रसङ्ग में है, कन्यानयन को वागड देश मे आशिका के पास ही वतलाया है। इन सव वातो पर विचार करते हुए हमारी तो निश्चित राय है कि कन्यानयन कानानूर न होकर वर्त्तमान कन्नाणा ही है। जिस प्रकार वागड देश ४ हैं, इसी प्रकार चोल देश भी दो हो सकते हैं।

विक्रमपुर स्थल-निर्णय

सा० मानदेव के निवास स्थान विक्रमपुर को पं० लालचद भगवान दास ने दक्षिण के कानानूर के पास का वतलाया है, पर यह विक्रमपुर तो निश्चितया जेसलमेर के निकटवर्ती वर्तमान विक्रमपुर है। श्रीजिनपति सूरिजी के रासमें 'अत्थिमरुमंडले नयरविक्कमपुरे' शव्दो से विक्रमपुर को मरुस्थल मे सूचित किया है। संभव है सा० मानदेव व्यापारादि के प्रसङ्ग सेवागड देश के कन्यानयन में रहते हो और वही श्रीजिनपति सूरिजी के जाने पर महावीर भगवान् की प्रतिष्ठा कराई हो। 'जैन स्तोत्र सदोह' भा० २ की प्रस्तावना, पृ० ४० में इस विक्रमपुर को वीकानेर वतलाया है, पर वह भूल है। वीकानेर तो उस समय वसा भी नहीं था, उसे तो राव वीकाने, स० १५४५ में वसाया है। पूर्वका विक्रमपुर जेसलमेर निकट-वर्ती वर्तमान विक्रमपुर ही है।

३ युगप्रभ सगम जिनपतिसूरि के लिए देखें, लेखककृत खरतरगच्छ का इतिहास, प्रथम खड।

शाह मानदेव ने २३ अगुल प्रमाण मम्माण प्रस्तर की महावीर स्वामी की प्रतिमा का निर्माण करवाकर स० १२३३ आषाढ शुक्ला १० गुरुवार को आचार्य जिनपतिसूरिजी के वरदहस्तो मे, प्रतिष्ठा करवाकर चोल-देशस्थ कन्यानयन में स्थापित की।

सं० १२४८ मे पृथ्वीराज चौहान के सुरत्राण शहाबुद्दीन गोरी द्वारा मारे जाने पर, सम्राट पृथ्वीराज चौहान के अंतरगसखा, राज्यप्रधान सेठ रामदेव ने कन्यानयनीय श्रावक सघ को लिखा—'तुर्कों का राज्य हो गया है अत श्री महावीर स्वामी की प्रतिमा को प्रच्छन्न रूप से रखना आवश्यक है।' इस सदेश को पाकर कन्यानयनीय उपासकों ने दाहिमकुलमडण

४ मुनि जिनविजय सपादित जैन पुस्तक प्रशस्ति सग्रह, प्रशस्ति न० ५४ के अनुसार शाह मानदेव जिनपतिसूरि के बाबा (पिता के बडे भाई) थे—

प्रगुणगुणमयोऽत्र पार्श्वनामा ध्वजकमला कलयाचकार साधु।
स्म जयति मृग मृगाकग, यो मधुरयश कलकिंकिणीप्रगानै ॥ २ ॥

चत्वारो मानदेवः कुलधर-बहुदेवौ यशोवर्द्धनोऽस्य,
श्रीभर्तुर्बाहुभूता अजनिषत सुता धर्मकर्मप्रवीणा।
सत्पुत्रा मानदेवाद् य इह धनदेवस्तथा राजदेवो,
निम्बार्कश्चाविरासन् हिमगिरित इव स्वर्गसिन्धुप्रवाहा ॥ ३ ॥

देवधर–लोहदेवौ जातौ कुलधरागजौ।
शब्दाभ्या कुडलाभाभ्या पुण्यश्री समभूष्यत ॥ ४ ॥

विभ्राजे मुनिचन्द्रमा जिनपति पुत्रो यशोवर्धन–
क्षीराब्धेर्जिनचन्द्रविष्णुपदमाक्रान्तं नितान्त महत्।
बालेनाऽपि हि येन साधुपु बहुज्योतिष्षु राज्य दधे
शेपाना शिरसि स्थित पितृकुल विश्व च सप्रीणित ॥ ५ ॥

मंडलेश्वर कैमास के नाम से बसे हुये 'कयंवासस्थल' में विपुलवालू के नीचे प्रतिमा को गाड दी।

सं० १३११ के अतिदारुण दुर्भिक्ष मे जीविकोपार्जन के लिये जोजओ नामक सूत्रधार सकुटुम्ब कन्यानयन से सुभिक्ष देश की ओर चला। 'प्रथम प्रयाण थोडा ही करना चाहिये' यह विचार कर सूत्रधार ने कयवास स्थल में ही रात्रिनिवास किया। अर्धरात्रि मे स्वप्न मे अधिष्ठापक ने उससे कहा—'जहाँ तुम शयन कर रहे हो उससे कुछ हाथ नीचे भगवान् महावीर स्वामी की प्रतिमा है। तुम इसे प्रकट करो। तुम्हे भी देशान्तर जाने की जरूरत नही है। तुम्हारा निर्वाह यही हो जायगा।' सूत्रधार जोजक स्वप्न देखकर ससभ्रम उठा और उस स्थान को अपने पुत्रादि से खुदवाने पर महावीर प्रभु की प्रतिमा प्रकट हुई। अत्यत प्रमुदित होकर सूत्रधार ने नगर मे जाकर समाज को सूचित किया। उपासकवर्ग ने भी महोत्सव के साथ चैत्य में प्रतिमा को स्थापित की और सूत्रधार की आजीविका बाँध दी।

उस स्थान पर प्रतिमा के परिकर की खूब शोध की, किन्तु परिकर प्राप्त न हुआ। किसी स्थल में दबा हुआ होगा। उसी परिकर पर प्रशस्ति लेखादि सभव है।

एक समय न्हवण (स्नान) कराने के पश्चात् प्रभु-प्रतिमा पर प्रस्वेद झरने लगा। बारंबार पोछने पर भी पसीना बद नही हुआ। इससे उपासकवर्ग ने यह निश्चय किया कि यहाँ निश्चय रूप से उपद्रव होनेवाला है। इतने मे ही प्रभात के समय जठ्ठुअ लोगो की धाड आई और उसने चारो तरफ से नगर को नष्टकर दिया। इस प्रकार प्रकट प्रभावी भगवान् महावीर कयवास स्थल में स० १३८५ तक उपासक वर्ग द्वारा पूजित रहे।

स० १३८५ मे आसीनगर (हाँसी) के अल्लवियवग के क्रूर-पुरुषो ने तत्रस्थ उपासक वर्ग और साधुओ को बदी बनाकर उनकी विडबना की। इन्ही क्रूरो ने पार्श्वनाथप्रभु की पाषाण-प्रतिमा खडित कर दी और महावीरप्रभु की चमत्कारी प्रतिमा को अखडित रूप से ही बैलगाडी में

रखकर दिल्ली ले आए। उस समय सम्राट मुहम्मद तुगलक देवगिरि मे था। अत उसके आने पर उसके आदेशानुसार व्यवस्था करने के विचार से उस प्रतिमा को तुगलकाबाद के शाही भडार मे रखवा दी। इस प्रकार यह प्रतिमा १५ महीनो तक तुर्कों के अधिकार मे रही।

महावीर स्वामी की इस प्रतिमा का यह वृत्तान्त होने पर आचार्य जिनप्रभ सोमवार के दिन राजसभा मे आये। उस समय वृष्टि हो रही थी जिससे आचार्य के चरण-कमल कीचड से भर गये थे। सम्राट मुहम्मद तुगलक ने यह देखकर मल्लिक काफूर द्वारा अच्छे वस्त्र-खड से आचार्य के चरण पुछवाये। आचार्य ने भावगर्भित काव्य द्वारा आर्शीर्वाद प्रदान किया। उस आशीर्वादात्मक काव्य की व्याख्या सुनकर सम्राट अत्यन्त प्रसन्न हुआ। अवसर देखकर आचार्यश्री ने उपर्युक्त महावीर-प्रतिमा का समस्त वृत्तान्त वतलाकर सम्राट से, उसे जैन-सघ को अर्पित कर देने के लिये कहा। सम्राट ने आचार्य की अभिलापा सहर्ष स्वीकार की और उसी समय तुगुलकावाद के खजाने से असूअग मल्लिको के कन्धे पर विराजमान करवाकर प्रभु-प्रतिमा को राजसभा में मँगवाया और दर्शन करके महावीर प्रतिमा आचार्य को समर्पित की। उस चमत्कारी प्रतिमा की प्राप्ति से जैन-सघ को अपार हर्ष हुआ। समस्त सघ ने सम्मिलित होकर बडे समारोह के साथ शिविका (पालकी) में विराजमान कर 'मलिकताजदीन सराय' के जिन-मन्दिर मे उसे स्थापित की। सूरिजी ने वासक्षेप किया और उपासक-गण प्रतिदिन पूजन करने लगे।

देवगिरि की ओर विहार और प्रतिष्ठानपुर यात्रा

आचार्य जिनप्रभ ने दिल्ली में इस प्रकार धर्म-प्रभावना करके महाराष्ट्र (दक्षिण) प्रान्त की ओर प्रस्थान किया। सम्राट ने आचार्य श्री के प्रवास में सब प्रकार की सुविधाएँ प्रस्तुत कर दी। सूरिजी ने सम्राट् एवं स्थानीय संघ के सन्तोष के निमित्त स्वशिष्य श्रीजिनदेवसूरि को १४ साधुओ

के साथ दिल्ली में ठहरने की आज्ञा दी । सूरिजी विहार-मार्ग के अनेक नगरो में धर्म एव शासन-प्रभावना करते हुये देवगिरि (दौलताबाद) पहुँचे । स्थानीय सघ ने प्रवेशोत्सव किया । वहाँ से सघपति जगसिह[1], साहण, मल्लदेव आदि सघ-मुख्यो के साथ प्रतिष्ठानपुर पधारे और जीवत मुनिसुव्रत-स्वामी की प्रतिमा के दर्शन किये । यात्रा करके संघ सहित आचार्य श्री पुन देवगिरि पधारे ।

देवगिरि के जैन मन्दिरो की रक्षा

एक समय शाह पेथड[2], सहजा[3] और ठ० अचल के निर्मापित जिन-मन्दिरो का तुर्क लोग नाश करने लगे, उस समय आचार्य जिनप्रभ शाही फरमान दिखलाकर उन मन्दिरो की रक्षा की । इस प्रकार और भी अनेक तरह से शासन एवं धर्म-प्रभावना करते हुये, शिष्यो को सिद्धात-वाचना और तपोद्वहन कराते हुये तीन वर्ष (स० १३८५-८७) देवगिरि

---

१ जिनप्रभसूरिजी सर्वत्र चैत्य परिपाटी करते हुए पीरोज सुरत्राण (सुलतान महमद) के साथ देवगिरि पहुँचे । उस समय संघपति जगसिह ने बहुत द्रव्य व्यय कर प्रवेशोत्सव किया । स्थानीय चैत्यो की वन्दना करते हुये सूरिजी जगसिह के गृह-मन्दिर पर आये । वहाँ वैडूर्यरत्न, स्फटिकरत्न, स्वर्ण, रूप्यमय जिन-प्रतिमाओ को देखकर सूरिजी भाव-विह्वल होकर सिर धुमाने लगे । स० जगसिह के कारण पूछने पर कहा—'मैंने बहुत स्थानो मे जिन-मन्दिरो और गुरुवो का वन्दन किया, किन्तु एक तो आज तुम्हारे गृह-मन्दिर को स्थावर तीर्थरूप और दूसरे जगम तीर्थरूप जघरालपुर में तपागच्छीय सोमतिलकसूरि को देखा है ।

—शुभशीलगणि कृत कथाकोष

२-३ देखें, प० लालचन्द्र भगवान् गाधी लिखित जिनप्रभसूरि अने सुलतान मुहम्मद, पृ० ७८ से १०२.

(दौलताबाद) में ही व्यतीत किये। इसी बीच सूरिजी ने बहुत से उद्भट वादियो को शास्त्रार्थ में पराजित किया ।

सम्राट् का पुन स्मरण और आमन्त्रण

एक समय सम्राट् मुहम्मद तुगलक दिल्ली की राज्यसभा मे अनेक देशीय विद्वानो के साथ विद्वच्चर्चा कर रहे थे । सम्राट को किसी शास्त्रीय विचार में सन्देह उत्पन्न हो जाने पर एव उपस्थित पण्डित-मंडली से संतोषजनक समाधान प्राप्त न होने से एकाएक आचार्य जिनप्रभ का स्मरण आया और सम्राट् ने कहा—'यदि इस समय राजसभा में वे आचार्य विद्यमान होते तो अवश्य ही हमारे संदेह का निराकरण हो जाता । सचमुच में उनके जैसा पाण्डित्य विश्व में अलभ्य है ।' इस प्रकार सम्राट् के मुख से आचार्य जिनप्रभ की प्रशसा सुनकर दौलताबाद से आये हुये ताजुलमल्लिक ने सिर झुकाकर निवेदन किया—'स्वामिन् ! वे महात्मा अभी दौलताबाद में हैं, परन्तु वहाँ का जल-वायु अनुकूल न होने से वे बहुत कृश हो गये हैं ।' यह सुनकर प्रसन्नतापूर्वक सूरिजी के गुणो का स्मरण करते हुये उस मल्लिक को आज्ञा दी कि तुम शीघ्र ही दुवीरखाने जाकर फरमान लिखा-कर सामग्री सहित भेजो, जिससे वे आचार्य देवगिरि से यहाँ शीघ्र पहुँच सकें । सम्राट की आज्ञा से ताजुलमल्लिक ने वैसा ही किया । शाही फर-मान यथासमय दौलताबाद के दीवान के पास पहुँचा । सूबेदार कुतुहलखान[1] ने सूरिजी को दिल्ली पधारने के लिये सविनय प्रार्थना करते हुये शाही फ़रमान बतलाया ।

देवगिरि से प्रयाण और अल्लावपुर मे उपद्रव-निवारण

सम्राट् के आमत्रण को महत्त्व देकर आचार्य जी ने सप्ताह भर में

---

१ इतिहास में जिसे क्युत्‌यलखान मलिक क्यनामुद्दीन कहा जाता है, वह शायद यही है—देखें केम्ब्रीज हिस्ट्री ऑफ इन्डिया, वॉ ३, पृ० १३० १५४, १५६, १६५

(१० दिन बाद) तैयार होकर ज्येष्ठ सुदी १२ को राजयोग मे सघ के साथ वहाँ से प्रस्थान किया। स्थान-स्थान पर धर्म-प्रभावना करते हुये आचार्य श्री अल्लावदुर्ग पधारे। असहिष्णु म्लेच्छो को एक जैनाचार्य की इस प्रकार की महिमा सह्य नही हुई। उन लोगो ने सघ की बहुत-सी वस्तुएँ छीनली और इसी प्रकार अनेक उपद्रव करने प्रारभ किये। जब इस उपद्रव के सवाद दिल्ली में स्थित आचार्य जिनदेव सूरि को मिले तो वे उसी समय सम्राट् से मिले और सारी विपत्ति की स्थिति बतलाई। सम्राट् ने उसी समय बहुमानपूर्वक फरमान भेजकर वहाँ के मल्लिक द्वारा सघ की सारी वस्तुएँ वापिस दिला दी। इससे उन लोगो पर सूरिजी का अद्भुत प्रभाव पडा। सूरिजी ने डेढ मास की अल्लावपुर में स्थिरता की। वहाँ से प्रस्थान कर क्रमश प्रवास करते हुए जब सूरिजी सिरोह पहुँचे तो सम्राट् ने उन्हें देवदूष्य सदृश सुकोमल १० वस्त्र भेज कर सत्कृत किया। वहाँ से विहार करके सूरिजी दिल्ली पहुँचे।

दिल्ली मे सम्राट् से पुनर्मिलन

जैन सघ और सम्राट् उनके दर्शनो के लिये चिरकाल से उत्कण्ठित था ही, पूज्यश्री के शुभागमन से उनका हृदय अत्यन्त प्रफुल्लित हो गया। भाद्रपद शुक्ला २ के दिन मुनिमण्डल एवं श्रावकसंघ के साथ आचार्यश्री राजसभा मे पधारे। सम्राट् ने मृदुवचनो से वन्दन पूर्वक कुशल प्रश्न पूछा और अत्यन्त स्नेहवश सूरिजी के करकमल का चुम्बन कर अपने हृदय पर रखा। आचार्यश्री ने तत्काल ही नूतन पद्यो द्वारा आशीर्वाद दिया, जिसे सुनकर सम्राट् का चित्त अत्यन्त चमत्कृत हुआ। सूरिजी के साथ वार्तालाप होने के अनन्तर विशाल महोत्सवपूर्वक अपने हिन्दुराजाओ, दीनार आदि मल्लिको और प्रधान पुरुपो के साथ अनेक प्रकार के वादित्रादि बजवाते हुये सन्मानपूर्वक सम्राट् ने सुलतान सराय की पौषधशाला में आचार्यश्री को पहुँचाया। यह प्रवेशोत्सव अपूर्व आनन्ददायक और दर्शनीय था।

पर्युषण मे धर्म-प्रभावना

भाद्रपद शुक्ला ४ के दिन सघ ने महोत्सवपूर्वक पर्युषणाकल्प (कल्पसूत्र) सूरिजी से भक्तिपूर्वक श्रवण किया। सूरिजी के आगमन और शासनप्रभावना के पत्र पाकर देशान्तरीय सघ हर्षित हुआ। सूरिजी ने राजवन्दी श्रावको को लाखो रुपयो के दण्ड से मुक्त कराया एव अन्य लोगो को भी करुणावान् आचार्यश्री ने कैद से छुडाया। जो लोग अवकृपा प्राप्त हो गए थे वे भी सूरिजी के प्रभाव से पुन प्रतिष्ठा प्राप्त कर सके। सूरिजी प्रतिदिन राजसभा में जाते थे, उन्होने अनेक वादियो पर विजय प्राप्त कर शासन की शोभा वढाई थी।

फाल्गुन मास मे, दौलतावाद से सम्राट् की जननी मखदूमईजहाँ के आने पर चतुरग सेना के साथ बादशाह उसकी अभ्यर्थना मे सन्मुख गया। उस समय आचार्यश्री भी सम्राट् के साथ थे। वडथूण स्थान में माता ने मिलकर सम्राट् ने सबको प्रचुर दान दिया। प्रधानादि अधिकारियो को वस्त्रादि देकर सत्कृत किया। वहाँ से दिल्ली आकर सूरिजी को वस्त्रादि देकर सन्मानित किया।

दीक्षा और बिम्ब प्रतिष्ठादि उत्सव

चैत्र शुक्ला १२ को राजयोग में सम्राट् की अनुमति से उसके दिये हुए साइवाण की छाया में नन्दी स्थापना की। सूरिजी ने वहाँ ५ शिष्यो को दीक्षित किया। मालारोपण, सम्यक्त्व ग्रहण आदि धर्मकृत्य हुये। स्थिरदेव के पुत्र ठ० मदन (वभदत्त) ने इस प्रसग पर बहुत-सा द्रव्य व्यय किया।

आषाढ शुक्ला १० को नवीन निर्मित १३ जिन-प्रतिमाओ की सूरिजी ने महोत्सवपूर्वक प्रतिष्ठा की। बिम्बनिर्माता एव सा० पहराज के पुत्र अजयदेव ने प्रतिष्ठा महोत्सव मे पुष्कल द्रव्य व्यय किया।

सम्राट् समर्पित भट्टारकसराय मे प्रवेश

सुल्तानसराय राजसभा से काफी दूर था, अत सूरिजी को हमेशा

आने में कष्ट होता है ऐसा विचार कर सम्राट् ने अपने महल के निकटवर्ती सुन्दर भवनो से सुशोभित नवीन सराय समर्पण किया। श्रावकसघ को वहाँ पर रहने की आज्ञा देकर सम्राट् ने उसका नाम भट्टारकसराय प्रसिद्ध किया। सम्राट् ने वहाँ महावीर स्वामी का मन्दिर तथा पौपधशाला बनवाई। स० १३८९ आषाढ कृष्णा सप्तमी ७ को उत्सवपूर्वक सूरिजी ने नवीन पौपधशाला मे प्रवेश किया। इस प्रसग पर विद्वानो एव दीन-अनाथो को यथेष्ट दान दिया गया।

मथुरातीर्थ का उद्धार

स० १३९३ मार्गशीर्ष महीने मे सम्राट् ने पूर्व देश की ओर विजय प्राप्त करने के हेतु ससैन्य प्रस्थान[1] किया। उस समय उन्होंने सूरिजी को भी विज्ञप्ति करके अपने साथ में लिये। स्थान-स्थान पर शासन भावना करते हुये सूरिजी ने मथुरा तीर्थ का उद्धार करवाया।

हस्तिनापुर की यात्रा और प्रतिष्ठा

शाही सेना के साथ पैदल विहार करते हुए वृद्धावस्था के कारण सूरिजी को कष्ट होता है, यह विचार कर सम्राट् ने खोजेजहाँ[2] मल्लिक के साथ उन्हे आगरे से दिल्ली लौटा दिया। हस्तिनापुर की यात्रा का फरमान लेकर आचार्यश्री दिल्ली पहुँचे। चतुर्विधसंघ हस्तिनापुर की यात्रा के निमित्त एकत्र हुआ। शुभ मुहूर्त मे बोहित्थ (बाहडपुत्र) को सघपति का

---

१ ईस्वी सन् १३३३ (वि० स० १३९०) मे मुहम्मद तुगलक ने पूर्व देश विजय यात्रा के लिये प्रस्थान किया। देखे, केम्ब्रीज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, वॉ० ३, पृ० १४७-१४८

२ ख्वाजाजहाँन् मुहम्मद तुगलक का प्रधान व्यक्ति था। देखे केम्ब्रीज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, वॉ० ३, पृ० १३४, १४०, १४३, १४८, १५२, १५८, १७२

तिलक कर वहाँ मे प्रस्थान किया।[1] सघपति वोहित्य ने स्थान-स्थान पर महोत्सव किये।

तीर्थभूमि मे पहुँच कर तीर्थ को वधाया। नवनिर्मित शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ आदि तीर्थंकर प्रतिमाओ की सूरिजी ने प्रतिष्ठा की। अम्बिकादेवी की प्रतिमा स्थापित की। सघपति वोहित्य ने सघवात्सलादि महोत्सव किये। सघ ने वस्त्र, भोजनादि द्वारा याचको को सन्तुष्ट किया।

तीर्थयात्रा मे लौटकर सूरिजी ने वैशाख शुक्ला १० के दिन सपूर्ण कल्मप और विघ्नो को दूर करनेवाले श्रीकन्यानयनीय महावीर-प्रतिमा को सम्राट् द्वारा वनाये हुए जैन मन्दिर मे महोत्सवपूर्वक स्थापित किया।

इवर सम्राट् भी दिग्विजय करके दिल्ली लौटा। जैन-मन्दिर और उपाश्रयो में उत्सव होने लगे। मम्राट् एव मूरिजी का सम्वन्ध उत्तरोत्तर घनिष्ठता को प्राप्त करने लगा, अत सूरिजी और सम्राट् दोनो के द्वारा जिनशासन की वडी प्रभावना होने लगी। सूरिजी के प्रभाव से दिगम्बर एव श्वेताम्बर समस्त जैन-सघ व तीर्थों के उपद्रव शाही फरमानो के द्वारा सर्वथा दूर हो गए।

स्वर्गवास

जिस प्रकार आचार्यश्री के जन्म-सवत् का उल्लेख प्राप्त नही है। उसी प्रकार स्वर्गवास के समय का भी कोई ऐतिह्य उल्लेख प्राप्त नही है।

---

१ शक स० १२५५ सं० १३९० वैशाख शुक्ला ६ को सघ के साथ यात्रा करने का उल्लेख स्वय मूरिजी ने 'जयपुरस्तोत्र' में इस प्रकार किया है—

"इत्थ पृपत्कं विपंया कमिते[12] शकाव्दे,
वैशाखमासिसितिपक्षगपष्ठतिथ्याम्।
यात्रोत्सवोपतत सघयुतो मुनीन्द्र,
स्तोत्र व्यवाद् गजपुरस्य जिनप्रभाख्य॥"

आचार्य के प्रणीत ग्रन्थो के आधार पर ही अनुमान किया जा सकता है। आचार्य जी के अनेक ग्रन्थो में तो रचना-समय का निर्देश भी नही है। कतिपय ग्रन्थो में सम्वत् का उल्लेख अवश्य प्राप्त है।

सवत् उल्लेख की दृष्टि से 'कातन्त्रविभ्रम टीका' की रचना स० १३५२ में हुई। अत आचार्यपद-प्राप्ति के पश्चात् यह इनकी सर्वप्रथम रचना मानी जा सकती है और अन्तिम रचना 'महावीरगणधरकल्प' स० १३८९ की है। इसके पश्चात् की कोई सम्वत् उल्लेख वाली रचना अभी तक प्राप्त नही हुई है। इसलिए जिनप्रभसूरि का स्वर्गवास का समय वि० स० १३९० के आसपास ७२-७५ वर्ष की अवस्था में अनुमान से निर्धारित किया जा सकता है।

चमत्कारी घटनाएँ

"नमस्कार है चमत्कारको" की उक्ति को आचार्यजी ने चरितार्थ कर दिखाई है। चमत्कारो का प्रयोग या घटनाओ की ख्यातियाँ जितनी श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय मे दादा जिनदत्त सूरि, दादा जिनकुशल सूरि और जिनप्रभसूरि की प्राप्त है उतनी सभवत किसी अन्य आचार्य की नही। वैसे जैन-साधु को स्वार्थ से चमत्कार दिखाना साधु-मर्यादा के विपरीत है किन्तु शासनसेवा या प्रभावना या उन्नति के निमित्त प्रयोग करना वर्जित नही है। आचार्य जिनप्रभ ने परिस्थितियो के अनुसार धर्म-प्रसार और शासनोन्नति के लिये ही इस शक्ति का आश्रय लिया था। पहले कहा जा चुका है कि प्रभावती देवी आपको प्रत्यक्ष थी और उसके सानिध्य से ही आपने करामात दिखाए। आपके और दादाओ के चमत्कारो में अन्तर इतना ही है कि आपके चमत्कार जीवन तक ही सीमित रहे और दादाओ के चमत्कार आज भी स्थान-स्थान पर देखे जा सकते है।

जिनप्रभ के करामातो का कोई मौलिक विवरण तो प्राप्त है नही, किन्तु परवर्ती ग्रन्थकारो—शुभशीलगणि (पचशतीकथाप्रबन्ध) सोमधर्म

गणि (उपदेशसप्ततिका) और वृद्धाचार्यप्रबन्धावलिकार ने कुछ-कुछ घटनाओ का उल्लेख किया है, उन्ही के आधार पर घटनाओं का उल्लेख यहाँ पर किया जा रहा है।

मुहम्मद शाह से मुलाकात

एक समय आचार्य शौच के लिए योगिनीपुर के बाहर गए हुए थे। उस समय मिथ्यादृष्टि अनार्यो (मुसलमानो) ने आचार्य पर पत्थरो की वर्षा करने लगे। आचार्य ने अत करण मे ही पद्मावती से कहा—देवि, तुमने मेरा स्वागत तो सुन्दर करवाया ? देवी ने उसी समय उन मुसलमानो की पूजा और ताडना की। वे भय से भागकर महम्मदशाह के पास गये और सारी घटना कही। घटना से चमत्कृत होकर शाह ने पूछा कि वह पुरुष कहाँ है ? उन्होने कहा कि हमने नगर के वहिर्प्रदेश में उसे देखा था। शाह ने उसी समय प्रधान पुरुषो को बुलाकर आदेश दिया—जाओ, तुम उस पुरुष को यहाँ लेकर आवो, जिससे मैं उसको देख सकूँ। आदेश के अनुसार प्रधान पुरुषो ने आचार्य के पास आकर निवेदन किया—स्वामिन् ! आप हमारे शाह के पास पधारें और उसके बाद आप अपनी इच्छानुसार कही भी पधारें। आचार्य उन पुरुषो के साथ राजमहल के द्वार तक आकर ठहर गये। प्रधान पुरुषो ने जाकर शाह से निवेदन किया कि वह पुरुष द्वार पर उपस्थित है। जिस समय पुरुष शाह से कह रहे थे उस समय आचार्य ने अपने शिष्यो से कहा—'मैं कुम्भकासन करता हूँ।' जब शाह आवे तब कहना कि—'ये हमारे गुरू हैं।' जब शाह कहे कि 'जिस अवस्था में थे उसी स्वरूप में करो।' तो उस समय तुम जल से सिंचित भीना वस्त्र मेरे स्कंध पर रखकर उठा देना। इस प्रकार कह कर आचार्य ध्यान में बैठे—कुम्भ समान हो गये। उसके बाद महम्मद शाह ने आकर पूछा—'तुम्हारा गुरु कहाँ है ?' शिष्यो ने कहा—'आपके सन्मुख ही तो बैठे है !' शाह ने कहा—'जिस स्वरूप में थे वैसा करो।' तब शिष्यो ने भीना वस्त्र कर स्वस्थ्य अवस्था में किया। आचार्य ने उठ

कर शाह को धर्मलाभ आशीष दी और वार्ता में संलग्न हो गये ।

महम्मदशाह की राणी वालादे का व्यतरोपद्रव दूर करना

महम्मदशाह ने आचार्यश्री से कहा—'भगवन्! मेरी प्राणप्रिया राणी वालादे है। उस पर व्यतर का प्रकोप होने के कारण वह वस्त्र धारण नही करती है और न शरीर स्वस्थता का ही ख्याल रखती है। मैंने उपचार के लिये अनेको मन्त्र-तन्त्रवादियो को बुलाये किन्तु वह जिस किसी भी उपचारक को देखती है तो पत्थर और लकडियो से उसे मारती है। अत कृपा करके उसे स्वस्थ कीजिए और उसे चल कर देखिये।' आचार्य ने कहा—'तुम उसके पास जाकर विनम्र शब्दो में कहो कि "जिनप्रभसूरि तुम्हारे पास आ रहे है।" शाह ने उसी प्रकार जाकर कहा। रानी जिनप्रभसूरि का नाम सुनते ही सहसा उठ खडी हुई और दासी को कहा—'मेरे वस्त्र लावो।' दासियो ने तत्काल ही वस्त्र लाकर उसे पहनाये। इस कथन के प्रभाव को देखकर शाह चमत्कृत हुआ और आचार्य के पास आकर कहा—'आप उसके पास जाकर उसे देखिये।' आचार्य वालादे के समीप गये और उसे देखकर आचार्य ने कहा—'रे दुष्ट! तू यहाँ कैसे आया ? यहाँ से चला जा।'

व्यतर—मुझे अच्छा घर मिला है, छोडकर कैसे जाऊँ ?

आचार्य०—तेरे लिये दूसरा स्थान नही है ?

व्य—ऐसा सुन्दर घर नही है।

उसी समय आचार्य ने मेघनाद क्षेत्रपाल को बुलाकर आदेश दिया कि इस व्यतर को दूर करो। मेघनाद ने उसे अत्यधिक पीडित किया। उस समय व्यतर ने कहा—'मैं भूख से पीडित हूँ। मुझे कुछ खाने के लिये दो ?"

आ०—तुझे खाने के लिये क्या दें ?

व्य०—भैंसे का मास आदि दीजिये।

आ०—'मेरे सन्मुख ऐसे मत बोल। मैं तुझे गाढ-बधनो से बाधता हूँ' कहकर सूरिमन्त्र का जाप करने लगे।

व्य०—स्वामी, तुम सब जीवो को अभयदान देने वाले हो-तो अभय-दानी होकर मुझे क्यो दु ख देते हो ?

आ०—तुम इस स्थान से चले जाओ।

व्य०—मुझे कुछ भी खाने के लिये दीजिये।

आ०—क्या दें ?

व्य०—घी-गुड के साथ रोटी दीजिये।

शाह०—घी, गुड के साथ रोटी मैं देता हूँ।

आ०—मुझे कैसे प्रतीति हो कि तू यहाँ से चला गया ?

व्य०—मेरे जाने के साथ ही अमुक-पीपल के वृक्ष की डाली टूट जायगी—यही निशानी है। रात्रि को यही हुआ।

प्रभात मे बालादे राणी को स्वस्थ और सुसंस्कृत देखकर शाह अत्यधिक प्रसन्न हुआ और बोला—प्रिये ! जो ये महान् प्रभावक आचार्य न आये होते तो तुम कहाँ होती ? यह सुनकर बालादे ने कहा—स्वामिन् ! यह पूज्य पुरुष मेरे माता-पिता के समान हैं। इन पूज्य का आप अच्छी तरह से स्वागत-सत्कार करें और राजसिंहासन के अर्धासन पर बिठावें। शाह ने स्वीकार किया। शाह समय-समय पर गुरु के स्थान पर जाते थे और गुरु को अपने राजमहलो में लाते थे और अर्धासन पर बिठाते थे।

राघव चैतन्य का अपमान

एक समय बनारस से चौदह विद्याओ का पारगामी मंत्र-तंत्रो का जानकार राघवचैतन्य[1] नाम का महाविद्वान् योगिनीपुर आया और शाह से

---

१ राघव चैतन्य के संबधो में प० लालचन्द भगवान् गाधी ने यह जिनप्रभसूरि अने सुलतान मुहम्मद, पृ० १४१ की टिप्पणी में लिखा है—

"एपिग्राफिका इण्डिका (पृ० १९३–१९४) मा तथा निर्णयसागर प्रेसनी प्राचीन लेखमाला (भार० ले० १००) मा प्रकट थयेल यमक

मिला। मुहम्मदशाह ने उसे सत्कार किया। वह शाह की सभा में प्रतिदिन आता था। एक समय सभा में आचार्य राघवचैतन्य आदि विद्वान् वार्ता-विनोद कर रहे थे उस समय आचार्य के प्रभाव से असहिष्णु होकर राघव-चैतन्य ने ईर्ष्या और दुष्टता से विचार किया कि जैसै-तैसे इस पर कोई लाछन लगाकर, अपमानित करवाकर यहाँ से निकलवा दूँ, तब भी मेरे प्रभाव मे वृद्धि होगी। ऐसा विचार कर विद्यावल से शाह के हाथ से मुद्रिका हरण कर आचार्य न जाने इस प्रकार आचार्य के रजोहरण में नाख दी। प्रभावती ने तत्काल ही आचार्य को कहा—'राघव चैतन्य ने शाह की मुद्रिका हरण कर तुम्हारे रजोहरण मे नाख दी है, सावधान रहो। उसी समय आचार्य ने वह मुद्रारत्न लेकर राघव चैतन्य न जाने इस प्रकार उसके मस्तकोपरिवस्त्र पर रख दी। इसी समय मुहम्मदशाह अपनी अगुली

छटावाला ज्वालामुखी देवी स्तोत्रना रचनार राघव चैतन्य मुनि आ जणाय छे। ते स्तोत्र (शिलालेख) मा तेना नामनुं सूचन छे, कागडा (पजाब) ना राजा संसारचन्द्रनी प्रशस्ति पछी त्या प्रस्तुत साहि महम्मदनी कीर्ति-रूप ते परमयोगिनी (ज्वालामुखी) ने सूचवामा आवी छे—

श्रीमद्राघवचैतन्यमुनिनाब्रह्मवादिना।
[स्तव] रत्नावली सेय ज्वालामुख्यै समर्पिता।
श्रीमत्साहिमहम्मदस्य जयतात् कीर्ति. परायोगिनी।

नि सा नी काव्यमालाना प्रथम गुच्छकना प्रारभमा मूकायेल मत्र-मालागर्भित महागणपतिस्तोत्रना कर्तापण आ कवि जणाय छे। तेनी व्याख्या-टिप्पणीमा तेने 'परमहस परिव्राजकाचार्य' विशेपण थी परिचय कराव्या छे। शार्ङ्गधरे शार्ङ्गधरपद्धति (सुभापितावली) मा केटलाक पद्यो 'श्रीराघवचैतन्यश्रीचरणाना' उल्लेख साथे सूचवेला छे, तथा शाकभरीश्वर हम्मीर चाहुवाण (चौहाण) नी राजसभाने शोभावनार द्विजागुणी राघवदेवना पौत्रतरीके पोतानो परिचय कराव्यो छे। एथी ए राघवदेव ज सन्यासी थया पछी राघवचैतन्य नामे प्रसिद्ध थया हशे-एम जणाय छे।"

मे मुद्रा न देखकर ढूढने लगा—नही मिली। शाह ने कहा कि—अभी तो मुद्रिका मेरे पास थी, कहाँ गई ? किसने चुराई है ? यह सुनते ही राघव चैतन्य शीघ्र बोला—शाह ! आपकी मुद्रिका तो जिनप्रभ के पास है। शाह ने आचार्य से मुद्रिका मागी तो आचार्य ने कहा—'राघव के पास है, राघव ने अपने सारे वस्त्र दिखाये किन्तु मुद्रिका नही मिली। आचार्य ने कहा—'इसके शिर पर है।' मस्तक पर देखने से मुद्रिका प्राप्त हुई। शाह ने मुद्रिका लेकर राघव चैतन्य को कहा—"तुम्हें धन्य है ! तुम सत्य-वादी हो ! जो स्वयं तस्करवृत्ति करके आचार्य पर दोपारोपण करते हो ! इससे राघवचैतन्य श्यामीभूत होकर अपने स्वस्थान को गया।

कलदर का गर्वहरण

एक समय आचार्य सभा मे बैठे हुए थे। उसी समय खुरासाण से विद्यावान एक कलदर (मुस्लिम फकीर) राजसभा में आया। उसने शाह पर अपना प्रभाव जमाने की दृष्टि से स्वय की कुल्लह (टोपी) उतार कर आकाश में फैंककर मुहम्मदशाह को कहा–'शाह ! तुम्हारी सभा में ऐसा कोई है ? जो इस टोपी को उतार सके ?' शाह ने सभा की तरफ दृष्टि डाली। दृष्टि सकेत को समझकर आचार्य ने शाह से कहा–'राजन् ! मैं जो कर्त्तव्य दिखाता हूँ, उसे देखो !' यह कहकर आचार्य ने रजोहरण (धर्मध्वज) को आकाश में फैंका और उस (रजोहरण) ने आकाश में जाकर उस टोपी को पीटता हुआ नीचे लाया।[1]

अन्य दिवस एक पनीहारिन को पानी के भरे हुये घडे सिर पर रख कर जाते हुए देखकर मौलाना ने उन घडो को निराधार स्तभित रखा—

---

१ पंचशतीकथाप्रबन्ध के अनुसार विशेपता यह है "आचार्य ने टोपी को आकाश में ही स्तंभित कर दी और मुल्ला आकर्पण प्रयोग से अपनी टोपी वापस नीचे न उतार सका तब शाह के निर्देश से आचार्य ने रजोहरण फेंककर टोपी नीचे उतारी।

पनीहारिन चली गई। घडो को आकाश में निराधार देखकर शाह चमत्कृत होकर मुल्ला की प्रशंसा करने लगा। तब आचार्य ने कहा—'घडा क्या, यदि पानी निराधार रहे तो चमत्कार माना जाय।' शाह ने कौतुक से मौलाना को कहा, किन्तु मौलाना न कर सका। आचार्य ने उसी समय ककड फेंककर दोनो घड़ो को फोड दिया और पानी को निराधार स्तम्भित रखा।[1]

अद्भुत निमित्त कथन

एक समय सभा में बैठे हुये कौतुक-प्रिय शाह ने सभा मे स्थित समस्त विद्वानो को लक्ष्य करके कहा—'विज्ञो! आप लोग यह बतलाइये कि 'प्रात.काल मैं किस मार्ग से रयवाडी (राजपाटी) जाऊँगा? यह सुनकर सब विद्वानो ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार विचार करके पत्र में लिखकर शाह को दिया। शाह के सकेत से आचार्य ने भी पत्र लिखकर दिया। उन सब पत्रों को शाह ने अपने दुपट्टे में बाँध लिया। शाह ने विचार किया कि यह समय है जब कि सबको असत्यवादी सिद्ध करूँ'। ऐसा विचार कर प्रात काल बंदर बुर्ज[2] को तुडवाकर बाहर निकला और क्रीड़ा कर एक स्थान पर बैठकर समस्त विद्वन्मडली को वहाँ बुलवाया और कहा कि आप सब अपने-अपने पत्र बाँचें? समस्त विद्वानो ने स्वय लिखित पत्रो को पढा—सब कल्पित (असत्य) थे। आचार्य ने भी अपना लिखा हुआ पत्र पढा, उसमें लिखा था—'बदर बुर्ज को तुडवाकर, क्रीडा कर शाह वट वृक्ष के नीचे विश्राम करेगा।' यह सुनकर शाह चम-

---

१ वृ प्र के अनुसार—आचार्य ने घडा फोडकर पानी को घडे का आकार देकर निराधार रखा। यह देखकर शाह ने कहा—'पानी का कण फुसिया (अलग) करो।' तो आचार्य ने वैसा ही किया।

२ किसी स्थान पर 'किल्ले की २१ वें लंगक के पास की ३१ थरो की ईंटें दूर करवाकर शाह गया।

स्कृत[1] हुआ और बोला कि 'यह आचार्य साक्षात् परमेश्वर तुल्य है और इसकी देवता भी सेवा करते हैं।'

वटवृक्ष को साथ चलाना

मुहम्मद शाह ने आचार्य जिनप्रभ से कहा—'भगवन्!, यह वड[2] सुन्दर और शीतल छाया वाला है तो आप ऐसा करें कि यह वृक्ष भी हमारे साथ चले, जिससे इसकी शीतल छाया का हम आनन्द उठा सकें।' आचार्य ने वैसा ही किया। वृक्ष पाँच कोस तक छाया प्रदान करता हुआ साथ चला। अन्त में शाह ने वापस लौटाने को कहा तव आचार्य ने उसे वापस जाने का आदेश दिया, वह अपने स्थान पर चला गया।

क्या भोजन करूँगा ?

एक समय सुलतान ने कहा कि आज मैं क्या भोजन करूँगा ? आचार्य ने पत्र में लिखकर शाह को दिया और कहा कि भोजन करने के पश्चात् पत्र पढ़ें। तदनुसार शाह ने खल (खोल) ? का भोजन किया और पत्र खोलकर पढा तो आश्चर्य चकित हो गया कि वही लिखा था कि 'खल' का भोजन करेंगे।

मीठी कहाँ

एक समय सुलतान ने विनोद से समस्त सभासदो से पूछा कि 'शक्कर किसमें डालने से मीठी लगती है ? सभासदस्य-प्रधानो और विद्वानो के उत्तर न देने पर आचार्य ने कहा—'शक्कर मुख में डालने से मीठी लगती है।'

---

१ इस प्रकार का वृत्तान्त महाराज भोज और महाकवि धनपाल का भी प्राप्त होता है।

२ आम्रवृक्ष का भी उल्लेख है।

सरोवर छोटा कैसे हो ?

एक समय सुलतान क्रीडा करते हुए वाहर के उद्यान में आये। वहाँ एक सरोवर पानी से लवालव भरा हुआ देखकर अपने समस्त साथियो (प्रधानो और विद्वानो) को कहा— मिट्टी डाले विना ही सरोवर छोटा कैसे हो ? किसी के भी उत्तर न देने पर आचार्य ने कहा—'शाह ! इस सरोवर के निकट ही यदि एक वडा सरोवर वना दिया जाय तो यह स्वत ही छोटा हो जायगा।'

पृथ्वी पर मोटा फल कौन-सा ?

एक समय सुलतान ने आचार्य से पूछा कि 'कहो गुरुजी ? पृथ्वी पर सब से वडा फल कौन-सा होता है ?' आचार्य ने तत्काल ही प्रत्युत्तर दिया—राजन् ! समस्त जगत को ढाँकने वाला होने से वउणि (वण-कपास) का है।

विजययत्र महिमा

एक समय सम्राट् ने आचार्य से विजययन्त्र का आम्नाय पूछा। आचार्य ने कहा—राजन्, यह आपका विषय नही है। सम्राट् ! यह यंत्र जिसके पास में होता है उसका आघात दैविक शस्त्र भी नही कर सकते। और भयंकर से भयंकर शत्रु भी उसे पीडा नही पहुँचा सकते।' यह सुनकर शाह ने उसकी परीक्षा के लिये आचार्य से यंत्र वनवाकर एक वकरे के कंठ में वाँध दिया और उस पर तलवार आदि शस्त्रो का आघात किया, किन्तु उस पर तनिक भी आघात नही हुआ।

उस विजय-यंत्र को छत्रदंड पर वाँधकर उसके नीचे चूहे को छोड दिया और उसकी घात के लिये विल्ली को छोड दिया। चूहे को देखते ही विल्ली उस पर झपटी किन्तु छत्रदण्ड की सीमा में प्रवेश भी न कर सकी।

इस प्रकार यत्र का चमत्कार देखकर चमत्कृत हुआ और ताम्रमय दो यत्र वनवाकर एक सम्राट् ने स्वय रखा और दूसरा आचार्य को प्रदान

किया। तब से सम्राट् स्थान, यान, घर, ग्राम, सभा, एकान्त, वन आदि किसी भी स्थान पर आचार्यजी को साथ ही रखता था।

मरुस्थल मे दान

एक समय शाह मरुस्थल प्रदेश मे आया। स्थान-स्थान पर मारवाड के नगरनिवासी हाथो में भेंट लेकर सामने आते थे। वहाँ के निवासियो को सामान्य वेश मे देखकर शाह ने आचार्य से पूछा—गुरुजी! यहाँ की नारियाँ आभरणरहित है, वेष-भूषा सामान्य है तो क्या इन लोगो को किसी ने लूट लिया है या किन्ही अपराधो में दडित हुये है?' आचार्य ने कहा—सम्राट्! यह मरुदेश रुक्ष और धनहीन है—इसी कारण से यहाँ के निवासी दरिद्र-प्राय गरीब है—और कोई कारण नही है।' यह सुनकर शाह ने प्रत्येक पुरुष को पाँच-पाँच वस्त्र और प्रत्येक नारी को साड़ी के साथ स्वर्ण के दो टक प्रदान किये।[1]

ज्वर का जल मे आरोप

एक समय आचार्य ज्वर आ जाने से सम्राट् के पास न जा सके। सम्राट् गुरुजी को ज्वरगस्त सुनकर आश्रम में आया और गुरुजी से कहा—ज्वर को भगाइये। आचार्य ने कहा वह अपना भोग लेकर जायेगा। फिर भी शाह के आग्रह से जल-पात्र मँगवाया और ज्वर का उसमें आरोप कर शाह से वार्ता करने लगे। जल-पात्र जलने लगा और कलकल शब्द करने लगा। शाह के जाने के पश्चात् आचार्य ने जलपात्र का पानी पी लिया। ज्वर पुन. चढ़ गया और अवधि पूर्ण होने पर चला गया।

तैलग वन्दी मोचन

एक समय फीरोजशाह ने तैलग देश पर विजय प्राप्त कर १ लाख ६९

---

१. किसी पट्टावली-में—प्रत्येक स्त्री को सौ-सौ दीनार देने का उल्लेख है तो किसी में 'प्रत्येक स्त्री को 'पाँच-पाँच स्वर्ण टक मय पात्र' देने का उल्लेख है।

हजार वदियो को मारने का आदेश दिया । यह जानकर आचार्य सम्राट् के पास आये और कहा कि इस प्रकार अन्याय हो रहा है, रोकिये । सम्राट् ने कहा—मुझे क्या मालूम कि तैलग में क्या अन्याय हो रहा है, मुझे दिखाओ । आचार्य ने स्वप्नावस्था में समाट् को तैलग ले जाकर सारी स्थिति दिखाई । दूसरे दिन सम्राट् ने उन १ लाख ६९ हजार वदियो को मोचन का आदेश दिया ।

अमावस्या की पूर्णिमा

कहा जाता है कि एक समय सभा मे 'आज कौन-सी तिथि है' इस प्रश्न पर आचार्यश्री के मुख से या उनके शिष्य के मुख से सहसा निकल गया कि 'आज पूर्णिमा है ।' वस्तुत थी अमावस्या । सम्राट् ने मजाक किया कि आचार्य ! आज है तो अमावस्या किन्तु रात्रि तो चन्द्रिकाधौत रहेगी ही । आचार्य ने कहा—हाँ । तदन्तर उपासक से रजत का थाल मगवाकर मत्रित कर आकाश मे फेंका । आचार्य के प्रभाव से अमावस्या की अंधकारपूर्ण रात्रि भी चन्द्र की ज्योत्स्ना से धवलित हो रही थी । शाह ने परीक्षा के लिये १२-१२ कोस तक घुडसवारो को भेजकर परीक्षा करवाई—सत्य रही ।

महावीर प्रतिमा का बोलना

कन्यानयनीय महावीर-प्रतिमा जो म्लेच्छो द्वारा हरण की गई थी और जो राजमहल के पगोथियो पर पडी थी—जिस पर सब आते-जाते थे । आचार्य ने देखी और राजमहल मे शाह के पास जाकर कहा—'आप यदि दे तो मैं एक प्रार्थना करूँ ?' शाह ने कहा—'माँगिये, मैं अवश्य दूँगा ।' आचार्य ने कहा—'राजमहल के द्वार पर रखी हुई महावीर-प्रतिमा दीजिये ।' शाह ने उसी समय उस प्रतिमा को अपने राजमहल में मगवाई । उस प्रतिमा की मनोहारी प्रशान्त मुद्रा देखकर शाह का हृदय खिल उठा और उसने कहा–'यह प्रतिमा तो मैं नही दूँगा ।' सुनकर आचार्य ने कहा– 'तो मेरा आगमन निरर्थक हुआ ?' शाह ने कहा—'यदि यह प्रतिमा मुख से बोले तो मैं आपको प्रदान कर दूँगा ।' आचार्य ने कहा—आप यदि पूजा-

सत्कार करे तो भगवान् अवश्य वोलेंगे।' शाह ने विधि के अनुसार पूजा-सत्कार किया और पूजक के वेष में ही प्रार्थना की—'भगवन् ! मेहरवानी करके वोलिये।' उसी समय महावीर प्रतिमा ने जीमणा (दाहिना) हाथ फैलाकर कहा—[1]

"विजयतां जिनशासनमुज्ज्वलं, विजयतां भूभुजाधिपवल्लभ ।
विजयतां भुवि साहिमहम्मदो, विजयतां गुरुसूरिजिनप्रभ ॥"

इस पद्य का अर्थ गुरु के मुख से श्रवण कर सम्राट् ने कहा—'इस देव को क्या दूँ ?' आचार्य ने कहा—'शाह ! ये देव सुगन्धित द्रव्यो से प्रसन्न होते हैं।' सूरिमुख से श्रवण कर मुहम्मदशाह ने खरट और मातड नाम के दो गाँव पूजा-सत्कार के लिये प्रदान किये। श्रावक-गण धूप लाकर सदैव धूप-पूजा करने लगे और सम्राट् ने वहाँ नया प्रासाद निर्माण करवाया।

रायण वृक्ष से दूध वरसाना

कन्यानयन महावीर-प्रतिमा का चमत्कार देखकर सम्राट् ने कहा—'गुरुजी !, कान्हड महावीर के समान चमत्कारी और भी कोई तीर्थ है ?' आचार्य ने 'शत्रुञ्जयतीर्थ की प्रशसा की।' कौतुक-प्रिय और दर्शनोत्सुकी सम्राट् ने गुरु की आज्ञा से संघ लेकर शत्रुञ्जय गया। तीर्थ के दर्शन कर शाह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उस समय आचार्य ने कहा—'यदि इस रायणवृक्ष को मोतियों से वधाया जाय तो यह वृक्ष दूध की वर्षा करता है।' सम्राट् ने रायण को मोतियो से वधाया, उसी समय रायण से दूध झरने लगा।

आचार्य ने सम्राट् को सघपति की क्रिया करवा कर संघ के समक्ष सघपति पद प्रदान किया। सम्राट् ने वहाँ अपनी आज्ञा अकित करवाई कि 'जो इस तीर्थ की आशातना करेगा वह पातिसाह का अपमान करेगा।'

---

१ पंचशती के अनुसार प्रतिमा ने शाह के २१ प्रश्नो के उत्तर प्रदान किये।

तीर्थ से उतर कर सम्राट् ने सब लोगो से कहा कि 'अपने-अपने देवो की प्रतिमाओ को लाओ।' शाह के आदेश से सब अपने-अपने देवो की प्रतिमाओ को लाये। सब प्रतिमाओ को एकत्रित देखकर शाह ने कहा—'इन सब में बडा देव कौन है ?' इस प्रश्न का किसी ने उत्तर नही दिया। तब शाह ने अर्हत्प्रतिमा को बीच में रखकर आजू-बाजू अन्य प्रतिमाएँ रखी और इसी प्रकार स्वय मध्य में बैठकर अपने दोनो तरफ सशस्त्र सैनिको को खडा करके पूछा—'कौन बडा है ?' सबने कहा—'आप बडे हैं।' सुनकर सम्राट् ने कहा—'वैसे ही शस्त्र-रहित होने से जिनदेव बडे हैं और शस्त्रधारी देव इनके रक्षक है।' जनता ने कहा—'आपके वचन प्रमाणीभूत हैं।'

वहाँ से सम्राट् संघ सहित गिरनार तीर्थ आया और तत्र स्थित भगवान् नेमिनाथ की प्रतिमा को अच्छेद्य और अभेद्य सुनकर परीक्षा के लिये प्रतिमा पर आघात किये। आघात से प्रतिमा अग्निकण उगलने लगी। यह देखकर, क्षमा याचना कर, नमस्कार कर १०० स्वर्णटको से प्रतिमा को बधाया।

चौसठ योगिनी प्रतिबोध

एक समय आचार्य व्याख्यान दे रहे थे। उस समय ६४ योगिनियाँ उनको छलने के लिये श्राविका (उपासिका) रूप में उपाश्रय मे आकर सामायिक लेकर बैठ गई। पद्मावती ने आचार्य को सकेत किया कि 'ये योगिनियाँ आपको छलने के लिये आई हैं।' आचार्य ने उनकी तरफ दृष्टि-क्षेप करके देखा तो प्रतीत हुआ कि वे अपलक निर्निमेष दृष्टि से मेरी तरफ देख रही हैं—और मानो वे व्याख्यान-सुधा से तृप्त हो रही हो। आचार्य ने मत्र-शक्ति से उनको स्तभित कर दी। उपदेश के पश्चात् समस्त उपासक वर्ग अपने स्थान को चला गया। वे योगिनियाँ भी उठने लगी—किन्तु देखा कि आसन चिपक रहा है, पुन बैठ गई। यह देखकर आचार्य ने कहा—उपासिकाओ! साधुओ के गोचरी के लिये जाने का समय हो गया है

अत आप लोग वदन करके स्वस्थान जायें। योगिनियाँ बोली—भगवन्, अपराध क्षमा हो, हम तो आपको छलने के लिये यहाँ आईं थी किन्तु हम स्वय आप से छली गईं। कृपाकर हमें मुक्त करिये।' आचार्य ने कहा—यदि आप लोग मुझे 'वचन' दें तो मैं आप लोगो को मुक्त कर सकता हूँ।' योगिनियाँ बोली—आप क्या वचन चाहते है ? हम देने को वाधित है। आचार्य ने कहा—'हमारे गच्छ के आचार्य योगिनीपीठ (उज्जैन, दिल्ली, अजमेर और भरुच) की तरफ विहार करे तो उन्हे किसी भी प्रकार का उपद्रव-परीपह नही होना चाहिये।' योगिनियो ने स्वीकृति दी। आचार्य ने उन्हे मुक्त किया वे अपने स्वस्थान को चली गईं।[1]

सघ का उपद्रव निवारण

एक नगर के उपासक वर्ग दो देवियो के रोगादि उपद्रवो से अत्यन्त पीडित थे। नागरिको के कई उपचार किये गए किन्तु सफल न हो सके। अंत में उन्होने दो प्रतिनिधियो को आचार्य के समीप भेजा। वे दोनो उपासक आचार्य के समीप आये। उस समय आचार्य ध्यानावस्था में थे और उनके समीप दो सुन्दर युवतियाँ खडी थी। युवतियो को देखकर दोनो उपासक विचार करने लगे कि 'गुरुजी के पास तो युवतियो का परिग्रह (सान्निध्य) है। यहाँ निवेदन करने से हमे क्या सफलता मिलेगी' वापस लौटने लगे, किन्तु स्तभित हो गये। इसी समय आचार्य ने ध्यान पूर्ण किया और उसी समय दोनों युवतियो ने प्रश्न किया—'भगवन्! आपने हमें किसलिये बुलाया है।' आचार्य ने कहा—'तुम दोनो संघ में उपद्रव करती हो, इसलिये तुम्हें शिक्षा देने के लिये यहाँ बुलाया है। देवियो ने कहा—'भगवन् अब आज से उपद्रव नही करेंगी—हमें क्षमा कीजिये। आचार्य के क्षमा करने पर वे दोनो देवियाँ चली गई और दोनों उपासक भी मुक्त हो गये। दोनो उपासको ने नमन कर देवियो का कारण पूछा। गुरुदेव ने कहा—

---

१ इस प्रकार का प्रसग दादा जिनदत्तसूरि के जीवन में भी आता है, तुलना करें।

'सुना था कि आपके नगर में ये दोनो देवियां उपद्रव कर रही है, इसीलिये इनको बुलाया था। अव आगे से सघ में किसी प्रकार का उपद्रव नही होगा। यह सुनकर दोनो प्रतिनिधि अत्यन्त प्रसन्न हुये और अपने नगर मे आकर यह वार्ता सुनाई।

आचार्य सोमप्रभ से मिलाप और चूहो को शिक्षा

एक समय सुलतान के साथ प्रवास करते हुये आचार्य जिनप्रभ जघराल नगर (पाटण के निकट) पहुँचे। वहाँ उस समय तपागच्छ के आचार्य सोमप्रभसूरि विराजमान थे। उनसे मिलने को आ० जिनप्रभ उनके उपाश्रय (स्थान पर) गये। आ० जिनप्रभ को आये देखकर आचार्य सोमप्रभ ने अभ्युत्थानादि द्वारा उनका वहुत स्वागत-सत्कार करते हुये कहा—'आचार्य देव! आप आराध्य है। आपके प्रभाव से आज सर्वत्र जैन-शासन का जय-जयकार हो रहा है। आपकी शासन-सेवा अतुलनीय है।' आचार्य जिनप्रभ ने प्रत्युत्तर में कहा—आचार्यवर! आप क्या कह रहे है? सम्राट् के साथ रहने के कारण हम सयम क्रिया यथावत् पालन नहीं कर पाते हैं। आपकी शास्त्रीय साधु-दिनचर्या श्लाघनीय और अनुकरणीय है।' इस प्रकार दोनो आचार्य प्रेमालाप मग्न थे।

उसी समय एक मुनि ने प्रतिलेखन करते हुये अपनी सिक्किका (झोली) को चूहो द्वारा काटी हुई देखकर–सोमप्रभसूरि (अपने गुरु) को दिखाई। आ० जिनप्रभ पास मे ही वैठे हुये थे, आकर्षण से समस्त चूहो को वहाँ वुलाया—वे आकर भयभीत होकर सामने खडे हो गये। आचार्य ने उनसे कहा—'तुम में से जिस किसी ने वस्त्र काटने का अपराध किया हो, वह यहाँ रहे और सव चले जायँ। अपराधी चूहे को छोडकर सव चले गये। उसे भयाक्रान्त देखकर आचार्य ने उस चूहे से कहा–भय न खाओ, आगे से ऐसा अपराव न करना, तुम उपाश्रय छोडकर चले जाओ, वह उपाश्रय से वाहर चला गया। यह आश्चर्य देखकर सव साधु वहुत

चकित हुये ।[1]

खडेलपुर के निवासियो को जैन वनाना

जागल देश (राजस्थान) के खडेलवाल गोत्रीय शिवभक्त गुड-खाँड का व्यापार करते थे। पश्चात् गुड के स्थान पर मदिरा का व्यापार करने लगे। उन मदिरा व्यवसायी शिवभक्तो को प्रतिवोध देकर आचार्य ने उन्हे स० १३४४ (१७४) में जैन वनाया

"खडेलपुरे नयरे लेरस्सए चउत्ताले।
जगलया सिवभत्ता ठविया जिणसासणे धम्मे ॥"

---

१ चूहो की शिक्षा के सवध में पंचशतीकार ने पूर्ववृत्त इस प्रकार दिया है—किसी वेलाकुल में धर्ममूर्ति धनसेठ रहता था। एक दिन व्यापार के लिये चौराहे पर गया। उस समय मजीठ आदि वस्तुओ से भरे हुए कई जहाज आये हुए थे। वहाँ के व्यापारी सात-आठ जहाजो का माल खरीद कर चले गये, अवशिष्ट तीन जहाजो का माल किसी ने भी नही खरीदा। धनसेठ उन्ही ३ जहाजो का माल खरीद कर ले गया। रात्रि को स्वप्नावस्था में किसी देव ने सूचित किया—'इन जहाजो का माल ध्यान से वेचना, तुम्हारे यहाँ कल्पवृक्ष आया है।' प्रात काल उठते ही उन जहाजो के माल को देखने पर पाच रत्न प्राप्त हुये। धनश्रेष्ठि उसी समय जहाज के व्यापारी के पास जाकर पूछा कि उक्त जहाजो का माल आप ने किससे खरीदा था ? व्यापारी ने कहा—चोरो के पास से। व्यापारी के पास से लौटकर सेठ ने विचार किया कि इस धन को धर्म में ही व्यय करना चाहिए। ऐसा विचार कर उसने नया जिनमदिर का निर्माण करवाया। इस प्रकार पापानुवन्धी को धर्मानुवन्धी किया। एक समय आचार्य जिनप्रभ को वडे आग्रह से वुलाकर अपने स्थान पर रखा और आहारादि दान से सत्कृत किया। प्रतिलेखना के समय एक साधु ने आचार्य से शिकायत की कि सिक्किका को चूहो ने काट दी इत्यादि।

कवला तथा विवाद निवारण

एक समय मेदपाट (मेवाड) देशीय पाल्हाक नाम का वैद्य सुलतान की चिकित्सा करने के लिये आया हुआ था। एक दिन पाल्हाक कोमल्लसूरि शाखा (कंवला-उपकेशगच्छ) के उपाश्रय में गया। कोमलशाखीय यतियो ने तपागच्छ के आचार्यों की निंदा की। पाल्हाक वैद्य सहन न कर सका। कलह का रूप वार्ता तक न रहकर दण्डा-दण्डी का हो गया, किसी का हाथ टूटा तो किसी का मुख। सब कलह करते हुये सुलतान के पास आये। सुलतान ने सारा वृत्तान्त सुनकर, आचार्य जिनप्रभ के सकेतानुसार आदेश दिया कि तुम सब न्यायी भी हो और अन्यायी भी हो, दण्ड किसे दिया जाय! जाओ, आगे मे कभी कलह मत करना।

शिष्य-परम्परा

आचार्य जिनप्रभसूरि का शिष्य-परिवार विशाल था। कितना था यह तो ज्ञात नही किंतु देवगिरि जाते हुये जिनदेवसूरि के पास १४ साधुओ को छोडकर गये थे, साईवाण वाग मे ५ दीक्षाए प्रदान की थी, आदि उल्लेखो से विशाल-समुदाय होना प्रतीत होता है। वैसे आपकी परम्परा में प्रतिभाशाली और धुरन्धर आचार्य एव अनेको साधु हुये है और ऐतिहासिक प्रमाणो से १८वी शती तक आपकी परम्परा चलती रही है, जिसका सामान्य परिचय इस प्रकार है।

आचार्य जिनदेवसूरि

आपके पिता का नाम कुलधर[1] और माता का नाम वीरीणि था। जिनप्रभसूरि के आप प्रमुख शिष्यो में से थे। जिनप्रभसूरि ने स्वहस्त से ही आचार्यपद प्रदान किया था। आचार्य जिनप्रभसूरि जिस समय सम्राट् मुहम्मद तुगलक से मिले थे उस समय आप भी साथ थे और प्रवेश महोत्सव के समय हाथी पर आप भी वैठे थे। जिस समय आचार्य जिनप्रभ ने

---

१ जिनदेवसूरि गीत (ऐति जै.का सं)

देवगिरि की ओर प्रस्थान किया था उस समय आचार्य जिनप्रभ ने १४ साधुओ के साथ आपको सम्राट् के पास दिल्ली में ही रखा था। एक प्रसग का आचार्य जिनप्रभ स्वय स्वरचित कन्यानयनीय महावीर-कल्प में किया है[1]

"इधर दिल्ली में विराजित जिनदेवसूरि विजयकटक (शाही छावणी) में सम्राट् से मिले। सम्राट् ने वहुत सम्मान के साथ एक सराय (मुहल्ला) जैन सघ के निवास के लिये दी। इस सराय का नाम 'सुलतान सराय' रखा गया। वहाँ सम्राट ने पौपधशाला और जैन-मन्दिर वनवा दिया एव ४०० श्रावको को सकुटुम्ब निवास करने का आदेश दिया। पूर्वोक्त कन्यानयनीय महावीर प्रतिमा को इस सराय में सम्राट के वनवाये हुये मन्दिर में विराजमान किया गया। श्वेताम्वर-दिगम्वर एवं अन्य धर्मावलम्वी जन भी भक्ति-भाव से इस प्रतिमा की पूजा करने लगे।"

देवगिरि से दिल्ली आते हुये सूरिजी के साथियो को अल्लावपुर मे मल्लिको ने परेशान किया था, उस समय यह वृत्तान्त जानकर जिनदेवसूरि ने सम्राट से मिल कर इस उपद्रव का निराकरण करवाया था। इस से स्पष्ट है कि सम्राट के हृदय में इनके प्रति वहुत गौरवपूर्ण सम्मान था।[2]

आपके रचित कालिकाचार्य कथा और शिलोञ्छनाममाला[3] (स १४३३) प्राप्त है।

जिनमेरुसूरि—जिनदेवसूरि के पट्टधर थे। आपके गुरुभाई श्री जिनचन्द्रसूरि थे।

जिनहितसूरि—जिनमेरुसूरि के पट्टधर थे। आपके रचित वीरस्तव

---

१. विविधतीर्थकल्प, पृ ४६।

२. वही, पृ ९५

३. शिलोञ्छनाममाला श्रीवल्लभोपाध्याय रचित टीका के साथ मेरे द्वारा सम्पादित होकर शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली है।

गा० ९ और तीर्थमालास्तव (चउवीसमपि जिणिंदे) गा० १२ एव कर्म प्रतिष्ठित प्रतिमायें प्राप्त हैं।

जिनसर्वसूरि—जिनहितसूरि के पट्टधर थे।

जिनचन्द्रसूरि—जिनसर्वसूरि के पट्टधर थे। आपकी प्रतिष्ठित कई प्रतिमायें (स १४६९-१५०६) प्राप्त हैं।

जिनसमुद्रसूरि—जिनचन्द्रसूरि के पट्टधर थे। आपकी रचित रघुवश एवं कुमारसभव टीका प्राप्त हैं।

वाचनार्थ चारित्रवर्द्धन

पंच महाकाव्यो के प्रसिद्ध व्याख्याकार वाचनाचार्य चारित्रवर्द्धन भारतीय वाड्मय के एक समर्थ प्रतिभाशाली एव विश्रुत विद्वान् थे। व्याकरण, निरुक्त तथा अलकार विपयक आपका ज्ञान इतना व्यापक था कि अन्य परवर्ती टीकाकारो को भी आपका 'मत' स्वीकार करना पडा। आपकी टीकाओ को देखने से न केवल हमें उनके व्याकरण तथा लक्षणशास्त्र के अगाध ज्ञान का पता चलता है अपितु उनके न्याय, दर्शन, जैन सिद्धान्त और साहित्य का भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। अत: यह कहा जा सकता है कि आप सर्वदेशीय विद्वान् थे; यही कारण है कि आप स्वयं अपनी टीकाओ की प्रशस्ति में अपनी योग्यता का गर्व भरे शब्दो में स्वय का 'नरवेप सरस्वती' उपनाम स्थापित करते हुये लिखते है :—

तच्छिष्य-प्रतिपक्षदुर्द्धरमहावादीभपञ्चाननो,
नानानाटकहाटकाभरगिरि साहित्यरत्नाकर ।
न्यायाम्भोजविकाशवासरमणिर्बौद्धेति जाग्रत्प्रभो
वेदान्तोपनिषन्निषन्नधिषणोऽलङ्कारचूड़ामणि ॥
श्रीवीरशासनसरोरुहवासरेश ,
सद्धर्मकर्मकुमुदाकर पूर्णिमेन्दु ।
वाचस्पतिप्रतिभधीर्नरवेपवाणि—
चारित्रवर्धनमुनिर्विजयी जगत्याम् ॥

× × ×

चारित्रवर्धन गणि श्री जिनप्रभसूरि की परम्परा के चौथे आचार्य श्री जिनहितसूरि के प्रशिष्य तथा उपाध्याय कल्याणराज के शिष्य थे

वंशे श्रीजिनवल्लभस्य सुगुरो सिद्धान्तशास्त्रार्थवित्,
दर्पिष्ठ प्रतिवादिकुञ्जरघटाकण्ठीरव -सूरिराट् ।
नाना नव्यसुभव्यकाव्यरचनाकाव्यो विभाख्याऽमल-
प्रज्ञो विज्ञनतो जिनेश्वर इति प्रौढप्रतापोऽभवत् ॥१॥

शिष्यस्तदीयोऽजनि जन्तुजात-हितार्थसम्पादनकल्पवृक्ष ।
विपक्षवादिद्विपञ्चवक्त्र , सूरीश्वर श्रीजिनसिंहसूरि ॥२॥

तत्पट्टपूर्वाद्रिसहस्ररश्मि-जिन प्रभ सूरिपुरन्दरोऽभूत् ।
वाग्देवताया रसना तदीयामास्थानपट्ट जगदु-र्बुधेन्द्रा ॥३॥

तदनु जिनदेवसूरि , स्वशेमुषी तर्जितत्रिदशसूरि ।
निरुपमसमरसभूरि , सूरिवर -समजनिष्ट जयी ॥४॥

तदनु जिनमेरुसूरि-दूरीकृतपातको निरातङ्क ।
समजनि रजनीवल्लभवदनो मदनोरगेतार्क्ष: ॥५॥

गुणगणमणिसिन्धुर्भव्यलोकैकबन्धु—
विधुरितकुमतौघ प्रीणिताशेषसङ्घ ।
जिनमतकृतरक्षस्तर्जितारातिपक्षोऽ—
जनि जिनहितसूरिस्त्यक्तनिश्शेषभूरि ॥६॥

जिनसर्वसूरिरभवत्तत्पट्टेऽघट्टितप्रबलमोह ।
सज्जनपङ्कजराजीविकाशभास्वान्महौजस्क ॥७॥

तस्य जिनचन्द्रसूरि , शिष्यो दक्ष: कलावता पक्ष ।
कक्षीकृताखिलजनोपकारसार - सदाचार ॥८॥

सूरिर्जिनसमुद्राख्यस्तस्य जज्ञे महामति ।
अन्तिषत्सुकृतीसाधुवृन्दाम्भोजनभोमणि ॥९॥

जिनतिलकसूरिरस्माद् विजयी जीयादशेषगुणकलित ।
श्रीवीरनाथशासनसरसीरुहभास्कर श्रीमान् ॥१०॥
तत्पट्टपूर्वाचलमौलिचन्द्र , विपक्षवादिद्विपपञ्चवक्त्र ।
जीयात् सदाऽसौ जिनराजसौरि , सत्पक्षयुक्तो जिनधर्मरक्ष ।११।[1]
जिनहितसूरेः[2] शिष्यो, वभूव भूमीशवन्दिताङ्घ्रियुग ।
कल्याणराजनामोपाध्यायस्तीर्णशास्त्राब्धि ॥१२॥
तच्छिष्यो ' ' [रघुवश टीका प्र०]

गणि चारित्रवर्धन की पूर्वावस्था का वर्णन तथा दीक्षा-शिक्षा इत्यादि वर्णन पूर्णत अनुपलब्ध है। केवल टीकाओ की प्रशस्तियाँ देखने से यह ज्ञात होता है कि आपका साहित्य-सर्जन काल स० १४९२ से १५२० तक का है। आचार्य जिनहितसूरि के प्रशिष्य चारित्रवर्धन थे और आचार्य-परम्परा के अनुसार प्रशस्ति निर्दिष्ट जिनराजसूरि ५वें पट्ट पर आते हैं। इस दृष्टि से चारित्रवर्धन का दीक्षा-काल अनुमानत १४७० स्वीकार किया जा सकता है। चाहे कल्याणराज अतिवृद्ध हो या चारित्र-वर्धन, किन्तु यह निस्सदेह है कि इनकी दीक्षा-पर्याय बहुत बडी रही है। कुमारसभव-टीका की रचना स० १४९२ मे हुई है। इस टीका का आद्योपान्त भाग अवलोकन करने से यह निश्चित ज्ञात होता है कि यह कृति प्रारभिक अवस्था की नही, अपितु प्रौढावस्था की है। तथा इसमें उल्लिखित स्वय के लिये वाचनाचार्य पद को ध्यान में रखने से ऐसा अनुमान होता है कि लगभग २०–२२ वर्ष का समय उनकी दीक्षा को हो चुका होगा। इस दृष्टि से दीक्षा-समय १४७० के लगभग ही आता है। स० १४९२ की रचना में जिनतिलकसूरि का उल्लेख होने से संभवत· वाचना-चार्यपद आपको इन्होने ही प्रदान किया होगा।

---

१ यह पद्य नैषध, सिन्दूरप्रकर, कुमारसभव की प्रशस्तियो मे नही है। केवल रघुवंश वृत्ति की प्रशस्ति में है।

२ नैषधीय प्रशस्ति मे 'जिनहितसूरे' के स्थान पर 'जिनसिंहसूरे' पाठ है जो गुरु परम्परा तथा छन्दो भंगदृष्टि से अयोग्य है।

इस प्रशस्ति के अनुसार आपका वंशक्रम इस प्रकार है

- जिनवल्लभसूरि
  - जिनदत्तसूरि
    - जिनचन्द्रसूरि
      - जिनपतिसूरि
        - जिनेश्वरसूरि (द्वितीय)
          - जिनप्रबोधसूरि [बृहत्शाखा]
          - जिनसिंहसूरि [लघुखरतरशाखा]
            - जिनप्रभसूरि
              - जिनदेवसूरि
                - जिनमेरुसूरि
                  - जिनहितसूरि
                    - जिनसर्वसूरि
                      - जिनचन्द्रसूरि
                        - जिनसमुद्रसूरि (कुमारसंभववृत्ति क०)
                          - जिनतिलकसूरि
                            - जिनराजसूरि
                    - उ० कल्याणराज
                      - चारित्रवर्धन
                - जिनचन्द्रसूरि
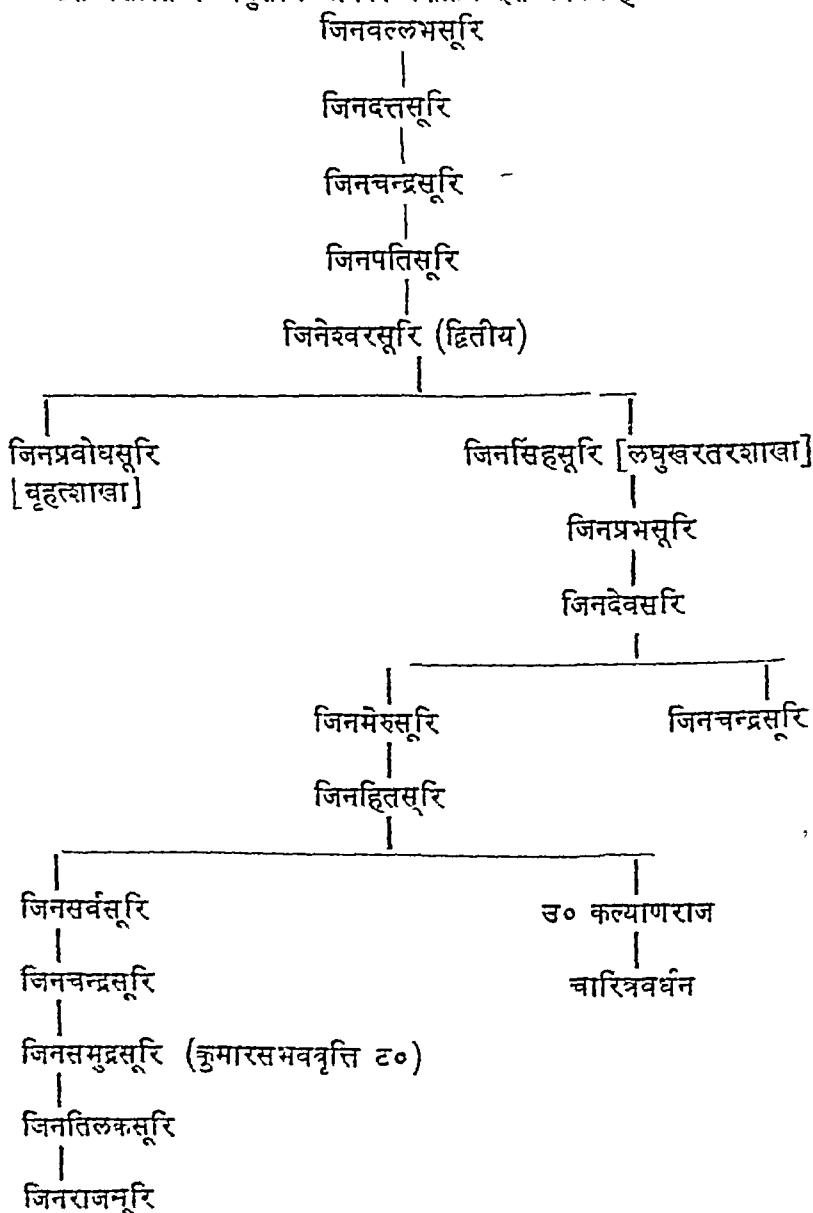
कवि की कोई भी मौलिक कृति प्राप्त नही है। व्याख्या-ग्रन्थ अवश्य प्राप्त हैं जो इनकी कीर्त्ति को अक्षुण्ण रखने में अवश्य समर्थ हैं। तालिका इस प्रकार है -

१. रघुवश-शिष्यहितैषिणी वृत्ति[1] अरडक्कमल्ल अभ्यर्थनया,
२. कुमारसभव-शिशुहितैषिणी वृत्ति[2] स० १४९२,* ,, ,,
३ शिशुपालवध-वृत्ति सहस्रमल्ल ,,
४. नैषधवृत्ति[3] स० १५११†
५ मेघदूत वृत्ति[4]
६ राघवपाण्डवीयवृत्ति

---

१ मेरे संग्रह में।

२ गुजराती मुद्रणालय बंबई द्वारा स० १९५४ में प्रकाशित।

३ नाहटाजी की सूचना के अनुसार गुजराती सभा कलकत्तादि में प्रतियाँ प्राप्त है।

* वर्षे विक्रमभूपतेर्विरचिता दृग्नन्दमन्व्[2 9 14]ङ्किते,
माघे मासि सिताष्टमी सुरगुरावेषोऽञ्जलिर्वो बुधा ।
[कु० सं० वृ० प्र०]

† तेनामुख्यविपक्षवादिनिकराहङ्कारविश्वम्भरा-
भृल्लेखप्रमुणा [11]शिवेषु [1]शशभृत् संख्या कृते वत्सरे।
टीका राघवलक्ष्मावतियौ शक्रेण चक्रे महा-
काव्यस्यातिगरीयसो मतिमता श्रीनैषधस्यार्थदा ॥१४॥
[नैषधप्र०]

४ मेरे संग्रह में, व मुद्रित।

७ सिन्दूरप्रकरवृत्ति स० १५०५† उ० भीषण अभ्यर्थनया

८ भावारिवारणस्तोत्र-वृत्ति[1]

९ कल्याणमन्दिरस्तोत्र-वृत्ति[2]

रघुवंश और नैषधटीका में तो कवि ने अपनी प्रतिभा एवं पाण्डित्य का पूर्ण उपयोग किया है। नैषध की टीका मे तो कवि ने यह प्रयत्न किया है कि अन्य टीकाओ की भी यह 'जननी'—पथप्रदर्शिका बन सके

> यद्यपि बह्व्यस्टीका सन्ति मनोज्ञास्तथापि कुत्रापि।
> एषा विशेषजननी भविष्यतीत्यत्र मे यत्न ॥

यही कारण है कि गुजराती मुद्रणालय बम्बई से प्रकाशित कुमारसभव-वृत्ति की प्रस्तावना में सम्पादक आपके पाण्डित्य की प्रशसा में इस प्रकार लिखता है

> "चारित्रवर्धनकृता शिशुहितैषिणी टीका , साच श्लोकाभिप्राय स्पष्टतया विशदीकरोति पदार्थांश्चाभिर्वक्ति, अतो शिशुहितैषिणी व्युत्पित्सूनामतीवोपकारिणीति सम्प्रधार्य "

सिन्दूर प्रकर जैसे १०० पद्यो के काव्य पर ४८०० श्लोक[3] प्रमाणोपेत टीका की रचना कर, गणिजी ने अपनी असाधारण योग्यता का परिचय दिया है। इस टीका में व्याख्याकार ने सुरुचिपूर्ण एव मौलिक दृष्टान्तो की तो मानो माला ही खडी कर दी है।

---

† श्रीमद्विक्रमभूपतेरिपुवियद्बाणेन्दुसंख्यामिते
वर्षे राधसिताष्टमीगुरुदिने टीकामिमा निर्म्ममे।
सिन्दूरप्रकरस्य चारुकरुणो निर्मापयामासिवान्,
दृष्टान्तै कलितामनार्थविपणश्चारित्रनामा मुनि ॥११॥
वत्सरे लिखिता तस्मिन् धर्मदासेन धीमता ॥१४॥
[सिन्दूर० प्र०]

१ प्र० पुण्यविजयजी सग्रह।

२ हीरालाल र० कापडिया द्वारा उल्लेख।

३ अनुष्टुभा सहस्राणि, चत्वार्यष्टौ शतानि च।
ग्रन्थसख्या मिता यत्र, विवृत्तौ वर्णसख्यया ॥१३॥

आपकी टीकाओ की प्रशस्तियो को देखने से यह मालूम होता है कि न केवल आप ही नरवेपसरस्वती थे अपितु आपका भक्त श्रावकवृन्द भी नरवेपसरस्वती तो नही किन्तु सरस्वत्युपासक अवश्य था, और इन्ही भक्तो की अभ्यर्थना से ही इन्होने महाकाव्यो पर अपनी लेखनी चलाई। ऊपर सूचित न० १,३,७ के ग्रन्थो में व्यास्याकार ने जो उपासको का परिचय दिया है वह ऐतिह्य दृष्टि से वहुत ही महत्त्व रखता है। व्याख्याकार प्रत्येक का परिचय प्रशस्तियो मे इस प्रकार देता है

"इत्यखण्डपाण्डित्यमण्डितपाण्डुभूमण्डलाखण्डलस्थापनाचार्यकर्पूरचीरधाराप्रवाहप्रभृतिविरदावलीचलितललितोत्कटवदान्यसुभटदेशलहरवशसर-सीरुहविकाशनमार्त्तण्डविम्बप्रचण्डदोर्दण्डविकटचेचटगोत्रगोत्राभिदुन्नतसाधुश्री देशलसन्तानीय-साधु-श्रीभैरवात्मजसाधुश्रीसहस्रमल्लसमभ्यर्थिता "

[शिशुपालवध प्र०]

× × ×

"श्रीमालवंशहंसो, डौडागोत्रे पवित्रगुणपात्रम्।
समजनि जगलूश्रेष्ठी, विशिष्टकर्मा वरिष्ठयशा ॥१४॥
माल्लू श्रेष्ठी तस्य, प्रशस्यमूर्त्तिर्बभूव तनुजन्मा।
पुत्रोऽमुष्य स भूधर, इत्याख्यो दक्षजनमान्य ॥१५॥
जगसीधर इति तस्माज्जात स्मरविग्रह कलानिलय।
तस्यापि लखमसिंहस्तनयो विनयी नयाभिज्ञः ॥१६॥
तेजपालस्ततो जज्ञे, सुतो मुख्याद्यणोपि च।
पीण्पडो वाहडा न्यूनधम शर्मनिधि सुधी ॥१७॥
अमुख्यमुख्यो दाक्षिण्यभाजनं तनुजो जयी।
देवसिंह इति स्वान्त वासिताऽर्हत्पदाम्बुज ॥१८॥
साधु सालिगनामाऽभूत्तत्पुत्र. स चरित्रभू।
एतस्याङ्गसमुद्भूताश्चत्वारोऽपि जयन्त्यमी ॥१९॥

आद्ध. सार्धुविया भूमिर्भैरवो रिपुभैरव ।
तत सेहुण्डनामा च, धर्मधामा मनोरम. ॥२०॥
अरउकमल्लस्तुर्यो, वर्यो वुर्यः सताममात्सर्य ।
सत्कार्यो धर्मवनो, मनोहर सकलललनानाम् ॥२१॥
यद्यप्येप कनिष्ठस्तदपि गुणैर्ज्येष्ठ एव विख्यात ।
कान्तगुणोऽनणुवुद्धि शुद्धाचारो विचारज्ञ ॥२२॥
तत्त्वाद्गत्वरमन्त्राखिलमुर्व्या वस्तुजातमवधार्य ।
यो धर्म एव वुद्धि विदधाति नितान्तगुरुधिपण ॥२३॥
एतेनाभ्यर्थितोऽप्यर्थं •

[कुमारसभववृत्ति प्र०]

× × ×

इसी श्रीमालवशीय डीडागोत्रीय अरउक्कमल्ल की अभ्यर्थना से रघुवंश काव्य[1] की व्याख्या का भी प्रणयन किया है।

× × ×

श्रीमालवशसरसीरुहतिग्मभानु, सड्ढोरगोत्र कुमुदाकरशीतभानु ।
धारू इति प्रथितचारुयशोविलास, श्रीमानभूच्छुभमतिर्यतिपादसेवी ॥१॥
तस्याङ्गजोऽजनि जनव्रजनीरजाको, वीजाभिधो विधुत विपक्षलक्ष. ।
कक्षीकृताखिलमहोपकृतिर्कृतज्ञ, सर्वज्ञशासनसरोजमरालमौलि ॥२॥
तत्पुत्र कामदेवोऽभूत्, कामदेव-समद्युति ।
अर्थिना कामद काम, सामजातगति (?) कृती ॥३॥
तस्याङ्गभू समजनिष्ट विशिष्टकीर्त्तिर्श्रीदेवसिंह इति सिंहसमानशौर्य ।
वर्य सता गुणवता प्रथम. पृथुश्रीस्तीर्थङ्करक्रमसरोरुहचञ्चरीक ॥४॥
पुत्रस्तदीयोऽजनि वस्तुपाल., शुभाशयोऽर्द्धेन्दुसनाभिभाल ।
जिनेन्द्रपादार्चननाकपाल', समस्तवैरिव्रजनाशकाल ॥५॥

---

1 इति श्रीमालान्वयसाधुश्रीसालिगतनुजश्रीअरउक्कमल्लसमभ्यर्थित • • • • ×

अभूतामस्य पुत्रौ द्वौ, सच्चरित्रपवित्रितौ ।
ज्येष्ठ सहजपालाख्यो, द्वितीयो भीषणः प्रभु ॥६॥
निर्दूपणो योनिजवंशभूपण, गुणानुरागेण वशीकृताशय ।
अनन्यसामान्यवराण्यता दवद्दधाति नि केवलमेव धर्मताम् ॥७॥

य. कारुण्यपयोनिधिर्गुणवता मुख्य सतामग्रणी—
र्मधिट्टै (?) रिकुलेभकेशरिगिशुर्विश्वोपकार-क्षम ।
धर्मज्ञ सुविचक्षण कविकुलै सस्तूयमानो वशी,
जीयाज्जैनमताम्वुजैकमधुप श्रीभीषण शुद्धधी ॥८॥

देवगुरुचरणनिरतो विरतो पापात् प्रमादसत्यक्त ।
सोऽय भीषणनामा कामा तनुर्भाति धर्ममति ॥ ९ ॥
सोहमभ्यर्थितोऽत्यर्थं टीका ठक्कुरभीषणै ।
सिन्दूरप्रकरस्यास्याकार्षं चारित्रवर्धन ॥ १० ॥

[सिन्दूरप्र० वृ०]

× × ×

उपासको के लिये रघुवंश, कुमारसभव तथा शिशुपालवध इत्यादि महाकाव्यो पर प्रौढ एव परिष्कृत शैली में व्याख्या करना, उपासको की योग्यता और वुद्धिमत्ता का प्रदर्शन करता है।

देशलहर सन्तानीय चेचटगोत्रीय भैरवसुत सहस्रमल्ल, श्रीमालवंशीय डौडागोत्रीय सालिगसुत अरउक्कमल तथा श्रीमालवशीय ढोरगोत्रीय ठक्कुर भीपण प्राय विहार और उत्तर प्रदेश के ही निवासी थे और यह निश्चित है कि लघुखरतरशाखा का फैलाव भी इसी प्रदेश मे था। आगे भी हम देखते हैं कि १७ वी शती के अन्तिम चरण में जव इस लघु शाखा-परम्परा का ह्रास हो जाता है तो वृहत्शाखीय जिनराज-सूरि के शिष्य जिनरगसूरि को इस शाखा के अनुयायी स्वीकार लेते है जो आज भी इसी रूप में अवस्थित है। अत चारित्रवर्धन का विहार-भ्रमण प्रदेश भी यही प्रदेश रहा है। केवल २,४,७ न० की कृतियो में सवत् का उल्लेख प्राप्त है, अन्यो में नही। नैपधटीका की रचना सं १५११ में

हुई है। यदि इस रचना को अन्तिम मान लें तो अनुमानत १५२० तक आप विद्यमान रहे होगे।

प्रस्तुत भावारिवारणस्तोन-टीका की भाषा-शैली तथा वैशिष्ट्य देखते हुए यह निश्चितरूप मे कह सकते है कि यह प्रारम्भिक व्याख्या कृति है। इसमें स्वनाम के साथ वाचनाचार्यपद का उल्लेख होने से स० १४९० के पूर्व ही इसकी रचना हुई होगी। यह प्रारभिक कृति होने पर भी व्युत्पत्ति की दृष्टि से उत्तम और पठनीय है।

न केवल गणि चारित्रवर्धन ही देवी पद्मावती के उपासक थे अपितु 'जैनप्रभीय' सारी परम्परा ही पद्मावती को इष्ट मानकर उपासना करती रही है। यही कारण है कि नैषधीय व्याख्या के प्रारभ में ही चारित्रवर्धन लिखते हैं :

पद्मावती भगवती जगती नमस्या, भूयाद्भयार्त्तिशमिनी जगतो वयस्या।
नागाधिराजरमणी रमणीयहास्या, देवैर्नुता मम विकाशिसरोरुहास्या ॥२॥

जिनतिलकसूरि—जिनसमुद्रसूरि के पट्टधर थे। आपकी प्रतिष्ठित प्रतिमाओ के लेख स० १५०८ से १५२८ तक के उपलब्ध हैं।

जिनराजसूरि—जिनतिलकसूरि के आप पट्टधर थे। आपकी प्रतिष्ठित कई प्रतिमायें प्राप्त हैं।

जिनचन्द्रसूरि—जिनराजसूरि के आप पट्टधर थे। आपकी प्रतिष्ठित कई प्रतिमाएँ प्राप्त है।

जिनभद्रसूरि—आपकी भी प्रतिष्ठित कई प्रतिमायें प्राप्त हैं।

जिनमेरुसूरि—

जिनभानुसूरि—आप जिनभद्रसूरि के शिष्य थे।

विद्वद् परपरा

अभयचन्द्र—जिनहितसूरि के पौत्र और उपाध्याय आणदराज के शिष्य थे। आपकी रचित गुणदत्तकथा और 'रत्नकरण्डक' (सुभाषित) प्राप्त है।

विद्याकीर्ति—जिनतिलकसूरि के शिष्य थे। आपके रचित जीवप्रबोध प्रकरण (भाषा) (स० १५०५ हिसार) प्राप्त है।

राजहस—जिनतिलकसूरि के शिष्य थे। आपकी निम्नोक्त रचनाएँ प्राप्त है—वाग्भट्टालकारटीका (स० १४), दसवैकालिकबालाव-बोध, प्रवचनसार, जिनवचनरत्नकोष, एव वर्धमानसूरि आदि के प्राकृतप्रबन्ध।

महीचन्द्र—जिनराजसूरि के पौत्र उपाध्याय कमलचन्द्र गणि के शिष्य थे। आपकी रचित उत्तमकुमारचौपाई (स० १५९१ वै० शु० ३) प्राप्त है।

लक्ष्मीलाभ—आपके प्रणीत भुवनभानुकेवलिचरित्र प्राप्त है।

चारित्रवर्धन—देखें पृष्ठ ७९ से ८८ तक।

भानुतिलक—वा० भारतीचन्द्र के शिष्य थे। आपकी प्रणीत गुण-स्थान प्रकरण टीका प्राप्त है।

समयध्वज—आप सागरतिलक के शिष्य थे। आपकी रचित सीतामती चौ०(सं० १६११ मा० व० ३) और पार्श्वनाथ फागु प्राप्त हैं।

(१) वि० स० १५८५ वैशाख शुक्ला ५ गुरुवार को जिनप्रभसूरि परम्परीय मुनिराज के उपदेश से श्रीमालवशी श्राविका रूपाई ने सचित्र कल्पसूत्र एव कालिकाचार्य कथा लिखवाई। जिनचन्द्रसूरि के समय में उपाध्याय सागरतिलक से शिष्य समयध्वजोपाध्याय को श्राविका पूरी ने सर्मपित किया।[1]

(२) सं० १६३५ कार्तिक कृष्णा ७ गुरुवार को आगरा में मुमुक्षु देव-तिल्क ने जिनप्रभसूरि रचित पर्युपणकल्पपञ्जिका की प्रति लिखी थी।

(३) १६४१ को सिघानकपुर में जिनहितसूरि के शिष्य आदिदेव मुनि ने जिनभानुसूरि के समय में समयसारनाटक-वृत्ति की प्रति लिखी थी।[2]

(४) १७२६ फाल्गुन शुक्ला १० को उपाध्याय लब्धिरग के शिष्य पं० नारायणदास की प्रेरणा से कवि हेमराज ने नयचक्र वचनिका बनाई थी।[3]

१-२ जयचन्द्रजी भडार बीकानेर। ३ दानसागर भडार बीकानेर।

साहित्य-सर्जना

आचार्य जिनप्रभसूरि न केवल मुहम्मद तुगलक के प्रतिबोधक या तीर्थों की रक्षा करके शासन-धर्मप्रभावक ही थे, अपितु सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी भी थे। साथ ही न केवल आप जैनागमो के ही विद्वान् थे अपितु न्याय, दर्शन, व्याकरण, काव्य, अलकार, छन्दशास्त्र के प्रौढ विद्वान् भी थे। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो अष्टभाषात्मक ज्ञान के आप भडार थे। आपकी लेखिनी प्रत्येक विषय पर समान रूप से चली है। आपने अनेक विषयो पर अनेको रचनाएँ की है किन्तु काल-कवल से बचने के पश्चात् जो वर्तमान में प्राप्त हैं, उनका विषयानुसार वर्गीकरण इस प्रकार है

जैनागम—कल्पसूत्रसन्देहविषौषधिनाम्नी टीका[1]

जैन-साहित्य—साधुप्रतिक्रमणअर्थनिर्णयकौमुदी टीका[2], षडावश्यक

---

१ र० स० १३६४ अयोध्या, ग्र० २२६९ प्र०।

२ आ०—नत्वा श्रीवीरजिन, सक्षिप्तरुचीननुग्रहीतुमना।
सुगमीकरोमि किञ्चिद् यतिप्रतिक्रमणसूत्रमहम् ॥१॥

अ०—यदभिनव शुभमनया, यतिप्रतिक्रमणसूत्रगमनिकया।
जनतास्तु जगति तेनास्तवृजिनजिनवचनजनितरति ॥१॥
मुग्धानामुपयोगार्थमिय सक्षिप्तवृत्तिका।
वृद्धव्याख्यात उज्जहि, श्रीजिनप्रभसूरिभि ॥२॥
ध्यानलेश्याक्रियास्थान (१३६४) सख्ये विक्रमवत्सरे।
इयमूर्जाधसप्तम्यामयोध्याया समर्थिता ॥३॥
प्रतिक्रमणसूत्रस्य साधवो यस्य साध्वियम्।
सम्यैरभ्यस्यता वृत्तिरर्थनिर्णयकौमुदी ॥४॥
ग्रन्थाग्र कृतमस्या प्रत्यक्षर गणनया स्वय कविना।
साष्टाचत्वारिंशत् पञ्चशतीश्लोकमानेन ॥५॥

टीका[1], अनुयोगचतुष्टयव्याख्या[2] प्रव्रज्याभिधानटीका[3], अजितशान्तिस्तव बोधदीपिका[4] नाम्नी टीका, भयहरस्तोत्र (नमिउण) अभिप्रायचन्द्रिका[5] टीका, उपसर्गहरस्तोत्र अर्थकल्पलता[6] टीका, पादलिप्तसूरिकृतवीरस्तोत्र टीका, गुणानुरागकुलक[8], कालचक्रकुलक[9], परमतत्त्वावबोधद्वात्रिंशिका[10],

---

१ देखें, जैन साहित्यनो सक्षिप्त इतिहास और जैनस्तोत्र सदोह भा० २

२ प्र० । ३ देखें, हीरालाल कापडिया की चतुर्विंशतिजिनानद स्तुति, प्रस्ता०, पृ० ४७ ।

४. र० स० १३६५ पौष० दाशरथिपुर ग्र० ७४० प्र० ।

५ आ०—श्रीपार्श्व स्वामिन स्मृत्वा, मानतुङ्गगुरो कृतौ ।
वृत्ति भयहरस्तोत्रे, सूत्रयामि समासत ॥१॥

अ०—भयहरस्तवने विवृतिर्मया व्यरचि किञ्चन मन्दधियाप्यसौ ।
अनुचित यदवोचमिह क्वचित्तदनुगृह्य विशोध्यमपीश्वरै ॥२॥
वृत्तिरेषा विशेषोक्ति रोचिष्णुश्चारुचेतनै ।
च्यवता चिररात्राय, नाम्नाभिप्रायचन्द्रिका ॥२॥

सवद्विक्रमभूपते शरऋतूदर्चिमृगाङ्क मिते (१३६५)
पौषस्योज्ज्वलपक्षभाजि रविणा युक्तो नवम्या तिथौ ।
शिष्य श्रीजिनसिंहसूरिसुगुरोष्टीकामकार्षीदिमा,
श्रीसाकेतपुरे जिनप्रभ इति ख्यातो मुनीना प्रभु ॥३॥
प्रत्यक्षर निरूप्यास्य ग्रन्थमानं विनिश्चितम् ।
अनुष्टुब्च्छदसा त्रीणि शतानि परिभाव्यताम् ॥४॥

६ स० १३६४ पौष कृष्णा ९ साकेतपुर ग्र० २७१, प्र० ।

७ स० १३८० चतुर्विंशतिप्रवन्ध अनुवाद के परिशिष्ट में प्र० ।

८ गा० ३५, लीवडी भडार ।

९. इसी सग्रह में ।

१० ,, ,,

परमात्मवतीसी[1], उपदेशकुलक* ।

वैधानिक—विधिमार्गप्रपा[2], देवपूजाविधि[3], पूजाविधि*, प्रायश्चित्त-

---

१ नाहटा-सग्रह, * जेसलमेर भडागारीय ग्र० सूची के आधार से ।

२ अ० प्र०—

वहुविहमामायरिओ, दठ्ठु मामोहंमि तु सीस त्ति
एसा सामायारी, लिहिया नियगच्छपडिवद्धा ।।७।।

आगमआयरणाहि, ज किचि विरुद्धमित्थ मे लिहिय ।
त सोहितु सुयधरा अमच्छरा मह किव काउ ।।८।।

जिणदत्तसूरिसलाणतिलयजिणसिहसूरिसीसेण ।
गुत्तिरसकिरिय (१३६३) ढाणप्पमिए विक्कमनिवइवरिसे ।।९।।

विजयदसमीइ एसा, मिरिजिणपहसूरिणा समायारी ।
सपरोवयारहेउ समाणिया कोसलानयरे ।।१०।।

सिरिजणवल्लह-जिणदत्तसूरि-जिणचद- जिणवइमुणिदा ।
सुगुरुजिणेसर-जिणसिहसूरिणो मह पसीयतु ।।११।।

वाइयसयलसुएण, वाणायरिएण अम्ह सीसेण ।
उदयाकरेण गणिणा, पढमायरिसे कया एसा ।।१२।।

जीए पसाया ओ नरा, 'सुकई सरसत्थवल्लहा' हुति ।
सा सरसई य पउमावई य मे दितु सुयरिद्धि ।।१३।।

ससिसूरपई वा जाव भुवणभवणोदर पभासेंति ।
एसा सामायारी, सफलिज्जउ ताव सूरीहि ।।१४।।

पच्चक्खरगणणाए पाएण कय पमाणमेईए ।
चउहत्तरि समहिया पणतीससया सिलोयाण ।।१५।।

विहिमग्गपवानामं सामायारी इमा चिर जयइ ।
पल्हायती हियय सिद्धिपुरीपथियजणाण ।।१६।।

(प्रकाशित)

३ अ० प्र०—

देवाहिदेवपूजाविही इमो भवियणुग्गहट्ठाए ।
उपदर्शितो श्रीजिनप्रभसूरिभिराम्नायत. सुगुरो ।।

ग्र० २६९, विधिमार्गप्रपा में (प्रकाशित)

विशुद्धि[1], व्यवस्थापत्र[2]।

व्याकरण—कातन्त्रविभ्रमटीका,[3] रुचादिगणवृत्ति[4]।

---

* पूजाविधि के अन्तर्गत ही 'वन्दनस्थान विवरण, प्रत्याख्यान-विवरण, शान्तिपर्वविधि, चौराशी आशातना' है, स्वतत्र नही।

'गृहप्रतिमायास्तु सक्षेपत स्नपनविधिरयम्—"

"वदणगणविवरण समत्तं।"

'सपय पच्चक्खाणठाइ भणति × × × × पच्चक्खाणठाण-विवरण सम्मत्त।"

जिणपूजाविहिमाइ सुवहुविट्ठाणेमु जाण गन्थग्ग।

"पच्चक्खरगणणाए वाहत्तरिसजुया छ सया।"

"ग्रन्थाग्र० ६७२ कृति श्रीजिनप्रभसूरीणा।"

जैन साहित्य मदिर पालीताणा न० ५९९ प० १४।

१ "सर्वविरतिप्रायश्चित्त" इति सर्वविरतिसक्षेपोऽलेखि श्रीजिन-प्रभसूरिभि।—जैन साहित्य मदिर पालीताणा—न० ४९०,

२ "ॐ गुरुभ्यो नमस्कृत्य श्रीजिनप्रभसूरिभिर्व्यपस्थापत्र लिख्यते–"
व्यवस्था ३२
—जैन साहित्य मदिर पालीताणा, नं० ५९९

३. आ०—प्रणम्य परम ज्योति, वालाना हितकाम्यया।
वक्ष्ये सक्षेपत. स्पष्टा, टीका कातन्त्रविभ्रमे॥

अ प्र—पक्षेपुशक्तिशशभृन्मित (१३५२) विक्रमाब्दे,
धात्र्यङ्किते हरतिथौ पुरि योगिनीनाम्।
कातन्त्रविभ्रम इह व्यतनिष्ट टीका-
मप्रौढधीरपि जिनप्रभसूरिरेताम्॥१॥
प्रत्यक्षर निरूप्यास्य ग्रन्थमान विनिश्चितम्।
एकषष्ठ्या समधिके, शतद्वयमनुष्टुभाम्॥ २॥

४ अ प्र०—दुर्गवृत्तिगरुचादिगणस्य, श्रीजिनप्रभमुनिप्रभुरेताम्।
पञ्जिकामुपनीय विनेते वृत्तिमल्पप्रतिवोधनिमित्तम्॥१॥

कोष—हैमव्याकरणानेकार्थकोषटीका[1], शेषसग्रह टीका[&]

काव्य—श्रेणिकचरित्र[2] (द्वयाश्रयकाव्य), भवियकुटुवचरिय,[3] विषम-षट्पदकाव्यटीका,[4] गायत्रीविवरण[5]।

अलंकार—विदग्धमुखमण्डन[6]।

सैकोनत्रिंशदनुष्टुभा, शतद्वितयमादिगणवृत्तौ।
सप्ततियुक्शतयुगला, समकलितरुचादिगणवृत्तौ ॥२॥
रसयुगरविरस (१२४६) मितशकवर्षे,
भाद्रपदाशितचतुर्दशीदिवसे।
भाडग द्रग इय समर्पिता गणयुगलवृत्ति ॥३॥

१ पुरातत्त्व, वर्ष २, पृ० ४२४ मे उल्लेख, प्रति पाटणभडार।

& मोतीचद खजाची सग्रह वीकानेर।

२ र० स० १३५६ सर्ग ७ प्रकाशित।

३ प्रति वाडी पार्श्वनाथ भडार, न० ७३०७

४. "इति श्रीजिनेश्वरस्तुतिरूपा श्रीजिनप्रभसूरीकृत पारसीवद्ध-भाषाकाव्यावचूरी"

इति षट्पदकाव्यस्य, विवृतिमतिशालिभि।
विदधे वुधवोधाय, श्रीजिनप्रभसूरिभि ॥

५. अ०प्र०—चक्रे श्रीशुभतिलकोपाध्यायै. स्वमतिशिल्पकल्पान्।
व्याख्यान गायत्र्या क्रीडामाश्रीपयोगमिदम् ॥
इति श्रीजिनप्रभसूरि विरचित गायत्री विवरण समाप्त।
—(प्रतिलिपि नाहटासग्रह)

६ आ०—ध्यात्वा श्रीवाग्देवी, विदग्धमुखमण्डनस्य सक्षेपात्।
विषमपदव्याख्यानं, क्रियते स्वपरोपकृतिकृते ॥१॥

तीर्थकल्प—विविधतीर्थकल्प[1]।

विविधतीर्थकल्प के अन्तर्गत निम्नकल्प हैं—

शत्रुञ्जयतीर्थकल्प,[3] रैवतकगिरिकल्पसक्षेप, उज्जयन्तमहातीर्थकल्प, रैवतकगिरिकल्प, पार्श्वनाथकल्प, स्तम्भनककल्प. अहिच्छत्रानगरीकल्प,

---

अ०प्र०—श्रीधर्मदासकविना मुगता हि सेवा-
हेवाकिना विरचिते गहनेऽच शास्त्रे।
व्याख्या विधा सुगमासुकृत यदाप,
तेनास्तु धीर्मम सदैव परोपकारे ॥१॥
श्रीविक्रमभूभर्त्तुर्वसुरसशक्तीन्दुसम्मिते (१३६८) वर्षे।
नभसि सितद्वादश्या, नृपभटपुरे नामनि विहरन् ॥२॥

१. अं० प्र०—आदित सर्वकल्पेषु ग्रन्थमानमजायत।
अनुष्टुभा पञ्चत्रिंशच्छती षष्ट्यधिका स्थिता ॥ १ ॥
कार्यो सजेत् ? किं प्रतिषेधवाचि पद ? ब्रवीति प्रथमोपसर्ग ।
कीदृग् निशा ? प्राणभृता प्रिय क ? को ग्रन्थमेत रचयाचकार ? ॥२॥
—जिनप्रभसूरय ।

नन्दाऽनेकपशक्तिशीत[1]गुमिते श्रीविक्रमोर्वीपते-
र्वर्षे भाद्रपदस्य मास्यवरजे सौम्ये दशम्या तिथौ।
श्रीहम्मीरमहम्मदे प्रतपति क्ष्मामण्डलाखण्डले,
ग्रन्थोऽय परिपूर्णतामभजत श्रीयोगिनीपत्तने ॥३॥
तीर्थाना तीर्थभक्ताना, कीर्त्तनेन पवित्रित ।
कल्पप्रदीपनामाय, ग्रन्थो विजयता चिरम् ॥४॥
(प्रकाशित)।

३ अ० प्र०—

प्रारम्भेप्यस्य राजाधिराज सघे प्रसन्नवान् ।
अतो राजप्रसादाख्य, कल्पोऽय जयताच्चिरम् ॥१२२॥
श्रीविक्रमाब्दे वाणाष्टविश्वेदेव (१३८५) मिते शितौ ।
सप्तम्या तपस काव्यदिवसेऽयं समर्पित ॥१२३॥

अर्बुदाद्रिकल्प, मथुरापुरीकल्प, अश्वानवोधतीर्थकल्प, वैभारगिरिकल्प,[1] कौशाम्बीनगरीकल्प, अयोध्यानगरीकल्प, अपापापुरीकल्प, कलिकुण्डकुर्कुटेश्वरकल्प, हस्तिनापुरकल्प, सत्यपुरतीर्थकल्प, अष्टापदमहातीर्थकल्प, मिथिलाकल्प, रत्नवाहपुरकल्प, अपापावृहत्कल्प[2] कन्यानयनीयमहावीर-प्रतिमाकल्प, प्रतिष्ठानपत्तनकल्प, नन्दीश्वरद्वीपकल्प, काम्पिल्यपुरतीर्थकल्प, अणहिलपुरस्थित अरिष्टनेमिकल्प, शखपुरपार्श्वकल्प, नासिक्यपुरकल्प, हरिकखीनगरस्थितपार्श्वनाथकल्प कपर्द्दियक्षकल्प, शुद्धदन्तीस्थितपार्श्वनाथकल्प, अवन्तिदेशस्थ अभिनन्दनदेवकल्प, प्रतिष्ठानपुरकल्प, प्रतिष्ठानपुराधिपतिसातवाहननृपचरित्र, चम्पापुरीकल्प, पाटलिपुत्रनगरकल्प, श्रावस्तीनगरीकल्प, वाराणसीनगरीकल्प, महावीरगणधरकल्प,[3] कोकावसतिपार्श्वनाथकल्प, कोटिशिलातीर्थकल्प, वस्तुपाल-तेज पालमन्त्रिकल्प, ढीपुरीतीर्थकल्प, ढीपुरीस्तव[4], चतुरशीतिमहातीर्थनामङ्ग्रहकल्प, समवसरण-

---

१ अ० प्र०—वर्षे सिद्धा सरस्वद्रसशिखिकुमिते, (१३६४) वैक्रमे तीर्थमौले
सेवाहेवाकिना श्रीवितरमुरतरो देवता सेवितस्य ।
वैभारक्षोणीभर्तुर्गुणगणभणनव्यापृता भक्तियुक्तं,
सूक्तिर्जैनप्रभीय मृदुविशदयदाऽपीयता धीरधीभि ॥२७॥

२ अ० प्र०—इय पावापुरीकप्पो, दीवमहुप्पत्तिभणणरमणिज्जो ।
जिणपहसूरीहिकओ, ठिएहिं सिरिदेवगिरिनयरे ॥१॥
तेरहसत्तासीए, विक्कमवरिसम्मि भद्दवयवहुले ।
पूसवक्कवारसीए, समत्थिओ एस सत्थि करो ॥२॥

३ अ० प्र०—जिणपहसूरिहि कओ, गहवसुसिहिकु (१३८९) मिअविक्कम-समासु ।
चिट्ठसियपचमिवुहे, गणहरकप्पो चिर जयइ ॥२॥

४ अ० प्र०—शशधरहृषीकाक्षिक्षोणीमिते (१२५१) शकवत्सरे,
गृहमणिमहे सघान्वीता उपेत्य पुरीमिमा ।
मुदितमनसस्तीर्थस्यास्य प्रभावमहोदये-
रितिविरचया चक्षु स्तोत्रं जिनप्रभसूरय ॥९॥

रचनाकल्प, कुडुगेश्वरनाभेयदेवकल्प, व्याघ्रीकल्प, अष्टापदगिरिकल्प, हस्तिनापुरतीर्थस्तव[१], कुल्यपाकस्य ऋषभदेवस्तुति, आमरकुण्डपद्मावतीदेवीकल्प, चतुर्विंशतिजिनकल्याणककल्प, तीर्थंकरातिशयविचार, पञ्चकल्याणकस्तव, कोल्लपाकमाणिक्यदेवतीर्थकल्प, श्रीपुर अन्तरिक्षपार्श्वनाथकल्प, स्तम्भनककल्पशिलोछ, फलवर्द्धिपार्श्वनाथकल्प, अम्बिकादेवीकल्प, पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारकल्प।

मन्त्र-साहित्य—सूरिमन्त्रबृहत्कल्पविवरण[२], ह्रीकारकल्प[३], रहस्यकल्पद्रुम[४], शक्रस्तवाम्नाय[५] अलंकारकल्पविधि[६]।

---

१ अ० प्र०—

इत्थ पृषत्कविषयकिमिते शकाब्दे, वैशाखमासशितिपक्षगषष्ठतिथ्याम्।
यात्रोत्सवौपनतसघयुतो यतीन्द्र, स्तोत्र व्यधाद् गजपुरस्य जिनप्रभोस्य॥३॥

२ आ०—अर्हं वीज नमस्कृत्य, सम्प्रदायलवो मया।
कल्पादाप्तोपदेशाच्च सूरिमन्त्रस्य लिख्यते॥१॥

अ०—इति श्रीसूरिमन्त्रस्याम्नायलेश विदृब्धवान्।
दृष्ट्वा पुराणकल्पेभ्य श्रीजिनप्रभसूरिराट्॥१॥
(श्रीजिनप्रभसूरिसमुद्धृत श्रीसूरिविद्याकल्प)

अ०—"श्रीजिनप्रभसूरिसम्प्रदायागत।" (प्रकाशित)

३ अ० प्र०—इति श्रीमायावीजकल्प· श्रीखरतरगच्छाधीशभट्टारकश्रीजिनप्रभसूरिविरचित समाप्त। (प्रकाशित)

४ "भट्टारकश्रीजिनप्रभसूरिकृतरहस्यकल्पद्रुममध्यात् प्रयोगा दृष्ट-(प्रत्यया लिख्यन्ते।" ग्रन्थ प्राप्त नही है। कदाचित् प्रयोगप्राप्त है। प्रतिलिपि नाहटा-सग्रह।)

५ आचार्य शाखा भडार, बीकानेर।

६ आचार्य हरिसागरसूरि, लोहावट।

७

खण्डनात्मक—तपोटमतकुट्टनशतम्[1] ।

स्तोत्र

सिद्धान्तागमस्तव के अवचूरिकार ने लिखा है कि 'यमकश्लेषचित्रच्छान्दोविशेषादिनवनवभङ्गीसुभगा-सप्तशती(७००)मिता स्तवा ' आपके रचित ७०० स्तोत्र हैं । किन्तु दुःख है कि वर्तमान में निम्नोक्त स्तोत्र प्राप्त हो सके हैं । सभव है विशेष शोध करने पर कुछ और प्राप्त हो जायँ ।

क्रमाङ्क	नाम	आदिपद	पद्यसंख्या
१	मङ्गलाष्टक	जितभावद्विषा सर्व	८
२	पञ्चनमस्कृतिस्तव	प्रतिष्ठित तम पारे	३३
३	पञ्चपरमेष्ठिस्तव	स्व श्रिय श्रीमदर्हन्त	५
४	,,	परमेष्ठिन सुरतरून्	७
५	अर्हदादिस्तोत्र	मानेनोर्वी व्यहृतपरितो	८
६	प्राभातिक नामावली	सौभाग्यभाजनमभगुर-	
७	वीतरागस्तव	जयन्ति पादा जिननायकस्य	१६
८	पञ्चकल्याणकस्तव	निलिम्पलोकायितभूतल	८
९	द्वित्रिपञ्चकल्याणकस्तव	पद्मप्रभप्रभोर्जन्म	१५
१०	चतुर्विंशतिजिनस्तव	कनककान्तिधनु शत	२९
११	,,	ऋषभनम्रसुरासुरशेखर	२९
१२	,,	आनम्रनाकिपतिरत्न	२५
१३	,,	पात्वादिदेवो दशकल्पवृक्षा	२९

१ आ०—निर्लोहितशठकमठ, त्रैलोक्यप्रथितचारुकारुण्यम् ।
प्रणिपत्य श्रीपार्श्व, तपोटमतकुट्टन वक्ष्ये ॥
अ० प्र०—इति जिनप्रभसूरिकृत तपोटमतकुट्टनशास्त्रममत्सर ।
भवति सूक्ष्मधिया परिभावयन् बुधजनो विधिपक्षविचक्षण ॥१०२॥
(प्रतिलिपि नाहटा-सग्रह)

१४	चतुर्विंशतिजिनस्तव	य सततमक्षमालोपशोभितं	३०
१५	,,	आनन्दसुन्दरपुरन्दर	२९
१६	,,	ऋषभदेवमनन्तमहोदय	३०
१७	,,	ऋषभनाथमनाथ	२९
१८	,,	तत्त्वानि तत्त्वानि भृतेपु सिद्धम्	२८
१९	,,	प्रणम्यादिजिन प्राणी	२८
२०	,	नाभेय शोचि निर्ममो(आगरा भडार)	२५
२१	,,	जिनर्पभप्रीणितभव्यसार्थ	८
२२	,,	नत सुरेन्द्रजिनेन्द्रयुगादिमा	९
२३	पुण्डरीकगिरिमण्डण ऋषभस्तव [कातन्त्रसन्धिसूत्रगर्भित]	सिद्धो वर्णसमाम्नाय	२३
२४	युगादिदेवस्तव [अष्टभापामय]	निरवधिरुचिरज्ञान	४०
२५	,,	मेरौ दुग्धपयोधि वा	३३
२६	,,	अस्तु श्रीनाभिभूर्देवो	११
२७	,,	अल्लाल्लाहि	११
२८	ऋषभदेवाज्ञास्तव	नयगमभगपहाणा	११
२९	अजितजिनस्तव	विश्वेश्वर मथितमन्मथभूपमान	२१
३०	चन्द्रप्रभजिनस्तव [षड्भापागर्भित]	नमो महसेननरेन्द्रतनूज	१३
३१	चन्द्रप्रभचरित्रम्	चदप्पह चदप्पह	२२
३२	चन्द्रप्रभस्तव	दैवैर्य स्तुष्टुवे तुष्टै	४
३३	शान्तिनाथाष्टकम् [पारसीभापा]	अजिकुहकाफुजु	९
३४	शान्तिजिनस्तव	शृङ्गारभासुरसुरासुर (आगराभडार)	२४
३५	,,	शान्तिनाथो भगवान्	२०

३६	अरजिनस्तव	जय शरदशकलदशहृग्रवदन	१४
३७	मुनिसुव्रतजिनस्तव	निर्माय निर्माय गुणार्द्धि	३०
३८	नेमिजिनस्तव [क्रियागुप्तम्]	श्रीहरिकुलहीगाकर	२०
३९	पार्श्वजिनस्तव	कामे वामेयशक्ति	१७
४०	,,	श्रीपार्श्व श्रेयसे भूयात्	८४
४१	,, [फलवर्द्धिमण्डन]	अधियदुपनमन्तो	१२
४२	,, [,,]	जयामलश्रीफलवर्द्धिपार्श्व	२१
४३	,, [जीरावलीमडन]	जीरिकापुरपति सदैवत	१५
४४	,, [अष्टप्रातिहार्यमय]	त्वा विनुत्य महिमश्रियामह	१०
४५	,,	श्रीपार्श्वपादानतनागराज	८
४६	,,	पार्श्वप्रभुशरवदकोपमान	८
४७	,,	पार्श्वनाथमनघ	९
४८	,,	श्रीपार्श्वपरमात्मान	८
४९	,	श्रीपार्श्व भावत स्तौमि	९
५०	,, [षड्ऋतुवर्णनमय]	असमसरणीय	७
५१	, [नवग्रहगर्भित]	दोसावहार दक्खो	१०
५२	, [फलवर्द्धिमण्डन]	श्रीफलवर्द्धिपार्श्व	९
५३	,, [,]	सयलाहिवाहिजलहर	११
५४	,, [उपसर्गहरस्तोत्रपादपूर्ति]	पणमिय सुरनरपूइया	२२
५५	वीरजिनस्तव [चित्रकाव्य]	चित्रै स्तोष्ये जिन वीर	२७
५६	,, [विविधछन्दनामगर्भित]	कसारिक्रमनिर्यदा	२५
५७	,, [पञ्चवर्गपरिहारमय]	स्व श्रेयस मरसीरुह	२६
५८	,, [लक्षणप्रयोगमय]	निस्तीर्णविस्तीर्णभवार्णव	१७
५९	,,	असमशमनिवास	२५

६०	वीरजिनस्तव	विश्वश्रीधुरच्छिदे	२१
६१	,,	श्रीवर्धमान सुखवृद्धयेऽस्तु	९
६२	वीरनिर्वाणकल्याणकस्तव	श्रीसिद्धार्थनरेन्द्रवंश	१९
६३	वीरजिनस्तव [पञ्चकल्याणकमय]	पराक्रमेणेव पराजितोय	३६
६४	,,	श्रीवर्द्धमानपरिपूरित	१३
६५	तीर्थमालास्तव	चउवीसपि जिणिंदे	१२
६६	तीर्थयात्रास्तव	सिरिसत्तुजयतित्थे	९
६७	मथुरायात्रास्तोत्रम्	सुराचलश्रीजिनि	१०
६८	मथुरास्तूपस्तुति	श्रीदेवनिर्मितस्तूप	४
६९	स्तुतित्रोटक.	नियजमु सफलु	५
७०	,,	ते धन्नपुन्नसुकपत्यनरा	४
७१	विज्ञप्ति	सिरिवीयराय देवाहिदेव	३५
७२	गौतमस्तव	श्रीमन्त मगधेपु	२१
७३	,,	जम्मपवित्तियसिरिमगहदेस	२५
७४	गौतमाष्टकम्	ॐ नमस्त्रिजगन्नेतु	९
७५	सुधर्मगणधरस्तव [विविधच्छदमय]	आगमत्रिपथगा हिमवन्तं	२१
७६	जिनसिंहसूरिस्तव	प्रभु प्रदद्यान्मुनिप	१३
७७	सिद्धान्तागमस्तव	नत्वा गुरुभ्य श्रुतदेवतायै	४५
७८	४५ आगमस्तव	सिरिवीरजिण	११
७९	शारदास्तव	वाग्देवते भक्तिमता	१३
८०	सरस्वत्यष्टकम्	ॐ नमस्त्रिदशवन्दितक्रमे	९
८१	पद्मावतीचतुष्पदिका	जिणसासणु अवधावि	३७
८२	वर्धमानविद्यास्तव	आसि किलठुत्तरसय	१७
८३	परमतत्त्वावबोधद्वात्रिंशिका	धर्माधर्मान्तरं मत्वा	३२

८४	हीयाली	अकूलु अमूलुअ	४
८५	,, [अपूर्ण]	चारि चलण चउ	
	सारस्वतदीपक[1]		

आचार्य जिनप्रभ का साहित्य

जैसा कि कहा जा चुका है कि आचार्य जिनप्रभ सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होने अनेक विषयो मे साहित्य-रचना की है। वर्गीकरके उनका सक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है

काव्य

आचार्य काव्य व काव्यशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उनका 'श्रेणिक चरित' नामक एक काव्यग्रन्थ मिलता है। यह 'द्व्याश्रयकाव्य' है। इस ग्रन्थ की रचना आचार्य ने स० १३५६ वि० मे की थी। कदाचित् इस ग्रन्थ की रचना मे उन्हे हेमचन्द्राचार्य के 'सिद्धहेमशब्दानुशान' के आश्रित 'द्व्याश्रयकाव्य' से प्रेरणा मिली थी। हेमचन्द्र ने अपने शब्दानुशासन के सूत्रो का सफल प्रयोग करते हुए गुजरात के चालुक्यवश का इतिहास अपने

क्रमाङ्क, १५,१६,१७,२०,३४,३७,४७ और ६० प्राप्त करने मे असमर्थ रहा हूँ। —लेखक

१ सौन्दर्योदारकौन्दद्युतिधरवपुप कौण्डलश्रीसनाथा-
मह मन्दोहमोहावतमसतरणि हस्तविन्यस्तमुद्राम्।
त्रैलोक्यानेककामप्रवितरणमरुद्वीरुधामैन्द्रचाप-
व्यापिभ्र पल्लवान्ताममतिरपि नमस्कृत्य देवी स्तवीमि ॥१॥

(सारस्वतदीपक प्रथम पद्य)

आकाव्य मा सात सारस्वतमन्त्रो नो गुप्तरीते समावेश करवामा आव्योछे। आ स्तोत्र नी वृत्तिमा एक स्थले श्रीजिनप्रभसूरिनु नाम नजरे पडेछे। ए उपर थी आ जैन मुनीश्वरनी कृति होवानु भासे छे। भक्तामर-स्तोत्रनी पादपूर्तिरूप काव्यसग्रह द्वितीय विभाग प्रस्तावना, पृ० ३२।

द्व्याश्रयकाव्य मे प्रस्तुत किया है। यहाँ एक उदाहरण असङ्गत न होगा। इसमे काले अक्षरो मे शब्द व्याकरण के प्रयोग है। भीमदेव सोल्की (चालुक्य) द्वारा पराजित सिन्ध के हम्मुक के शौर्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है

अदमि न सुरैर्नो वा दैत्यैरदामि य आहवे।
स्म दमयति त दामदाम दमंदमभोजसा॥
चुलूककुलभू कामकाम ह्यकामचदामय।
त्तमथ निगड प्रामप्रामं य आमि न केनचित्॥

नाचामि नाकामि च केनचिद्या ता सोथ चौलुक्यकुलावतस।
आचाममाचाममभिभाश्वसैन्या न्याचामयत् मेक्षुयवा तदुर्वीम्॥

श्रेणिकचरित भी इसी श्रेणी का काव्य है। यह काव्यशास्त्र के नियमो के अनुसार महाकाव्य की श्रेणी का काव्य है; परन्तु इसको 'एकार्थ-काव्य' कहा जाय तो अधिक सगत होगा।

प्रथम सर्ग मे कातन्त्रव्याकरण के सन्धिपाद को उपस्थित किया गया है। पाँचो सन्धियो के पृथक्-पृथक् रूप दिखाये गए है। काव्य का प्रारम्भ इस प्रकार होता है —

सिद्धो वर्णसमाम्नाय सर्वस्योपचिकीर्षता।
येनादौ जगदे ब्राह्म्यै स नन्द्यान्नाभिनन्दन॥
देशोऽस्ति मगधाभिख्यो यत्र मञ्जुस्वरा नरा।
समानश्रीसवर्णास्त्री युक्ता ह्रस्वेतरागया॥

सब का उपकार करने की इच्छावाले जिस प्रभु ने ब्राह्मी के वर्णो की मर्यादा सिद्ध की ऐसे नाभि राजा के पुत्र भगवान् ऋषभदेव ज्ञान-समृद्धि के साथ आनन्द प्रदान करे। मगध नाम का एक देश है, जिसमे सुन्दर स्वरवाले, समान लक्ष्मीवाले, समान वर्ण की स्त्रियो से युक्त प्रबल पुरुष रहते थे।

इन श्लोको मे कातन्त्रव्याकरण के प्रथम पाँच सूत्रो (१ सिद्धो वर्णसमाम्नाय, २ तत्र चतुर्दशादौ स्वरा, ३ दश समाना, ४. तेषा

द्वावन्योन्यस्य सवर्णौ, ५ पूर्वो ह्रस्व) के भावो का प्रयोग किया गया है।

दूसरे सर्ग मे व्याकरण के लिङ्ग-पाद का प्रयोग करके विभिन्न सिद्ध-रूप दिये गए है। उदाहरण के लिए दो श्लोक देखिये

स्त्रीणा गुणाना भूमीनामपरित्यागलोलुप ।
असौ वहूना विद्याना वधूना चाभवद्वर ।।
वा भर्तृणामतिस्त्रीणा जेता गाम्भीर्यसम्पदा ।
त्रयाणा जगता शस्तैश्चरित्रैश्चित्रमादधे ।।

यह सुकुमर स्त्री, गुण व भूमि का त्याग करने का इच्छुक था और इस कारण कई विद्याओ तथा वधुओ द्वारा वरणीय हो गया था। अपने गाम्भीर्य की सम्पत्ति से चार समुद्रो को जीतनेवाला वह कुमार अपने श्रेष्ठ चरित्र से जगत् को चकित कर देता था।

इन श्लोको मे स्त्री, भूमि, वधू, विद्या, गुण, वहु, भर्तृ, त्रि आदि शब्दो के पष्ठी विभक्ति के रूप आये है।

तीसरे सर्ग में युष्मदादि सर्वनामो के रूप आये हैं। उदाहरणार्थ देखिये

मदावाभ्यामस्मदप्येतदत्युज्ज्वलमितीश ते ।
कम्बु करिरदौ चन्द्रपादाश्च नुवते यश ।।
युष्मभ्य प्रीणतास्मभ्य श्लाघ्यते भूर्यथा यथा ।
प्रिययुष्मभ्यमस्मभ्य मुद दध्रे तथा तथा ।।

हे स्वामिन्! मुझसे, हम दो से और हमारे मे जो अति उज्ज्वल है ऐसे शख, दो हाथी-दाँत और चन्द्रकिरणें आपके यश की स्तुति करते है। भूमि प्रसन्न होकर जैसे जैसे आपसे हमारी श्लाघा करती है वैसे वैसे भूमि, जिसके आप प्रिय हो, हमारे से हर्ष धारण करती है।

इसमे मत्, आवाभ्या, अस्मत् शब्द के पञ्चमी विभक्ति के तथा युष्मभ्य, अस्मभ्य आदि चतुर्थी के रूप आये है ।

चतुर्थ सर्ग में कारक-प्रकरण को लेकर विभक्तियो के विभिन्न प्रयोग दिखाये गए है । उदाहरणार्थ

> स्मृताप्यग्नये स्वाहा वपट् प्राचीनवर्हिपे ।
> स्वधा पितृभ्य इत्येते मन्त्रास्त्राणाय न क्षमा ॥
> स्यात् पु सा श्रेयसे दारु यूपायेव जिनेन्द्र यत् ।
> तस्मै सचेता को नाम त्वत्तीर्थाय न मन्यते ॥

अग्नये स्वाहा, प्राचीनवर्हिपे (इन्द्र) वषट्, पितृभ्यः स्वधा आदि मंत्र याद तो किये थे परन्तु उनकी रक्षा करने में समर्थ था नही । हे जिनेन्द्र ! यज्ञ के स्तम्भ की काष्ठ जिस तरह पुरुपो के कल्याण के लिए है इस वात को उसे आपके तीर्थ से सचेत प्राण नही मानता ।

प्रथम श्लोक मे स्वाहा, स्वधा, वपट् के योग मे चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग करके 'नम स्त्रस्तिस्वाहास्वधावपड्योगे चतुर्थी' इस व्याकरण सूत्र की पुष्टि की गई है । इसी तरह दूसरे में यूपाय, तीर्थाय, श्रेयसे आदि रूपो का प्रयोग 'तादर्थ्ये चतुर्थी' व्याकरण सूत्र के अनुसार हुआ है ।

पञ्चम सर्ग मे सस्कृत व्याकरण के तद्धित-प्रकरण के सिद्धरूप दिये गए हैं । प्रारम्भ में सर्गार्ध मे समासो के सिद्धरूप आये है और अन्त मे तद्धित के ।

पष्ठ सर्ग में आख्यात (धातु) प्रक्रिया के प्रथमपाद के रूप दिखाये गए है । इसी तरह सप्तम सर्ग में धातु प्रक्रिया के दूसरे पाद के रूप दिखाये गए हैं । शेप सर्गो में आख्यात प्रक्रिया के अवशिष्ट ६ पादों तथा कृत प्रकरण के ६ पादो के रूपो को उपस्थित किया गया है ।

काव्य का विपय एक उद्देश्य को लेकर चलता है । इसमें महाकाव्य के सभी गुण विद्यमान है, परन्तु जातीय पृष्ठभूमि के अभाव के कारण

एकार्थ-काव्य कहना अधिक सगत है। वर्णन शैली भट्टिकाव्य के सदृश प्रौढ है।

काव्य का नायक महाराजा श्रेणिक धार्मिक व्यक्ति है। उसको जैन-शासन मे प्रवृत्त होता हुआ दिखाया जाना ही काव्य का उद्देश्य है। सर्वत्र शान्तरस का उदात्त शैली में वर्णन है। वर्ण्य-विषय और वर्णन-कौशल दोनो ही हृदय मे सवेदना जगाने में समर्थ है। काव्य के प्रथम भाग को देखने मे प्रकट है कि कवि ने मधुर शब्दावली का प्रयोग करके काव्य को उत्कृष्ट बनाने का प्रयास किया है, जिसमे उसे सफलता भी मिली है। इतना ही नही चरित्र के उज्ज्वल पक्ष को उपस्थित करके भाव-सौन्दर्य लाने की चेष्टा भी सफल हुई है। व्याकरण पक्ष का प्रस्तुतीकरण भी अस्वाभाविक नही हो पाया है।

जैन-शैली में लिखा हुआ 'धर्मशर्माभ्युदय' महाकाव्य अनुपम है और अनेको महाकाव्य है किन्तु 'श्रेणिकचरित' की स्वाभाविक, कोमल एव उत्कृष्ट शैली अपने ढग की अन्यतम है।

श्रेणिकचरित्र की प्रशस्ति मे अपना सक्षिप्त परिचय देकर आचार्य जिनप्रभ ने एक चित्रकाव्य उपस्थित करते हुए निम्नोक्त श्लोक मे श्री शान्तिनाथ प्रभु की स्तुति की है

तत्तत्कर्मपरा जितिक्षमगिर भव्याम्बुजाहस्कर,
वन्दे विष्टपमाननीयमचिरासूनु सता काम्यदम्।
सच्चारित्रनिधि प्रभावमथितारिष्ट जिन व्येनस,
ससारेभहरि वरेण्यसमतारङ्ग विदम्भोजनम्॥

खेद है कि यह महाकाव्य आज तक पूर्णरूपेण प्रकाशित नही हुआ है। इसका प्रामाणिक सस्करण शीघ्र ही प्रकाशित हो, यह अत्यावश्यक है।

व्याकरण

श्रेणिकचरित मे कातन्त्र-व्याकरण का आश्रय लेकर व्याकरण-पक्ष

के साथ चरित्र-पक्ष का जो अद्भुत समन्वय किया है उससे आचार्य जिन-प्रभ का व्याकरण और कवित्व दोनो पर असाधारण अधिकार प्रमाणित हो जाता है। इसके अतिरिक्त उन्होने कुछ व्याकरण से सम्बन्धित अन्य ग्रन्थों की रचना भी की है। ऐसे ग्रन्थो मे कातन्त्र-व्याकरण पर 'कातन्त्र-विभ्रमटीका' और 'रुचादिगणटीका' है।

कातन्त्र-विभ्रमटीका की रचना आचार्य जिनप्रभ ने स० १३५२ वि० मे योगिनीपुर (दिल्ली) मे की थी। इसकी रचना के लिए माथुर-वंशीय ठकुर खेतल कायस्थ ने आचार्य की अभ्यर्थना की थी। आचार्य जिनप्रभ के प्राप्य ग्रन्थो मे निर्माण-सवत् का उल्लेख होने से यह सर्वप्रथम कृति मानी गई है। यह लघुकृति अभी तक अप्रकाशित है।

रुचादिगणवृत्ति, अपेक्षा-कृत छोटी है, पर है महत्त्वपूर्ण। इस टीका की रचना वि० स० १३८१ में हुई है। ग्रन्थ-प्रारम्भ रुचादिगण के परि-चय से होता है। यह कृति भी अप्रकाशित है।

कोष

हेमचन्द्राचार्य-प्रणीत 'अनेकार्थसग्रहकोष' और 'शेषसग्रहनाम-माला' दोनो कोष-ग्रन्थो पर आ० जिनप्रभसूरि रचित टीकाएँ प्राप्त है। दोनो की मात्र एक-एक प्रतियाँ पाटण-भण्डार और खजान्ची-सग्रह बीकानेर मे प्राप्त है। दोनो ही टीकाएँ अद्यावधि अप्रकाशित है।

अलङ्कार

जिनप्रभाचार्य लक्षणशास्त्र के भी सुविज्ञ-पण्डित थे। इनका एक ग्रन्थ अलङ्कारशास्त्र पर मिलता है। वह है 'विदग्धमुखमण्डन-टीका'। विदग्ध-मुखमण्डन पर जैन टीकाओ मे यह सर्वप्रथम प्राचीन एव प्रामाणिक टीका है। इस टीका की रचना वि० स० १३६८ में नृपभटपुर मे हुई है। इसकी प्राचीन दो प्रतियाँ मेरे निजी संग्रह में है। यह टीका भी अप्रकाशित है। इसका आद्यन्त इस प्रकार है—

आ०—ध्यात्वा श्रीवाग्देवीं विदग्धमुखमण्डनस्य सक्षेपात् ।
विषमपदव्याख्यान क्रियते स्वपरोपकृतिकृते ॥१॥

अ०—श्रीधर्मदासकविना सुगताङ्घ्रिसेवा-
हेवाकिना विरचिते गहनेऽत्र शास्त्रे ।
व्याख्या विधाय सुगमा सुकृत यदाप,
तेनास्तु धीर्मम सदैव परोपकारे ॥ १ ॥
श्रीविक्रमभूभर्तुर्वसुरसशक्तीन्दुसम्मिते वर्षे ।
नभसि सितद्वादश्या नृपभटपुरे नामनि विहरन् ॥ २ ॥
श्रीजिनप्रभसूरिणा विदग्धमुखमण्डनस्य टिप्पनक कृतम् ।

तर्कशास्त्र

आचार्य जिनप्रभ बहुत बडे तार्किक भी थे । यद्यपि उनके द्वारा किए गए किसी प्रसिद्ध वाद-विवाद का उल्लेख तो उनके जीवन की प्राप्य सामग्री मे नही मिलता, किन्तु इतना स्पष्ट है कि मुहम्मद तुगलक जैसे कट्टर मुसलमान बादशाह पर चमत्कारो के अतिरिक्त किसी ऐसी घटना से ही वे प्रभाव डालने मे समर्थ हुए होगे । इस विषय को लेकर जिनप्रभ ने वि० स० १३५६ मे 'तपोटमतकुट्टनशतक' नामक ग्रन्थ की रचना की है । इसमें १०० अनुष्टुप् छन्दों में 'तपोटमत' का तर्क द्वारा खण्डन किया है । ग्रन्थ-प्रारम्भ आर्या छन्द से इस प्रकार होता है -

निर्लोठितशठकमठ त्रैलोक्यप्रथितचारुकारुण्यम् ।
प्रणिपत्य श्रीपार्श्व तपोटमतकुट्टन वक्ष्ये ॥

तपटोमत का परिचय देते हुए आचार्य ने कहा है कि जो तप करते हुए अटनशील रहते हैं उन्हें 'तपोट' कहते हैं । तपोटमत को वे मुद्गल व शाकिनी के मतो के तुल्य मानते हैं । जैसे,

बाह्यक्रियादर्शनेन मोहयन्तो जगज्जनम् ।
तपोभूता अटन्तीति तपोटा परिकीर्तिता ॥

तपोटमतवादी सिद्धियो का प्रदर्शन करके लोगो को भ्रान्त किया करते है। उसका परिणाम बडा सक्लिष्ट होता है। इसलिए उक्त दोनो मतो की तरह इसे भी त्याग देना चाहिए। आचार्यजी का कथन है कि अन्य दो मतो का उपक्रम सम्भव भी हो सकता है किन्तु तपोटो की चिकित्सा दुष्कर है। तपोट-मत प्राणियो के अनेक जन्म नष्ट कर देता है। तपोटमत वालो का ज्ञान–गरम दूध पीना, दर्शन–मुख की मुद्रा बनाना और चारित्र–केवल मलधारण करना मात्र है·

ज्ञानमुष्णपय पान दर्शन मुखमुद्रणम् ।
चारित्र दर्शयाम्येषा केवलं मलधारणम् ॥

ये लोग अपने आपको ही चरित्रवान् बतलाते है। परमात्मा की निन्दा करते है। ये कौटिल्य मे पटु है। इसलिए इनकी देशना नही सुननी चाहिए। इस प्रकार अनेक प्रकार के तर्को से तपोटो के मिथ्याडम्बरो का उद्घाटन करते हुए आचार्य ने उनके मत का खण्डन किया है। जैनधर्म के एक मत-विशेष तपागच्छ का इस प्रकार विरोध करके आचार्यजी ने न केवल साहस का ही परिचय दिया है वरन् उनको आत्मनिरीक्षण का अवसर भी देने का प्रयत्न किया है।

कतिपय विद्वान् इस कृति को आचार्य जिनप्रभ की रचना मानने मे सदेह व्यक्त करते है किन्तु जब तक कोई पुष्ट प्रमाण प्राप्त न हो तब तक सदेह करना निरर्थक ही है। यह कृति भी अप्रकाशित है।

विधि-विधान

आचार्य श्रीजिनेश्वरसूरि ने चैत्यवासियो के अजेय दुर्ग अणहिलपुर पत्तन मे जिस सुविहित पक्ष, विधिपक्ष, खरतरपक्ष की स्थापना की थी, उस परम्परा का विकास आचार्य जिनवल्लभ, युगप्रधान जिनदत्तसूरि, मणिधारी

जिनचन्द्रसूरि एव षट्त्रिंशद्वादविजेता जिनपतिसूरि तक अविच्छिन्न रूप से होता रहा। आचार्य जिनपतिसूरि के समय तक चैत्यवास-प्रथा का ह्रास हो चुका था और सर्वत्र सुविहित पक्ष का प्रचार हो चुका था।

आचार्य जिनेश्वर से जिनपतिसूरि तक के समय मे निषेध-खण्डनात्मक प्रवृत्ति का विशेषतया प्रचार रहा। इस अवधि में कतिपय आचार्यो ने विधानात्मक कई छोटे-मोटे प्रकरणो की रचनाएँ भी की थी, जिनमे से प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं

जिनचन्द्रसूरि	श्रावकविधि दिनचर्या
परमानन्द (अभयदेवसूरि शि०	सामाचारी
जिनवल्लभसूरि	प्रतिक्रमण सामाचारी, पौषधविधिप्रकरण
जिनदत्तसूरि	व्यवस्थाकुलक, शान्तिपर्वविधि, आचार्यपदादिव्यवस्था
मणिधारी जिनचन्द्रसूरि	व्यवस्थाकुलक
जिनपालोपाध्याय	सक्षिप्तपौषधविधि
जिनेश्वरसूरि (द्वितीय)	श्रावकधर्मविधि

किन्तु व्यवस्थित रूप मे समग्र क्रियाओ-विधानो का आकर कोई भी ग्रन्थ विधिपक्ष का जिनप्रभसूरि तक निर्मित नही हुआ था। भिन्न-भिन्न गच्छो की अनेक सामाचारी-ग्रन्थो का निर्माण और प्रचार हो चुका था। ऐसी अवस्था में विधिमार्गानुयायियो को अनेक सामाचारी ग्रन्थ देखकर भ्रम न हो तथा अपने विधिपथ पर आरूढ रहकर सामाचारी का पालन कर सकें इस दृष्टि से आ० जिनप्रभसूरि ने 'विधिमार्गप्रपा' नामक विशाल ग्रन्थ का निर्माण किया।

बहुविहसामायारीओ दट्ठु मा मोहमितु सीस त्ति।
एसा सामायारी लिहिया नियगच्छपडिबद्धा ॥७॥
[वि० प्र०, पृ० १२१]

नामकरण

ग्रन्थ के नामकरण के सम्बन्ध मे मुनि जिनविजयजी अपनी सम्पादकीय प्रस्तावना मे लिखते हैं—

इस ग्रन्थ का सम्पूर्ण नाम, जैसा कि ग्रन्थ की सब से अन्त की गाथा में सूचित किया गया, विधिमार्गप्रपा नाम सामाचारी (विहिमग्गपवा नाम सामायारी, देखो, पृ० १२०, गा० १६) ऐसा है। पर इसकी पुरानी सब प्रतियो में अन्यान्य उल्लेखो में भी सक्षेप मे इसका नाम 'विधिप्रपा' ऐसा ही प्राय लिखा हुआ मिलता है, इसलिये हमने भी मूलग्रन्थ मे इसका यही नाम सर्वत्र मुद्रित किया है; पर वास्तव मे ग्रन्थकार का निज का किया हुआ पूर्ण नामाभिधान अधिक अन्वर्थक और सगत मालूम देता है। इस विधिमार्ग शब्द मे ग्रन्थकार का खास विशिष्ट अभिप्राय उद्दिष्ट है। सामान्य अर्थ में तो 'विधिमार्ग' का 'क्रियामार्ग' ऐसा ही अर्थ विवक्षित होता है पर यहाँ पर विशेष अर्थ में खरतरगच्छीय विधि-क्रिया-मार्ग ऐसा भी अर्थ अभिप्रेत है। क्योकि खरतरगच्छ का दूसरा नाम विधिमार्ग है और इस सामाचारी में जो विधि-विधान प्रतिपादित किये गये है वे प्रधानतया खरतरगच्छ के पूर्व आचार्यों द्वारा स्वीकृत और सम्मत है। इन विधि-विधानो की प्रक्रिया में अन्यान्य गच्छ के आचार्यो का कही कुछ मतभेद हो सकता है और है भी सही। अतएव ग्रन्थकार ने स्पष्ट रूप से इसके नाम मे किसी को कुछ भ्रान्ति न हो इसलिये इसका 'विधिमार्गप्रपा' ऐसा अन्वर्थक नामकरण किया है। इसलिये इसका यह 'विधिमार्गप्रपा' नाम सर्वथा सुन्दर, सुसगत और वस्तुसूचक है ऐसा कहने मे कोई अत्युक्ति नही होगी।

अन्य सामाचारी-ग्रन्थ

वैसे तो जिनप्रभसूरि ने इस ग्रन्थ में कतिपय आचार्यों और ग्रन्थो के नाम—मानदेवसूरि (पृ० २५), जिनवल्लभसूरिकृत पौषधविधि (पृ० २२) पादलिप्तसूरिकृत निर्वाणकालिका (पृ० ६७), श्रीचन्द्रसूरिकृत प्रतिष्ठासग्रह

(पृ० १११), कथारत्नकोष[1] (पृ० ११४), और सैद्धान्तिक श्रीविनयचन्द्र-सूरि (पृ० ११९), योगविधान (पृ० ५८) तथा महानिशीथ आवश्यकचूर्णि आदि दिये हैं किन्तु 'बहुविह सामायारी ओ दट्ठु' के अनुसार तत्समय में प्रचलित सामाचारी ग्रन्थो का उल्लेख नही किया है। सभवत उस समय तक प्रचलित उमास्वातिकृत पूजाप्रकरण, हरिभद्रसूरिकृत प्रतिष्ठाकल्प, राज-गच्छीय सिद्धसेनसूरि कृत सामाचारी, अजितदेवसूरिकृत योगविधि (र० स० १२७३), श्रीतिलकाचार्यकृत सामाचारी एव श्रीचन्द्रसूरीकृत प्रतिष्ठा-कल्प एव सुबोधा सामाचारी आदि ग्रन्थ उनके सन्मुख अवश्य रहे होंगे।

चन्द्रगच्छीय श्रीतिलकाचार्य[2]-कृत सामाचारी[3] एव श्रीचन्द्रसूरि[4]-कृत सुबोधा सामाचारी[5] ग्रन्थ से तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि तत्स-मय मे प्रचलित न केवल वैधानिक विषय ही अपितु क्रिया-पद्धति भी एक ही थी। केवल कही-कही स्वगच्छीय मर्यादानुसार अन्तर प्रतीत होता है। ये दोनो सामाचारी-ग्रन्थ सक्षेप मे विषय का प्रतिपादन करते है, वहाँ उन्ही विषयो का प्रतिपादन विधिमार्गप्रपाकार विस्तार के साथ करते हैं, ताकि उस समय क्रियाकार को अन्य किसी सहाय्य की जरूरत न रहे। योग-विधि, पदस्थापनविधि एव प्रतिष्ठाविधिप्रकरण का तो अध्ययन करने

---

१ विधिमार्गप्रपा पृ० १११ में ध्वजारोपणविधि के जो ५० पद्य दिये गये हैं वे देवभद्रसूरिकृत कथारत्नकोष पृ० ८६, गा० १७ से ५५ और पृ० ७१ गाथा ११४ से १२४ तक के हैं।

२ चन्द्रग० शिवप्रभसूरि के शिष्य थे। इनका रचनाकाल १२६१ से १३०२ है। विशेष अध्ययन के लिये देखे, जै० सा० स० इ० ५६२

३. शाह नागरदास प्रागजी भाई दोमी, वाडानी पोल, अहमदाबाद से प्रकाशित।

४. देखें, वल्लभभारती।

५ देवचद लालभाई पुस्तकोद्धारफड सूरत से प्रकाशित।

पर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो इस विषय के ये मौलिक एवं स्वतत्र ग्रन्थ ही हो।

इन दोनो सामाचारी ग्रन्थो के साथ विषय साम्य ही नही, अपितु कतिपय प्रकरण तो अक्षरश जैसे के तैसे प्राप्त होते है। उदाहरण के लिये तुलना कीजिये —

विधिमार्गप्रपा	सुबोधसामाचारी
उपधानविधि, पृ० १२	पृ० ६
पचनमोक्कारेकिल० गा० ५४	
कल्लाणकदादि ८ गाथा० ११	,, ३८
सावज्जकज्जादि० गा० ९ १५	,, ३८
जइसिद्धाणादि० गा० ५ १०३.	,, ४४
युइराणमंतनासो आदि० गा० ६ १०३	,, ४७

× × ×

	सामाचारी
अरिहाणनमो पूय आदि गा० ३६ पृ० ३१	पृ० ४
पचनमोक्कोर किल आदि गा० ५४. पृ० १२	पृ० ६ गाथाओ का हेरफेर अवश्य है।
असखय जीविय आ० गा० १८ पृ० ४९	३५

× × ×

'सुबोधसामाचारी' तथा 'सामाचारी' मे प्रतिपाद्य विषयों का सक्षेप में प्रतिपादन किया गया है जब कि विधिमार्गप्रपा में समग्र विषयो का विशद शैली में निरूपण किया गया है और सुबोधा सामाचारी में 'आलोचना-विकार' नही है एव सामाचारी मे 'प्रतिष्ठाधिकार' नही है जब कि इन दोनो अधिकारो का भी इस ग्रन्थ में विस्तृत रूप में प्रतिपादन किया गया है।

'निर्वाणकलिका' वस्तुत प्रतिष्ठाविधि ग्रन्थ है। इसमें २९ विधियाँ है,

यहाँ 'विधि' शब्द प्रकरण या अधिकार-सूचक है। दीक्षाविधि एवं आचार्याभिषेकविधि के अतिरिक्त समग्र विधिया प्रतिष्ठाविधान से ही सम्बन्ध रखती है। प्रतिष्ठाविधान इतना विस्तृत निरूपण अन्य किसी ग्रन्थो में प्राप्त नही होता। निर्वाणकलिका के सन्मुख विधिप्रपा की 'प्रतिष्ठाविधि' भी सक्षिप्त-सी प्रतीत होती है।

विधिप्रपा के पृष्ठ ११०-१११ में श्रीचन्द्रसूरिकृतप्रतिष्ठासग्रहकाव्यानि के ७ पद्य उद्धृत हैं। ये सातो पद्य श्रीचन्द्रसूरि रचित सुबोधासमाचारी में प्रतिष्ठाविधि में प्राप्त नही हैं। अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीचन्द्रीय प्रतिष्ठाविधि का साराश ग्रन्थकार जिनप्रभसूरि ने इन ७ पद्यो मे गुफित किया हो।

प्रतिपाद्य-विषय

इस सम्बन्ध में विधिमार्गप्रपा की सम्पादकीय प्रस्तावना में मुनि जिनविजयजी ने बडे विस्तार से प्रकाश डाला है जो अविकल रूप से इस प्रकार है[1] —

"जैसा कि इसके नाम से ही सूचित होता है—यह ग्रन्थ साधु और श्रावक के जीवन में कर्त्तव्य कर्म नित्य और नैमित्तिक दोनो ही प्रकार की क्रिया-विधियो के मार्ग में सचरण करनेवाले मोक्षार्थी जनो की जिज्ञासारूप तृष्णा की तृप्ति के लिये एक सुन्दर 'प्रपा' समान है। इसमें सब मिलाकर मुख्य ४१ द्वार यानी प्रकरण हैं। इन द्वारो के नाम, ग्रन्थ के अन्त में, स्वय शास्त्रकार ने १ से ६ तक की गाथाओ में सूचित किये है। इन मुख्य द्वारों में कही-कही कितनेक अवान्तर द्वार भी सम्मिलित है जो यथास्थान उल्लिखित किये गये हैं। इन अवान्तर द्वारो का नाम निर्देश, हमने विषयानुक्रमणिका मे कर दिया है। उदाहरण के तौर पर, २४ वें 'जोगविही' नामक प्रकरण में, दशवैकालिक आदि सब सूत्रो की योगो-

---

१ सपादकीय प्रस्तावना, पृष्ठ आ.

दहन क्रिया के वर्णन करनेवाले भिन्न-भिन्न विधान प्रकरण है, और ३४ वे 'आलोयणविही' सज्ञक प्रकरण मे ज्ञानातिचार, दर्शनातिचार आदि आलोचना विषयक अनेक भिन्न भिन्न अन्तर्गत प्रकरण है। इसी तरह ३५ वे 'पइट्ठाविही' नामक प्रकरण मे जलानयनविधि, कलशारोपणविधि, ध्वजारोपण विधि—आदि कई एक आनुषगिक विधियो के स्वतत्र प्रकरण सन्निविष्ट है।

इन ४१ द्वारो—प्रकरणो में से प्रथम के १२ द्वारों का विषय, मुख्यत श्रावक जीवन के साथ सबध रखनेवाली क्रिया-विधियो का विधायक हैं, १३ वें द्वार से लेकर २९ वें द्वार तक विहित क्रिया-विधियाँ प्राय साधु जीवन के साथ सबध रखती है और ३० वें द्वार से लेकर ४१वें द्वार तक मे वर्णित क्रिया-विधान, साधु और श्रावक दोनो के जीवन के साथ सबध रखने वाली कर्त्तव्यरूप विधियो के सग्राहक है।

यह ग्रन्थ सचमुच ही जैन क्रिया-विधानो का परिचय प्राप्त करने के इच्छुको के लिये सुन्दर प्रपा-तुल्य एव सर्वश्रेष्ठ है। सारा ग्रन्थ प्राकृत गद्य मे लिखा हुआ है, बीच-बीच मे गाथाए भी उद्धृत की गई है जो अधिकतर पूर्वाचार्यों की है। आलोचनाग्रहणविधि पद्य ६४ (पृ० ९३-९६) तथा पिण्डालोचना विधानप्रकरणगाथा ७३ (पृ० ८२-८६) तो ग्रन्थकार द्वारा रचित स्वतन्त्र प्रकरण से है। विषय की दृष्टि से यह ग्रन्थ अलभ्य सामग्री प्रस्तुत करता है। समग्र-विधि-विधानो का ऐसा विशद और क्रमबद्धरूप अन्यत्र कही भी नही मिलता। यही कारण है कि परवर्ती समस्त गच्छो के विधान-ग्रन्थकारो ने किसी न किसी रूप में, अश रूप से या पूर्णरूप से इस ग्रन्थ का अनुकरण किया है और इसे आदर्शरूप में माना है।

इस ग्रन्थ की रचना-समाप्ति वि० स० १३६३ विजया दशमी के दिन कोशलानगर अर्थात् अयोध्या नगरी में हुई है। यह ग्रन्थ मुनि जिनविजय जी द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हो चुका है।

विधि-विधान के अन्य ग्रन्थ

विधिमार्गप्रपा के अतिरिक्त आचार्य जिनप्रभ ने देवपूजाविधि, प्रायश्चित्तविशुद्धि, एवं व्यवस्था-पत्र नामक लघु ग्रन्थो की भी रचना की है। इन ग्रन्थो का क्रमश परिचय इस प्रकार है

देवपूजा विधि—जैन उपासक के लिए देवपूजन अवश्य और नित्य कर्त्तव्य होने से इस विधि में गृहप्रतिमापूजाविधि, चैत्यवन्दनविधि, छत्र-भ्रमणविधि, पञ्चामृतस्नानविधि और शान्तिपर्वविधि का विस्तार से प्रतिपादन किया गया है। पादलिप्तसूरि कृत निर्वाणकलिका की मान्यताओ और परम्पराओ का भी ग्रन्थकार ने कई स्थानो पर उल्लेख किया है। अष्टाह्निका में सघ का चन्द्रबलादि की अपेक्षा से तिथि-सम्बन्धी मन्तव्य का उल्लेख करते हुए "पूज्य श्रीजिनदत्तसूरीणामाम्नाये" वाक्य का प्रयोग किया है। इससे स्पष्ट है कि श्रीजिनदत्तसूरि का इस सम्बन्ध मे कोई ग्रन्थ अवश्य होगा या उनकी 'मान्यता' परम्परारूप मे प्रचलित होगी किन्तु वर्तमान समय में दोनो अनुपलब्ध हैं। यह 'विधि' विधिमार्गप्रपा के साथ प्रकाशित हो चुकी है।

पूजाविधि—इस विधि में वन्दनस्थानविवरण, प्रत्याख्यानविवरण, शान्तिपर्वविधि एवं चौरासी आशातनाओ का ग्रन्थकार ने विस्तार से प्रतिपादन किया है।

प्रायश्चित्तविधि—इस विधि में साधुवर्ग के लिए प्रायश्चित्त का विधान है। जीवन मे सामान्य या विशेष जो कोई दोष या अपराध हुए हो, उनका परिहार एवं परिमार्जन करने हेतु आलोचना का विधान है। दोषो के आधार पर दण्ड-प्रायश्चित्त दिया जाता है।

व्यवस्थापत्र—इसमे स्वगच्छीय सामाचारी के पालन कर्त्ताओ के लिए २२ व्यवस्थाओ का विधान किया गया है।

पूजाविधि, प्रायश्चित्तविधि और व्यवस्थापत्र ये तीनो ही ग्रन्थ

अप्रकाशित है और इनकी एक मात्र प्रतिया जैन साहित्य मन्दिर, पालीताणा मे क्रमश ५९९, ४९० एवं ५९९ पर प्राप्त है।

मन्त्र साहित्य

जैन साहित्य में विधि-विधानो मे प्रयुक्त होनेवाले मन्त्रो की सख्या भी वहुत अधिक है। 'ॐ नमो अरिहन्ताण' वौद्ध शीलत्रय की तरह जैन-शासन का मूलाधार माना जाता हैं। जिनप्रभसूरि महाप्रभावक आचार्य थे। इसलिए मन्त्रो की ओर उनका ध्यान जाना भी अनिवार्य था। मन्त्र-साहित्य से सम्वन्धित उनके ग्रन्थ ये है –'ह्रीँकारकल्पविवरण, सूरिमन्त्र-वृहत्कल्पविवरण, चूलिका, रहस्यकल्पद्रुम, वर्धमानविद्यकल्प, शक्रस्त-वाम्नाय, अलङ्कारकल्पविधि, पञ्चपरमेष्ठिमहामन्त्र स्तव, गायत्रीविवरण आदि।

ह्रीँकारमन्त्रविवरण मे ह्रीँकारमन्त्र की महत्ता का वर्णन करते हुए उसकी प्रयोगविधि पर प्रकाश डाला गया हैं। ह्रीँकारमन्त्र को चौवीस तीर्थङ्करो, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादि सव देवताओ से युक्त माना गया है। इससे भाग्यहीन को भी सिद्धि मिलती है। इसके जाप से सभी देवी-देवता सिद्ध होते है। सभी प्रकार के भय दूर होते है। वृद्धि प्राप्ति, शत्रु-उच्चाटन, द्रव्यप्राप्ति आदि के लिए इस ग्रन्थ मे विभिन्न उपायो से ह्रीँकार मन्त्र प्रयुक्त करने की विधि दी गई है। इससे पद्मावती देवी भी प्रसन्न होती है।

वर्धमानविधाकल्प प्राकृतभाषा मे है। उपाध्याय पद धारक साधु के लिये आराधना विषयक विधान दिया गया है।

सूरिमन्त्रवृहत्कल्पविवरण में सूरि-मन्त्राक्षरो का फलादेश सस्कृत गद्य-पद्य मे प्रस्तुत किया गया है। इन मन्त्रो का आराधन करनेवाला आचार्य धर्मोन्नति के साथ आत्मकल्याण करने में भी समर्थ होता है। ग्रन्थ में विद्यापीठ, महाविद्यापीठ, उपविद्यापीठ, मन्त्रपीठ, मन्त्रराजपीठ आदि पाँच

प्रस्थानो के मन्त्रो का खरतरगच्छीय पद्धति से प्रयोग दिखाया गया है। चूलिका मे भी इसी विषय का प्रतिपादन है।

रहस्यकल्पद्रुम नामक ग्रन्थ मे जैन-समाज मे प्रचलित अनेक मन्त्रो के इष्ट प्रयोगो का अनुकथन है। पूर्णग्रन्थ प्राप्त न होकर कुछ प्रयोग मात्र ही प्राप्त है।

शक्रस्तवाम्नाय मे जैन-साहित्य मे सर्वाधिक प्रसिद्ध 'नमोत्थुण' स्तव पर परम्परागत मन्त्रविधानो और साधनो के प्रयोगो का कथन है।

'गायत्रीविवरण' मे गायत्री आचार्य ने वेदो के सारभूत गायत्री मन्त्र की सक्षिप्त व्याख्या की है। गायत्री की उत्पत्ति के विषय में ग्रन्थकार ने लिखा है —

स्वयम्भुवादभवत्फेन फेनादर्जनवुद्वुद ।
वभूव वुद्वुदादण्डमण्डात् ब्रह्मा ततोऽनलः ॥
अनलादभवद् वायु वायोरोङ्कारमेव च ।
ओङ्कारादपि गायत्री सावित्री च ततोऽभवत् ॥

अर्थात् स्वयम्भुव परब्रह्म से फेन के रूप मे सृष्टिवीज उत्पन्न हुआ। फेन से वुद्वुद हुआ। वुद्वुद से अण्डा (हिरण्यगर्भ) और उससे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। फिर अग्नि, उससे वायु, और वायु से शब्दब्रह्म ॐ पैदा हुआ। ॐ से गायत्री व सावित्री का जन्म हुआ।

आगे गायत्री का स्वरूप वतलाया गया है

धेनुरूपाभवेदेपा त्रिपादा पञ्चशीर्षका ।
त्रिवर्णा च त्रिनासा च चतुर्विंशति देवता ॥

अर्थात् गायत्री के भू, भुव, स्व त्रिपाद है, ऋग्वेद, शिक्षा, कल्प, निरुक्त और ज्योतिप-ये पञ्चशीर्ष हैं। रक्त, श्वेत और कृष्ण-ये तीन वर्ण हैं, इसके तीन नासिका है और इसमें २४ देवता निवास करते है, ऐसी गायत्री धेनुरूपा है।

आगे २४ देवताओ के नाम गिनाते हुए गायत्री के प्रत्येक अक्षर की युक्तियुक्त व्याख्या की है। यह विवरण अप्रकाशित है।

ऐतिहासिक

आचार्य जिनप्रभ का एक अन्य बडा ग्रन्थ 'विविध-तीर्थकल्प' है। यह ऐतिहासिक व भौगोलिक महत्त्व का ग्रन्थ है। इसकी रचना वि० स० १३८९ मे पूर्ण हुई। इसमे वर्णित विविध तीर्थो से सम्बन्धित कल्प विभिन्न काल की रचनाएँ है। वैभारगिरिकल्प की रचना १३६४ में, शत्रुञ्जय कल्प की रचना १३८५ में, ढीम्पुरीतीर्थस्तोत्र की १३८६ में, पावापुरी-कल्प की १३८७ में, महावीरगणधरकल्प की १३८९ में और हस्तिनापुर-तीर्थ स्तोत्र की रचना १३९० में हुई थी। इस ग्रन्थ में सौराष्ट्र, गुजरात, मालवा, राजपूताना, मध्यदेश, पूर्वदेश और दक्षिण भारत के जैन तीर्थों का विश्वसनीय प्राचीन इतिहास मिलता है। यह आचार्य के तीर्थयात्रा-सम्बन्धी निजी अनुभवो का एव परम्परागत ऐतिह्य तथ्यों का प्रामाणिक संकलन है।

ग्रन्थ में शत्रुञ्जय, उज्जयन्त (गिरनार), स्तम्भन (खभात), अहिच्छत्रा, अर्बुद (आबू), मथुरा, अश्वावबोध (भडौंच), वैभारगिरि (राजगृह), कौशाम्बी, अयोध्या, पावापुरी, कलिकुण्ड, हस्तिनापुर, सत्यपुर (साचोर), अष्टापद, मिथिला, रत्नपुर, कन्यानयन, प्रतिष्ठानपत्तन (पैठण), नन्दीश्वर, काम्पिल्यपुर, शखपुर, नासिक, हरि-कखी पार्श्व, शुद्धदन्ती, चम्पापुरी, पाटलिपुत्र (पटना), श्रावस्ती, वाराणसी, कोकापार्श्व, (पाटण), कोटिशिला, चेल्लणपार्श्व (ढिम्पुरी), कुण्डगेश्वर (उज्जैन), माणिक्यदेव (कुलपाक-दक्षिण,), फलवर्द्धि (फलौदी), आदि तीर्थो तथा कपर्दियक्ष, कोहंडियदेवी, अम्बिकादेवी, आरामकुण्ड-पद्मावतीदेवी, व्याघ्री, मन्त्रीश्वर वस्तुपाल-तेजपाल आदि तीर्थभक्तो का परिचय दिया गया है।

ग्रन्थकार ने तीर्थों व तीर्थभक्तो से सम्बन्धित घटनाओ का सस्कृत व प्राकृत भाषा मे, गद्य व पद्य मे प्रामाणिक वर्णन किया है जिससे उस समय की स्थिति का पता चलता है। स्वय आचार्य जिनप्रभ के जीवन की अनेक घटनाओ—जैसे सुलतान मुहम्मद की प्रसन्नता, फरमान, मूर्तियो का उद्धार, तीर्थो की रक्षा, प्रतिष्ठा आदि की सूचना इन तीर्थकल्पो से ही मिलती है। ३५६० श्लोक-प्रमाण के इस ग्रन्थ की योगिनीपुर (दिल्ली) मे समाप्ति की सूचना भी ग्रन्थ के अन्तिम समाप्ति काव्य से मिलती है।

इस ग्रन्थ का प्रामाणिक सस्करण मुनि जिनविजयजी द्वारा सम्पादित होकर सिंघी जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित हो चुका है।

जैन साहित्य

आचार्य जिनप्रभ जैनदर्शन, आगम, प्रकरण आदि साहित्य के भी परमगीतार्थ विद्वान् है। जैन-साहित्य पर इनका कोई मौलिक ग्रन्थ तो प्राप्त नही है किन्तु गुणानुरागकुलक, कालचक्रकुलक, उपदेशकुलक, परम-तत्त्वाववोधद्वात्रिंशिका, परमात्मद्वात्रिंशिका आदि दार्शनिक, सैद्धान्तिक एव औपदेशिक लघुकायिक प्रकरण ग्रन्थ अवश्य प्राप्त हैं। ये सभी प्रकरण अभी तक अप्रकाशित हैं।

जैनागम, प्रकरण और स्तोत्र आदि अनेक ग्रन्थो पर आपकी सुवोधा टीकाएँ उपलब्ध है। कुछ टीकाओ के नाम इस प्रकार हैं

कल्पसूत्र 'सन्देह 'विपौषधि' टीका, साधुप्रतिक्रमणसूत्र-'अर्थनिर्णय-कौमुदी' टीका, षडावश्यक-टीका, प्रव्रज्याभिधान-टीका, अनुयोगचतुष्टय-व्याख्या, अजितशान्तिस्तोत्र-टीका, नमिउणस्तोत्र-टीका, उपसर्गहरस्तोत्र-टीका, पादलिप्तीय वीरस्तोत्र-टीका और विषमपट्पदकाव्य-टीका।

कल्पसूत्र टीका

कल्पसूत्र जैनागमो में प्रसिद्ध सूत्र है। जिनप्रभ से पूर्व इस ग्रन्थ पर टिप्पनक आदि अवश्य प्राप्त थे किन्तु इस पर रहस्योद्घाटिनी कोई टीका

उस समय तक प्राप्त नही थी । आचार्य ने वि० सं० १३६४, अयोध्या मे रहते हुए कल्पसूत्र पर 'सन्देहविषौषधि' नामक टीका की रचना कर इस अभाव को पूरा किया। टीका सुबोध एव प्रामाणिक है और टीका का नाम भी अन्वर्थक प्रतीत होता है। परवर्ती प्राय समस्त टीकाकारो ने अपनी कल्पसूत्र की टीकाओ में—किरणावली, कल्पलता, सुबोधिका कल्पद्रुमकलिका, कल्पदीपिका आदि में किसी न किसी अश मे इस सदेहविषौषधि का अनुसरण किया ही है।

यह टीका हीरालाल हसराज द्वारा अवश्य प्रकाशित हुई है किन्तु इसका प्रामाणिक सस्करण प्रकाशित होने की अत्यावश्यकता है।

साधुप्रतिक्रमणसूत्र की अर्थनिर्णयकौमुदी-टीका का निर्माण वि० स० १३६४ अयोध्या में, उपसर्गहरस्तोत्र पर 'अर्थकल्पलता' टीका का १३६४ साकेत (अयोध्या) में, अजितशान्तिस्तोत्र पर 'बोधदीपिका' टीका का एव भयहर (नमिऊण) स्तोत्र पर 'अभिप्रायचन्द्रिका' का स० १३६५ दाशरथिपुर (अयोध्या) मे हुआ है ये सब ही टीकाये सुबोध, परिमार्जित एवं प्रामाणिक शैली में लिखी हुई है।

षट्पदविषमकाव्य विवृति मे सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के लगभग २१ पद्य हैं। पद्यो में अनेकार्थवाची श्लिष्ट शब्दो की अनेकधा आवृत्ति हुई है। इस क्रम से पद्य के अनेक अर्थ हो जाते है। एक श्लोक और उसकी जिनप्रभ द्वारा की गई टीका देखिये

हसनादमत देवं देवाना विभय भयम् ।
य भय भविना वादे वन्दे तं मदनासहम् ॥

हसनद०—त देवाना देव हरं वीतराग वा वन्दे इति सम्बन्धः। य कि विशिष्टम् ? हसस्येव नाद —शब्दस्तेन सुस्वरत्वान्मत-लोकाना सम्मत वीतराग। महेश्वरपक्षे तु हसेन नाद प्रसिद्धिर्यस्य हसवाहनत्वाद् ब्रह्मा उच्यते, तस्य मत पूज्यम्, ब्रह्मणोऽपि पूज्यत्वाद्। ईश्वरस्य शेषाणि सर्वा-

ण्यपि विशेषणानि पक्षद्वयेऽपि तुल्यानि । विभय विगत भयम् । पुन किंविशिष्टम् ? भयम्-सेव्यम् धातूनामनेकार्थत्वात् । कथा भविना क्व ? वादेविवादे, किमत्यसौ वादो सेव्यते यतो भयं ' 'य चन्द्रस्तमाह्लादकत्वात् । पुन '' ' भयोरपि कामविनाशकत्वात् । इत्यनुलोमप्रतिलोमश्लोकार्थ ।

स्पष्ट है कि उक्त श्लोक में शिव और वीतराग पक्ष के दो अर्थ निकलते हैं । सभी विशेषणो के दोनो पक्षो मे अलग-अलग अर्थ हैं ।

एक अन्य फारसी भाषा का पद्य देखिये

दोस्तीख्वान्दतुरा न वासइ (कु) या हामा चुनी द्रोग् हिसि ।
चीजे आमद वेसिदो दिलुसिरा वूदी चु नी कीवरु ॥
त वाला रहमाण वासइ चिरा दोस्ती निसस्ती इरा ।
अल्लाल्लाह तुरा सलामु वुचिरुक् रोजी मरा मे दहि ॥

दोस्तीख्वाद०—दोस्ती–अनुराग ख्वान्द–स्वामिन् तुरा नव न वासइ-नास्ति कुया–कस्मिन्नपि हामाचुनी-सर्वं द्रोग्-असत्य हिसि-तिष्ठति । आद्यपदार्थ यत चीजे य कोऽपि आमद-आजगाम वेसिदो-युष्मद् पार्श्वे दिलुसिरावूदी-सञ्जातभव्यमानस चुनी-ईदृश- कीवर -कर्म्मकर मात्रापि । (द्वितीयपदम्) तथा त वाला रहमाण तस्योपरि हरमाण वीतराग वास इति विद्यते । चिरा-कुत । दोस्ती निसस्ती-रागानुवन्ध इरा-अत कारणात् अल्लाल्लाह—पूजावाचको शब्दो तुरा-तुभ्य सलामु-नमस्कार । वुचिरुक्-महती-रोजी-विभूति मरा-मे दहीति-देहि ।

अपभ्रंश का एक पद्य भी देखिये

जत्तोसीलीमेलावा केहा धण उत्तावली पिअ मदमिणेहा ।
कन्न पवित्तडी जणु जाणइ दोरा विरड माणुस जो मरई तसु किस निहोरा ।

इस पद्य के टीकाकार जिनप्रभ ने चार भिन्न-भिन्न अर्थ दिये हैं । स्पष्ट है कि सारे पद्य दृष्टिकूट हैं । देखने पर ऊपर से कुछ दूसरा अर्थ ज्ञात होता है और निकलता कुछ और ही है । यह सस्कृत के राक्षसकाव्य

की परम्परा का ग्रन्थ है जिसे अपनी विवृत्ति से जिनप्रभ ने सरल, सुबोध बना दिया है।

उक्त कृतियो को देखने से स्पष्ट है कि आचार्य जिनप्रभ की प्रतिभा बहुमुखी थी। सस्कृत, प्राकृत, अपभ्र श, फारसी आदि अनेक भापाओ पर उनको समान अधिकार प्राप्त था। उनकी कवित्वशक्ति व विपय-विवेचनी-प्रतिभा अपने समय में बेजोड थी। धर्म के गूढ रहस्यो को वे समझते थे। धर्म पर उनकी प्रगाढ श्रद्धा थी। इसके उपरान्त भी उनकी विचारधारा उदार थी। उनके कई स्तोत्र और गायत्रीविवरण आदि ग्रन्थ इस बात की पुष्टि करते हैं। वे न केवल एक जैन उपदेष्टा के रूप में ही स्मरणीय हैं, वरन् धर्म व दर्शन के तत्त्वो के व्याख्याता, इतिहास की घटनाओ को सूचित करनेवाले, महाकाव्यकार, व्याकरण के तात्त्वज्ञ, टीकाकार आदि अनेक रूपो से युक्त एक असाधारण प्रतिभावान् विद्वान् थे और सबसे अधिक प्रसिद्धि उनकी स्तोत्रकार के रूप में है।

आचार्य जिनप्रभ का स्तोत्र-साहित्य

जिनप्रभ ने विशाल स्तोत्र साहित्य की रचना भी की है। ऐसा प्रसिद्ध है कि वे नित्यप्रति एकाध नवीन स्तोत्र की रचना करके आहार ग्रहण करते थे। उन्होने यमक-श्लेप-चित्र-छन्दोविशेप नयी-नयी प्रकार के ७०० स्तोत्रो की रचना की थी। इसका उल्लेख उनके सिद्धान्तागमस्तव की अवचूरि मे मिलता है

"पुरा जिनप्रभसूरिभि प्रतिदिन नवस्तवनिर्माणपुरस्सर निरवद्याहार-ग्रहणाभिग्रहवद्भि यमकश्लेपचित्रच्छन्दोविशेपादिनवनवभंगीसुभगा सप्त-शतीमिताः स्तवा.।"

इन स्तोत्रो की रचना तीर्थंकर, गणधर, तीर्थ, तीर्थरक्षक, शारदा-देवी, अपने गुरु आदि को उदेश्य करके हुई है। ये अपभ्रंश, प्राकृत, फारसी, संस्कृत आदि अनेक भापाओ मे रचित मिलते हैं। इसमें विविध छन्द, चित्रकाव्य आदि का प्रयोग हुआ है। कोई-कोई स्तोत्र-मत्र-

गर्भित है। ७०० स्तोत्रो मे से अब तक लगभग अस्सी स्तोत्र मिलते है, इनमें से कुछ स्तोत्र काव्यमाला (सप्तम गुच्छक), प्रकरणरत्नाकर (भा० २-४), जैनस्तोत्रसग्रह, जैनस्तोत्रसमुच्चय, जैनस्तोत्रसन्दोह आदि में प्रकाशित हुए है। पाटण, खभात, जैसलमेर, वीकानेर आदि के ज्ञानभडारो में खोज करने पर और भी मिल सकते हैं।

इन सभी स्तोत्रो में पड्भाषा-गर्भित-स्तोत्र अधिक आश्चर्य-प्रद है जिनमे फारसी-भाषा का भी साधिकार प्रयोग हुआ है। विदेशी भापा पर ऐसा अधिकार तत्कालीन अन्य भारतीय लेखको मे अलभ्य है। नीचे प्राप्य स्तोत्रो का विपयानुसार वर्गीकरण करके सामान्य परिचय दिया जा रहा है

चतुर्विंशति जिनस्तव

२४ तीर्थकरो की समवेत स्तुति मे प्रयुक्त स्तोत्रो की सख्या सवसे अधिक है। अव तक जिनप्रभ द्वारा रचित १३ चतुर्विंशति स्तवो का उल्लेख मिला है जिनमें ९ प्राप्य हैं। इनका परिचय इस प्रकार है

चतुर्विंशतिजिनस्तवो में २ स्तोत्र 'आ' से प्रारम्भ होनेवाले हैं। एक, जिसका उल्लेख मात्र मिलता है, का प्रारभ 'आनन्द-सुन्दर-पुरन्दर-नम्र' अक्षर-समूह से होता है। दूसरा, जिसका प्रथम श्लोक यह है

आनम्रनाकिपतिरत्नकिरीटरोचि नीराजितक्रमसरोजनिवासलक्ष्मी ।
उत्तापहेमपरमाणुमयप्रभो व श्री नाभिनन्दन-जिनाधिपति पुनातु ॥

इसमे वसन्ततिलका छन्द प्रयुक्त हुआ है। इसमें कुल श्लोको की सख्या २५ है। अन्तिम श्लोक में जिनप्रभ ने अपना नाम भी दिया है।

'ऋ' से प्रारम्भ होनेवाले तीन स्तोत्रो का उल्लेख मिलता है। एक स्तोत्र का प्रथम श्लोक इस प्रकार है

ऋपभनम्रसुरासुरशेखर-प्रणतयालुपरागपिशगितम् ।
क्रमसरोजमह तव मौलिना जिनवहे नवहेमतनुद्युते ॥ १ ॥

इस स्तोत्र मे २९ द्रुतविलम्बित छन्द प्रयुक्त हुए है। इसमें प्रत्येक श्लोक के अन्तिम चरण में ३-३ अक्षरो की आवृत्ति करके यमक का प्रयोग किया गया है। यमक आचार्य जिनप्रभ का प्रिय अलकार है। प्रस्तुत स्तोत्र से कुछ उदाहरण देखिये—

सुकृतिन कृतवर्मधराधवान्वयनभस्तलभासनभास्वर ।
श्रयत काचनवारिरुहच्छदच्छविमल विमल जगदीश्वरम् ॥१३॥
उपनमन्ति तमीश समुत्सुका प्रणयते वरितु सकलाश्रिय ।
जगति तुभ्यमनन्त नमस्क्रियामकलये कलये द्विनयेन य ॥१४॥
अवतु वर्मजिनेन्द्र कुभावना–रजनिनाशनसपृहयोदय ।
शममय समयस्तव सुव्रता तनय मा नयमामल विस्तर ॥१५॥

यमक प्रयोग करते हुए ही जिनप्रभ ने २४ वें श्लोक में अपना नाम भी रख दिया है

चलनकोटिविघट्टनचंचलीकृत मुराचल वीर जगद्गुरो ।
त्रिभुवनाशवनाशविधौ जिनप्रभवते भवते भगवन्नम ॥२४॥

दूसरे स्तोत्र में २९ द्रुतविलम्बित छन्द प्रयुक्त हुए है। इसमें भी उपर्युक्त रीति से यमकालकार का प्रयोग हुआ है। किन्तु इसमें केवल चतुर्थचरण का बन्धन नही है। चारो चरण यमकमय है। इसका प्रथम चरण उक्त विशिष्टता से युक्त देखिये —

ऋषभनाथ ! भवनाथनिभानन !
प्रसृतमोहतमोहननक्षम ।
दिश सुवर्ण ! सुवर्ण सुवर्णरुक् ।
परमकाममकाम ! विदीर्णरुक् !

तीसरे स्तोत्र में ३० द्रुतविलम्बित छन्द प्रयुक्त हुए है। प्रत्येक श्लोक के चतुर्थ चरण मे ३-३ अक्षरो के त्रिधा आवृत्ति होना इस स्तोत्र की प्रमुख विशेषता है। इसका प्रथम श्लोक इस प्रकार है

कुछ और यमक के उदाहरण देखिये—

त्वन्मते रमते श्रेयन् कमलायतनेत्र या ।
सा धी प्रिया मेऽस्तु कृत कमलायतनेत्रया ॥११॥
वासुपूज्य सविद्भास्त वन्धूकारुण्ययोगत ।
शरण त्वत्कनौ विश्व-वन्धूकारुण्ययोगत ॥१२॥

२८ वें शार्दूलविक्रीडित छन्द मे जिनप्रभ ने अपने नाम को बड़े ही अविकारपूर्ण ढग से चक्रबन्ध काव्य मे जड दिया है और इनमे श्लोक मे किसी प्रकार का दुर्बोधत्व नही आने पाया है—

लक्ष्म्या कुष्टिकर जि¹नेन्द्रमनघ भ⁶द्रावलीमन्दिर,
वन्दे तस्य गिर न²तभ्रमतम. सू⁵र्य धिया कारणम् ।
सार्वीयप्रथितप्र³भावमखिलारि⁴ष्टौघहानिप्रद
दम्भव्यालसृणि वरेण्यसमय रगद्गुण बोधिदम् ॥

काले अक्षरो के शब्दो मे अकित संख्यानुसार जिनप्रभ का नाम वर्णित है ।

अन्तिम १३ वाँ 'चतुर्विंशतिजिनस्तव' 'य' अक्षर से प्रारंभ होता है । इसमे ३० श्लोक हैं । इसका यह प्रथम छन्द है—

यं सततमक्षमालोपशोभितं सेवतेऽमरालीश ।
कमलासन स्वयम्भू स. श्रीमान्नाभिभूर्जयति ॥

पार्श्वजिनस्तव

इस स्तोत्र में श्लेष का प्रयोग हुआ है । इसमें विष्णु, राम, कपिध्वज, उमा, प्रद्युम्न, राम, सौमित्र आदि देवी-देवताओ के नाम आये है जो जिनप्रभ की उदार विचारधारा को प्रकट करते है । श्लिष्ट-प्रयोगो से सारा स्तोत्र ही द्वयाश्रयकाव्य जैसा बन गया है । 'चतुर्विंशतिजिनस्तव' के बाद परिमाण की दृष्टि से 'पार्श्वजिनस्तव' का स्थान है । यद्यपि सख्या में ये उक्त स्तोत्रो से भी अधिक—१६ हैं परन्तु हैं अपेक्षाकृत छोटे । 'चतुर्विंशति-जिन-स्तवों' मे यमकालकार का प्रयोग ही विशेष उल्लेखनीय

है, परन्तु 'पार्श्वजिन-स्तवो' में अनेक प्रकार के प्रयोग देखने में आते है, यथा—नवग्रहगर्भित, पड्ऋतुमय, उपसर्गहरस्तोत्र की पादपूर्ति के रूप में, आदि । इनमें मालिनी, स्रग्धरा आदि बडे छन्दो व प्राकृत भाषा का प्रयोग भी हुआ है । अकारान्त क्रम के उनका परिचय यहाँ दिया जा रहा है ।

'अ' स्वर से प्रारम्भ होनेवाले दो पार्श्वजिनस्तव है । एक सस्कृत भाषा में और दूसरा प्राकृत में । सस्कृत पार्श्वस्तव में फलवर्द्धि (फलौदी) के मण्डन स्वरूप पार्श्व स्तवन है । इसमें ११ 'मालिनी' व १ 'शार्दूल-विक्रीडित' कुल १२ छन्द प्रयुक्त हुए है । इसके अन्तिम छन्द मे रचना-काल भी दिया हुआ है—

नन्दर्तुज्वलनक्षपाकर (१३६९) मिते सवत्सरे वैक्रमे,
राधस्याधिशितौ त्रयोदशिवुधे सघेन सार्द्ध सुधी ।
यात्रायै फलवर्द्धिकामुपगत स्तोत्र तवेद प्रभो,
श्रीमत्पार्श्वजिनप्रभो मुनिपति ससूत्रयामासिवान् ।। १ ।।

इसका प्रथम श्लोक इस प्रकार है—

अधियदुपनमन्तो यात्रिका प्रीतिपात्रा
अविकलफलशालि प्राणित मन्वते स्वम् ।
स जयति फलवर्द्धिस्थानक्लृप्तावतार-
स्त्रिभुवनभवनश्रीदीपकः पार्श्वनाथ ।।

दूसरा स्तोत्र प्राकृत-भाषा में है । पड्ऋतुवर्णनगर्भित होना इसकी प्रमुख विशेषता है । इसमें ७ प्राकृत गाथाएँ प्रयुक्त हुई हैं । प्रथम गाथा मे वसन्त-वर्णन के साथ पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है । देखिये—

असमसरणीय ज ओ निरतरामोय सुमणमहमहिओ ।
भमरहिओ पियसुहओ जय इव सतुव्व पासजिणो ।।

इसी तरह शरद् वर्णन—

उवसंतपकमग्ग विमलियभुवणासय अमलविसयं ।
सियपक्खाणदयर सेवह सरय व पासजिण ।।

ऋषभदेवमनन्तमहोदय
नमत त तपनीयतनूरुचम् ।
अजनि यस्य सुतो धुरि चक्रिणा
शुभरतो भरतो भरतोदरे ।।

इसी विशेषता से युक्त 'क' वर्ण से प्रारम्भ होनेवाला स्तोत्र २१ श्लोक वाला है। उसमे भी द्रुतविलम्बित छन्द प्रयुक्त हुआ है। इसके प्रथम दो श्लोक इस प्रकार है—

कनककान्तिधनु शतपचकोच्छ्रितवृषाकितदेहमुपास्महे ।
रतिर्जयिन प्रथम जिन नृवृषभ वृषभ वृषभञ्जिन ।।१।।
द्विरदलाञ्छितवाञ्छितदायक क्रमलुठत्त्रिदशासुरनायक ।
स्तुतिपर पुरुषो भवति क्षितावजित राजितरा जितराग ते ।।२।।

अन्तिम श्लोक में आचार्य ने अपना नाम भी दिया है -

करकृताम्रफला पृणतो जिनप्रभवतीर्थमिभारिमधिष्ठिता ।
हरतु हेमरुचि सुदृशा सुखव्युपरम परम परमम्बिका ।।

'ज' वर्ण से प्रारम्भ होनेवाला एक चतुर्विंशति स्तव है। यह बहुत छोटा स्तोत्र है। इसमें ८ छन्द प्रयुक्त हुए है—७ उपजाति व एक शार्दूल-विक्रीडितम्। प्रथम श्लोक इस प्रकार है—

जिनर्षभ प्रीणितभव्यसार्थ-समस्तदोषाजिततीर्थनाथ ।
श्रीशभवाखण्डलवधनवा स्वामिन् प्रजानामभिनन्दन त्वम् ।।

'त' से प्रारम्भ होनेवाला एक स्तोत्र है। इनमें २७ इन्द्रवज्रा और १ शार्दूल विक्रीडित छन्द प्रयुक्त हुए है। अन्तिम छन्द उपर्युक्त स्तोत्र का अष्टम छन्द हैं जिसमे आचार्य का नाम भी है। इस स्तोत्र के प्रत्येक चरण मे सखण्ड अथवा अखण्ड यमकालकार का प्रयोग हुआ है। यमक के इस प्रकार के बहुल प्रयोग के उपरान्त भी स्तोत्र में प्रसादगुण का अभाव नही हो पाया है। यह रचयिता की क्षमता का द्योतक है। प्रथम दो श्लोक अवलोकनीय है—

तत्त्वानि तत्त्वानिभृतेपु सिद्ध भावारिभावारि विशोपधर्मम् ।
दुर्वोधदुर्वोधमह हरन्तमारम्भमारम्भजताऽदिदेवम् ॥१॥
नेन्द्रा जिनेन्द्राजितेस्तवेल काहंतुकाहतुरथ नयस्य ।
मामत्रमामत्रतथापि कुंद दतावदतावलचिह्नदीनम् ॥२॥

'न' अक्षर से प्रारम्भ होनेवाले २ 'चतुर्विंशति जिनस्तव' हैं। एक छोटा है जिसमें केवल ९ द्रुतविलम्बित छन्द हैं। छोटा होते हुए भी प्रवाह और प्रसन्न-यमक प्रयोग की दृष्टि से यह उत्कृष्ट स्तोत्रो मे गिना जा सकता है। इसके प्रथम दो छन्द देखिये—

नत सुरेन्द्र जिनेन्द्र युगादिमाजित जिता किल कर्ममहारिपो ।
अभव सभव सभवनाथ मे प्रणत कल्पतरो कुरु मंगलम् ॥१॥
त्वमभिनन्दन नन्दननाथ मे ध्रुवगते सुमते सुमते सदा ।
सुकृतसद्म सुपद्म जिनेश मे प्रवरतीर्थपते कुरु मंगलम् ॥२॥

दूसरे स्तोत्र में २५ छन्द हैं। इसका प्रारम्भ 'नाभेय शोचि निर्ममो' शब्दों मे होता है।

'प' अक्षर से प्रारम्भ होने वाले स्तोत्र दो है। एक मे २९ श्लोक हैं। छन्द उपजाति प्रयुक्त हुआ है। अनायास ही आजानेवाले अनुप्रासो की छटा इसमें भी दर्शनीय है। इसका प्रथम श्लोक है—

पात्वादिदेवो दशकल्पवृक्षा यस्मादधीत्येहितदानविद्याम् ।
अपूपुजन् यच्चरणौ नखालिव्याजेन नून नवपल्लवै स्वै ॥

अन्तिम श्लोक में जिनप्रभ ने अपना नाम भी दिया है। दूसरे स्तोत्र में २७ अनुष्टुप् छन्द है। प्रत्येक श्लोक के द्वितीय चरण के अक्षरो को चतुर्थ चरण में दुहराया गया है। खड-यमक व श्लेष का प्रयोग इस स्तोत्र की सबसे बडी विशेषता है। इसका यह प्रथम श्लोक है—

प्रणम्यादिजिन प्राणी मरुदेवांग जायते ।
हरणे पापरेणूना मरुदेवाग जायते ॥ १ ॥

एक स्तोत्र 'क' वर्ण से प्रारम्भ होता है। इसमें १५ स्रग्धरा, १ शार्दूलविक्रीडित और १ वसन्ततिलका—कुल १७ श्लोक आये हैं। इसका प्रथम श्लोक इस रूप में है :

का मे वामेय शक्तिर्भवतु तव गुणस्तोमलेशप्रशस्तौ
न स्याद्यस्यामधीश सुरपतिसचिवस्यापि वाणी विलासः।
माने वा वार्धिवारां कलयति क इव प्रौढिमारूढधारा
भक्तिव्यक्तिप्रयुक्तस्तदपि किमपि ते सत्तव प्रस्तवीमि ॥

भाषा-प्रवाह व भावगुरुता की दृष्टि से यह स्तोत्र जिनप्रभ के सर्वोत्कृष्ट छन्दों में से एक है। एक उदाहरण पुनश्च देखिये—

संसाराम्भोधिवेला निविडजडमतिध्वान्तविध्वंसहंस
श्यामाश्यामाङ्गधामा शठकमठतपोधर्मनिर्माथिपाथ।
स्फारस्फूर्जत्फणीन्द्र प्रगुणफणमणिज्योतिरुद्द्योतिताशा-
चक्रश्चक्रिध्वज त्व जय जिन विजित द्रव्यभावारिवारः ॥ २ ॥

दो स्तोत्र 'ज' वर्ण से प्रारंभ होनेवाले हैं। दोनों संस्कृत में हैं। एक २१ श्लोकात्मक फलवर्द्धिपार्श्वस्तव है जिसमें २० उपजाति १ शार्दूलविक्रीड़ित छन्द है। इसका प्रथम श्लोक यह है—

जयामल श्रीफलवर्द्धिपार्श्व पार्श्वस्थनागेन्द्र पृथुप्रभाव।
भावल्लरी चेष्टितदिग्वितान तानर्चयाम स्तुवतेऽत्र ये त्वाम् ॥

दूसरा जीरापल्लीपार्श्वस्तव है जिसमें १४ इन्द्रवज्रा व १ शार्दूलविक्रीडित—कुल १५ छन्द प्रयुक्त हुए हैं। प्रत्येक छन्द में यमक अलंकार का प्रयोग भी यथास्थान हुआ है। अधिकतर प्रथम व तृतीय चरणों के अन्तिम अक्षरों की आवृत्ति द्वितीय व चतुर्थ चरण के प्रारम्भ में होती है। प्रथम दो श्लोक उदाहरणार्थ देखिये—

जीरिकापुरपतिं सदैव तं दैवतं परमहं स्तुवे जिनम्।
यस्यनाम जगतो वशंकरं शंकरं जपति मंत्रवज्जनः ॥

नायतत्तव मुखेन्दुदर्शन दर्शन च नयनामृत स्तुवे ।
येन मे दुरिततापहारिणा हारिणा लसति पुण्यवारिधि ॥

'द' वर्ण से प्रारंभ होनेवाला एक 'पार्श्वस्तव' है जिसमे १० प्राकृत गाथाएँ हैं। स्तोत्र नवग्रह-स्तुतिगर्भित है। इस प्रकार का प्रयोग भी नितान्त नवीन है। प्रथम दो गाथाओ को देखिए जिनमें प्रथम में सूर्य और दूसरे में चन्द्रमा की स्तुति के साथ पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है—

दोसावहारदक्खो नालीयायरवियासगोपसरो ।
रयणत्तयस्सजणओ पासजिणो जयउ जयचक्खू ॥
कयकुवलयपडिबोहो हरिणकियविग्गहो कलानिलओ ।
विहिआरविन्दमहणो दिअराओ जयइ पासजिणो ॥

'त' वर्ण से प्रारम्भ होनेवाला भी एक ही स्तोत्र है। इसमें ११ इन्द्रवज्रा छन्द प्रयुक्त हुए हैं। यह अष्टप्रातिहार्यमय है। प्रत्येक श्लोक मे द्वितीयचरण के शब्दो की चतुर्थचरण में आवृत्ति हुई है। सभग श्लेप की छटा सर्वथा दर्शनीय है। प्रथम श्लोक इस प्रकार है—

त्वा विनुत्य महिमश्रियाह पन्नगाकमठदर्पकोषिणम् ।
त्वा पुनामि किमपीनरक्षिता-पन्नगा कमरुदर्पकोपिणाम् ॥

दो उदाहरण और भी देखिये —

तादृश श्रवणस्तवोत्तमा कारकायवरदेशनाध्वने ।
प्रस्थित क इव पाप्मना निरा कारकायवरदेशनाध्वने ॥ ४ ॥
नाकिनामकयुगेन सादर चामरैर्विपदभागवीज्यसे ।
त्व न कैर्भव सुखाय मुह्ये चामरैर्विपदभागवीज्यसे ॥ ५ ॥

'प' वर्ण से प्रारभ होनेवाले तीन 'पार्श्वस्तव' है जिनमे एक प्राकृत में है जिसमें २२ पद्य हैं। इसकी विशेपता यह है कि इसमें सम्पूर्ण उवसग्गहर (उपसर्गहर) स्तोत्र की समग्र रूप मे पादपूर्ति हुई है। इसका प्रथम पद्य यह है—

पणमिय सुरनपूइया पयकमल पुरिसपुंडरीय पास ।
सघवण भत्तिचलणो, भणामि भवभमणभीममणो ॥

अन्तिम पक्ति में 'भ' व 'ण' अक्षर की आवृत्ति से उत्पन्न चमत्कार सर्वथा दर्शनीय है। उपसर्गहर-स्तोत्र की प्रथम गाथा है—

उपसग्गहर पास पासं वदामि कम्मघणमुक्क ।
विसहरविसनिन्नास मगलकल्लाणआवास ॥

आचार्य जिनप्रभ ने अपने स्तोत्र की पादपूर्ति दूसरे, तीसरे, चौथे आर पाँचवे पद्य मे की है—

उपसग्गहरं पासं पणमह नट्टट्ठकम्मदढपासं ।
रोसरिउभेयपास विणहिय लच्छीतणयवास ॥ २ ॥
ज जाणइ तं लुक्क पास वंदामि कम्मघणमुक्कं ।
जो झाइऊण सुक्क झाण पत्तो सिवमलुक्कं ॥ ३ ॥
विसहर विसनिन्नास रोमगइंदाइभयकयविमाणं ।
मेरुगिरिसन्निकास पूरिअ आस नमह पास ॥ ४ ॥
मरगयमणितणुभासं मंगलकल्लाण आवासं ।
ढालियभवसताप थुणिमो पास गुणपयास ॥ ५ ॥

अन्तिम पद्य में उवसग्गहर-स्तोत्रकार भद्रबाहुस्वामी और साथ ही अपना नाम भी जिनप्रभ ने जोड दिया है—

सिरिभद्दबाहुरइयस्स जिणपहसूरिहि म सपहाव ।
संथवणस्स समगस्स विहिय विवुहाणय पयस्स ॥२२॥

दूसरे 'प' वर्ण से प्रारंभ होनेवाले एक अन्य स्तोत्र में ८ उपजाति छन्द प्रयुक्त हुए है। इसकी प्रमुख विशेपता यह है प्रथम व तृतीय चरण के अन्त के अक्षरसमूह की दूसरे व चौथे चरण के प्रारभ में आवृत्ति की गई है। सभगश्लेप की छटा दर्शनीय है। इसमें प्रथम व द्वितीय पद्य उदाहरण के लिए पर्याप्त होगे—

पार्श्वं प्रभु शश्वदकोपमानदकोपमानं भववह्निशान्तौ ।
आरावता दत्तनिरतराय निरतराय पदमाप्तुमीडे ॥
मीक्षेजगन्नेत्र महाभयत्र महाभयत्रस्य तवाह्नियुग्मम् ।
पुण्य॰ स एवाऽ वसरोऽमराली सरोमरालीव निपेवते यत् ॥

तीसरे स्तोत्र का प्रारभ 'पार्श्वनाथमनघं' अक्षरो से होता है। इसमे ९ छन्द होने का उल्लेख मिलता है।

'स' अक्षर से प्रारंभ होनेवाला एक प्राकृत स्तोत्र। इसमे १२ छन्द है। प्रथम ११ आर्या छन्द है। अन्तिम वसन्ततिलका नामक छन्द है। इसमें भी प्रथम व तृतीय चरण के कुछ अक्षरो की आवृत्ति द्वितीय व चतुर्थ चरण के प्रारभ में होती है। एक शब्द वहुधा त्रिधा आवृत्त हुआ है। प्रथम दो छन्द उदाहरण के लिए देखिये—

सयलाहिवाहिजलधर समूहसहरणचंडपवमाण।
फलवद्धिपासनाह संथुणिमो फणय इट्ठफल॥
विहुयासं विहुयास विहुयासं पत्तमभिथुणन्ति तुम।
अमयरया अमयरया अमयरया णुगइखमवयणं॥

स्पष्ट है कि यह भी फलवर्द्धि पार्श्वनाथ का स्तवन है। एक अन्य फलवर्द्धिमण्डनपार्श्वस्तव 'श्री' अक्षर से प्रारम्भ होता है जिसमें ९ छन्द है। प्रथम व नवम छन्द संस्कृत में है शेप ७ प्राकृत मे। प्रथम छन्द यह है—

श्रीफलवर्द्धिपार्श्वप्रभुमोकार समग्रसौख्यानाम्।
त्रैलोक्याक्षरकीर्ति लक्ष्मीवीज स्तुवेऽर्हताम्॥

इस स्तोत्र के अन्तिम श्लोक में रचनाकाल भी दिया गया है—

विक्रमवर्षे करवसुशिखिकु (१३८२) मिते माघवासितदशम्याम्।
व्यधित जिनप्रभसूरिस्तवमिति फलवर्द्धिपार्श्वप्रभो॥

'श्री' अक्षर से प्रारभ होनेवाले ४ पार्श्वजिनस्तव और भी है। जिनमें एक स्तोत्र वहुत वडा है। इसमें ४३ अनुष्टुप् व १ द्रुतविलम्वित कुल ४४ छन्द प्रयुक्त हुए है। इस स्तोत्र की विशेपता यह है कि सभी विपम छन्दो (१,३,५ आदि) में द्वितीय चरण के सभी अक्षरो की आवृत्ति चतुर्थ चरण में हुई है। इसी तरह सम छन्दो (२,४,६ आदि) में प्रथम चरण के अक्षरो की आवृत्ति तृतीय चरण में हुई है। इस स्तोत्र का प्रारभिक छन्द है—

श्री पार्श्व श्रेयसे भूयादलितालसमानरुक् ।
अनन्ता ससृतिर्येन दलिताऽलसमानरुक् ॥ १ ॥

दो सम छन्द देखिये—

जिनास्यसारससार किं नेदानी वराक रे ।
जिनास्यसारस सारमद्य यद्वीक्षित मया ॥ ८ ॥
कल्याणगिरिधीरे मे त्वयि चेत् परमेश्वर ।
कल्याणगिरिधीरे मे करस्था सर्वसपद. ॥ १० ॥

इसी तरह दो विपम छन्द—

येन त्वदागम स्वामिन् स्याद्वादेनोपराजित. ।
निर्णीत स कुतीर्थ्यांना स्याद् वादे नो पराजित ॥ ३९ ॥
त्वद्गुणस्तुतिरऽभोदकान्ते यमकहारिणी ।
भव्यानऽवस्तु विज्ञाना कान्तेयमऽकहारिणी ॥ ४३ ॥

केवल सभगश्लेष के चमत्कार की दृष्टि से ही यह स्तोत्र महत्त्वपूर्ण नही है वरन् भावगुरुता और साथ ही भक्ति-भावना की दृष्टि से भी इस स्तोत्र को आचार्य जिनप्रभ के स्तोत्रो में विशेप स्थान दिया गया है ।

अन्य ३ पार्श्वजिनस्तव छोटे है । एक में ६ उपजाति व २ वसन्त-तिलका छन्द प्रयुक्त हुए है जिसके प्रत्येक श्लोक के प्रथम व द्वितीय तथा तृतीय व चतुर्थ चरणो में पादान्त यमक है । अपनी समस्त विशेपताओ से उपेत प्रथम छन्द देखिये—

श्री पार्श्वपादानतनागराज प्रोत्सर्पदेन कफनागराज ।
नता हृताऽसत् परिणामराग त्वा सस्तुम. स्थैर्य गुणाऽमराऽगम् ॥

इसी तरह अन्तिम वसन्ततिलका भी दृष्टव्य है—

इत्थ फणीन्द्रसततश्रितपार्श्वनाऽथ
स्त्री वा स्तव पठति यस्तव पार्श्वनाथ ।
तस्मै स्पृहामवृजिनप्रभवाय नव्या
लक्ष्मीविर्भति सुमन समवायनव्या ॥

अन्य पार्श्वजिनस्तव मे भी ९ छन्द व्यवहृत हुए है—८ अनुष्टुप् व अन्तिम १७ अक्षरो का हरिणीछन्द। सभी छन्दो के द्वितीय चरण के अक्षरो को चतुर्थ में दुहरा कर पादान्त यमक दिखाया है। इसके प्रथम दो छन्द हैं—

श्रीपार्श्वं भावत स्तौमि महोदविमगर्हितम्।
उद्धरन्तं जगद्दुखमहोदधिमगर्हितम्॥

दृग्गोचरं भवान् येषा प्रियगुरुचिरायते।
प्राप्नुवन्ति सुखं नाथ! प्रिय गुरु चिराय ते॥

तीसरे पार्श्वजिन-स्तोत्र मे ८ अनुष्टुम् छन्द है। प्रत्येक छन्द के प्रथमाक्षरो से आचार्य का नाम (श्रीजिनप्रभसूरय) बनता है। इस प्रकार अपने नामाक्षरो का प्रयोग करने की आचार्य की सूझ भी अद्भुत है। इसके प्रथम तीन श्लोक देखिये जिनमें 'श्री जिन' अक्षरो का प्रयोग है—

श्री पार्श्वं परमात्मानं त्रैलोक्याभयसाक्षिणम्।
विज्ञानादर्श सङ्क्रान्तलोकालोकमुपास्महे॥
जिन. त्वन्नाममन्त्र ये ध्यायन्त्येकाग्रचेतस।
दुराधामपि श्रेय. श्रिय सवनयन्ति ते॥
नमस्ते जगता पित्रे विधात्रे सर्वसम्पदाम्।
सवित्रे भव्यपद्मानामीशित्रे भुवनत्रयम्॥

वीर जिनस्तव

सख्या की दृष्टि से महावीर स्वामी की स्तुति में प्रयुक्त होने वाले वीर जिनस्तवो का तीसरा स्थान है। 'वीर जिनस्तव' १० हैं। जिनमें 'अ' से प्रारम्भ होनेवाला एक, 'क' से प्रारभ होनेवाला एक, 'च' मे प्रारम्भ होनेवाला एक, 'न' से प्रारभ होनेवाला एक, 'प' से प्रारम्भ होनेवाला एक, 'स' से प्रारंभ होनेवाला एक, 'व' से प्रारम्भ होनेवाला एक व 'श्री' से प्रारंभ होनेवाले ३ स्तोत्र हैं। इनमें से कुछ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। एक चित्रकाव्यमय है जिनमें कुल २७—२४ अनुष्टुप्, १ वसन्ततिलका व २ शार्दूल विक्रीडित छन्द है। इसका प्रथम श्लोक है—

चित्रै स्तोष्ये जिन वीर चित्रकृच्चरण मुदा ।
प्रतिलोमानुलोमाद्यै खड्गादिश्चाति चारुभि ॥ १ ॥

एकाक्षरपाद और एकाक्षर के उदाहरण देखिये—

लालल्लालोल्लीलाल ततताततिताल ते ।
ममाममामुममुमा ननानेननोनम ॥११॥
काकर्कि काककर्कैक केकाकोककेकिकम् ।
कककाकुककोकैक कक्कु कौकोक्काककम् ॥१२॥

एक श्लोक में चक्रबन्धचित्रकाव्य में कवि ने अपना नाम भी गुफित किया है—

भग्नाकृत्यपथो जिनेश्वरवरो भव्याब्जमित्रक्रिया-
दिष्ट तत्त्वविगान[२]दोषरहितै सू[५]क्तैस्तवैस्तर्पण. ।
जन्माचित्यसुखप्र[३]दा सरचितारि[६]ष्टक्षयो व सदा
दाता शोभनवादिधी कजदलायामेक्षण सविदा ॥

इस स्तोत्र मे मुरजबन्ध, गोमूत्रिका, सर्वतोभद्र, रथपद, अर्द्धभ्रम, खड्ग, मुशल, त्रिशूल, हल, धनु , शर, शक्ति, वीजपूर, हारबन्ध, चामर, चक्र, अष्टदलकमल, षोडशदलकमल आदि चित्रकाव्यो का प्रयोग हुआ है ।

इसी तरह एक दूसरे स्त्रोत्र के अन्तर्गत विविध छन्दो के नाम गर्भित हैं । इसमें २५ विविध श्लोक है । प्रथम श्लोक शुद्धविराट् देखिये—

कसारिक्रमनिर्यदापगाधाराशुद्धविराट्छदच्छविम् ।
छन्दोभिर्विविधैरधीरस्तोष्येऽह चरम जिनेश्वरम् ॥

एक अन्य श्लोक देखिये, जिसमें मालिनी नाम आया है—

अतिमहतिभवोर्मिमालिनीह भ्रमन्तो
जननमरणवीच्याघातदोदूयमान ।
कथमपि पृथुपुण्या प्राणिन. प्राप्नुवन्ति
प्रवहणमिव केचिच्छासन तावकीनम् ॥१७॥

एक अन्य स्तोत्र पचवर्गपरिहारमय है जिसमें २६ श्लोक है जिसका प्रारम्भ इस श्लोक से होता है—

स्व. श्रेयससरसीरुहसूरं श्रीवीर ऋषिवर सेव ।
सविशेषहर्षरसवशसुरासुरव्यूहसेव्याऽह्लिशा ॥

एक वीरस्तव में लक्षण प्रयोग मिलते है । उसमे १७ श्लोक आये है जिसका प्रारम्भ इस श्लोक से होता है—

निस्तीर्णविस्तीर्ण भवार्णव ञौ रुत्कर्णमाकर्णिनत्रर्णत्रादम् ।
सुपर्णमहोहि दमे सुपर्ण श्रीपर्णवर्णं विनुवामि वीर ॥१॥

समासो के लक्षणो का प्रयोग इस श्लोक में दृष्टव्य है—

द्विगोरिव तत्प्रणतस्य सख्या
पूर्वा प्रवृत्तिर्न कुतीर्थिकानाम् ।
विभो वहुव्रीहि समासदत्व-
मन्यार्थ एवोयदधासिवृत्तिम् ॥४॥

एक महावीरस्तव पंचकल्याणकमय है । इसमे ३६ श्लोक व्यवहृत हुए है । प्रारम्भ इस श्लोक से होता है—

पराक्रमेणेव पराजितोऽयम्
सिंह. सिषेवे घृतलक्ष्मदम्भ ।
सुखानि व खानिरय रमाणा
द्वैमातुरस्तीर्थकर करोतु ॥

अन्य स्तोत्र

दो स्तोत्र ऋषभदेव से सम्वन्धित है । जिनमें से एक में कान्तत्र-व्याकरण के सूत्रो को गुम्फित किया गया है । इसमें २३ श्लोक हैं प्रथम कुछ श्लोक देखिये जिनमें ग्रथित मूत्रो को रेखाकित किया गया है .

सिद्धोवर्णसमाम्नाय. स्तव जिह्वे चिरन्तन ।
शत्रुञ्जये त्रयल्लेभेऽनन्तसिद्धे यदास्पदम् ॥

दशाहि तीर्थ व्ययक्षनभोगक्षयात्मिका स्यु ईविणे चतस्र ।
श्रद्धालुभिस्तत्र चतुर्दशादौ स्वराः कृतार्थी क्रियतेऽत्र शैले ॥
तल्लेप्य विम्बमर्ह्त शैलेऽत्र स पूज्यते त्रैलोक्यापि ।
अर्हन् पूर्वो ह्रस्व· क्रियते येन च भव परो दीर्घः ॥
लोकोपचाराद् ग्रहणसिद्धिः स्यात् क्वापि कस्यचित् ।
सिद्धान्तामृतपूरे तु स्नात्यस्य महिमागिरे ॥
आवृत्तकालापकनामसंधि-सूत्रै. कवित्वैरिति पुण्डरीक ।
स्तुतो गिरि सम्प्रति सन्निवाय मुदास्तुवे श्रीऋषभ जिनन्द्र ॥

उन्ही से समन्वित चार युगादिदेव स्तव है जिनमें एक अष्टभाषामय है। इसमें ४१ विविध भाषाओं के छन्द व्यवहृत हुए हैं। इस स्तोत्र का प्रारभ इस सस्कृत आर्या से होता है—

निरवधिरुचिरज्ञान, दोषत्रयविजयिन सता ध्येयम् ।
जगदवबोध निवन्धनमादिजिनेन्द्र नवीमि मुदा ॥

प्राकृत भाषा का प्रारम्भिक छन्द है .

तमकसिणसप्परवयमो रमोरउल्ला हु ते किलिस्संति ।
तुह मासणापिवं जे कुणति विविहे तव किलेसे ॥ ५ ॥ .

मागधी भाषा का प्रारभिक पद्य देखिये

तुहश्चस्तिदभावस्तं गदप्रजेगमरपथवज्ज ।
ते यिणकुमदलक्खशवशे मिश्चादिस्टीपदे दिमवे ॥ ९ ॥

पैशाचीभाषा का प्रारम्भिक पद्य दृष्टव्य है

विवुधानरा चिआनत् अनज्ज सामज्जपुज्जतिसपज्ज ।
रतूणहितयके मे कतसिद्धि कुत विनीपनय ॥१३ ॥

यह एक अन्य पद्य चूलिकापैशाची का है .

काठसि नेहफलिता तुहवतन सेवते लमा अनरव ।
हातून फलं कुरु कुनप्पुग्गं सकलकमपि च विधु ॥१७॥

शौरसेनी भाषा का प्रारम्भिक पद्य है—

कुमुदमकधनिदान ता इह धर्माण विज्जदे भगव ।
चिन्दाविदावनय्येव भोदि पावाण नाध इमा ॥२१॥

पचीसवाँ पद्य समसंस्कृत का प्रथम श्लोक है—

हेमसरोरुहभास कलिमलकमलालिमघहिमभास ।
भवभयधूलिमहावल नाभेय भवतमभिवन्दे ॥

दस पद्य अपभ्रंश भाषा के हैं जिनमें प्रथम तथा क्रम से उन्तीसवाँ है—

तउ रेहइ अलि सामली चिहुरावलि भुवि पिट्ठि ।
निज्जिय रिउवलझाणदुगसुहउहण असिलट्ठि ॥२९॥

चालीसवें संस्कृत श्लोक में कवि का प्राकृत नाम शुभतिलक बडे ही कलात्मक ढग से गुफित है । देखिये—

नन्दासोरुविगु[1]द्धयोगरसभोन्मीलत्[4] प्रतोपोन्वित,
शस्त सौष्ठवभ[2]ग्नमोहरचन स्त्वं क[5] जहस्तच्छवि. ।
रुच्याभास्करति[3]ग्म सिद्धरमणी सक्लृप्तभाव. पर,
रता ज्ञानरमा शमास्तरुष मे तन्या. सुविद्या चिरम् ॥

अवचूरिकार ने आचार्य का प्राकृत नाम शुभतिलक दिया है । भाषा की विविधता के साथ सहजगभीर भाव की दृष्टि से यह स्तोत्र जिनप्रभसूरि के स्तोत्र-साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है ।

युगादिदेव ऋषभदेव से सम्बन्धित एक अन्य महत्त्वपूर्ण स्तोत्र शार्दूलविक्रीडित छन्द में विरचित है । इसमें ३३ श्लोक है । प्रथम श्लोक देखिये—

मेरौ दुग्धपयोधि वा प्लवमिपाज्जन्माभिपेके ध्रुव
यत्कीर्तिप्रकरा प्रसस्तुरभितो लोकत्रयी लड्घितुम् ।
नैव क्वापि कदापि युष्मदपर स्वामी करिष्याम (?) इ-
त्यङ्गस्पर्शनत प्रणीतशपथास्तं नाभिसूनुं स्तुमः ॥

इस स्तोत्र में भी भावो की अद्भुत स्रोतस्विनी प्रवहमान है। स्वयं रचयिता ने अन्तिम श्लोक में इस भावगर्भित स्तोत्र को 'सुधीजनश्रोत्र-सुधासुगन्ध' कहा है। देखिये—

सुधीजनश्रोत्रसुधासुगन्ध शार्दूलविक्रीडितवृत्तबन्ध ।
सतामय भावरिपुद्विपेपु शार्दूलविक्रीडितमातनोतु ॥३३॥

शेप तीन ऋषभदेव से सम्बन्धित स्तोत्र छोटे हैं। प्रत्येक मे ११ पद्य है। इनमें एक पद्य 'अल्लाल्लाहि' शब्दो से प्रारभ होता है और फारसी भापा में है। प्रथम पद्य देखिये—

अल्लाल्लाहि तुराह कीम्बरु सहियानु तु मराप्वाद ।
दुनीयक समेदानइ बुस्मारइ बुव चिरा न हुश्र ॥ १ ॥

दूसरा प्राकृत भापा में है। जिसका प्रथम पद्य देखिये—

नयगमभगपहाणा विराहि आराहि आवि सपमाणा ।
भवसिवदाणसमाणा जिणवरआणा चिर जयतु ॥ १ ॥

अन्तिम पद्य में रचयिता ने अपना नाम भी दिया है—

इइ विण्णत्तो जिणपहु ! जिणयहसूरीहि जगगुरु पढमो ।
विण्णत्तीइ पसाय निव्विग्घ कुणउ अम्हाणं ॥ १ ॥

उक्त स्तव का नाम रचयिता ने ऋपभदेवाज्ञास्तव दिया है। अन्तिम युगादिजिनस्तव में भी ११ श्लोक हैं। ये सब अनुष्टुप् छन्द मे हैं। इस स्तोत्र का यह प्रथम छन्द है—

अस्तु श्रीनाभिभूर्देवो विपत्त्रासनकर्मठ ।
पवित्र पोपयेन्नाक सुवर्माधिपति श्रिये ॥

अजितजिन से सम्बन्धित केवल एक स्तोत्र मिलता है। सभव है जिनप्रभ के अप्राप्त स्तोत्रो के उपलब्ध होने पर और भी मिल सकें। इस स्तोत्र में २१ श्लोक हैं। प्रथम बीस वसन्ततिलका छन्द है और अन्तिम शार्दूलविक्रीडित है। यह स्तोत्र भी बडा चमत्कार पूर्ण है। इसमे प्रत्येक

दो-दो चरणो में तुक मिलाई गई है। अन्त्यानुप्रास का ऐसा सफल प्रयोग सस्कृत साहित्य मे कम ही मिलता है। इस श्लोक का प्रथम श्लोक देखिये—

विश्वेश्वर मथितमन्मथभूपमान
देव क्षमातिशयसश्रितभूपमानम्।
तीर्थाधिराजमजितं जितशत्रुजात
प्रीत्या स्तवीमि यमकैर्जितशत्रुजातम्॥

अन्तिम चार अक्षरो की आवृत्ति दूसरे चरण में होने के कारण यह यमक तो है ही। कही सपूर्ण प्रथम चरण तृतीय चरण में आवृत्त हुआ है जिसमें सभंगश्लेष की छटा अपूर्व है। तीसरा श्लोक देखिये—

आनन्दकदलितमानसदैवतेन
स्तोतव्यय सुरपुरन्ध्रिकटाक्षपाश.।
आनन्दक दलितमानसदैवतेन
त्वामेकवीरमपहाय न मन्मथोऽन्यम्॥ ३॥

अष्टम श्लोक मे चारो चरणो में प्रथमचरण के शब्द ही दोहराये गए है फिर भी भावप्रेषण में किसी प्रकार की कमी न आने पाई है। देखिये—

सत्यादराजितसमानवकामदारो
सत्यादराजितसमानवकामदारो।
सत्यादराजितसमानवकामदारो
सत्यादराजितसमानवकामदारो॥ ८॥

यमक का चरमचमत्कार वहाँ देखने को मिलता है जहाँ सारा १२ वाँ श्लोक पुन तेरहवें के रूप में दोहराया गया है। दोनो श्लोको का अक्षर विन्यास सर्वथा दर्शनीय है—

सपन्नकामलसदागमनाभिभूत
भावारितापचितिकारसभारती ते।

भव्याय देहि तरसा तरसा प्रसिद्ध
भूमानमत्रभवती कमलायताक्ष ॥ १२ ॥

तथा—

सपन्न कामल सदागमनाभिभूत
भावारितापचिति का रसभा रती ते ।
भव्यायदेहितरसा तरसा प्रसिद्ध
भूमानमत्र भवती कमलायताक्ष ॥ १३ ॥

अन्तिम श्लोक में जिनप्रभ ने अपना नाम तो दिया ही है साथ ही 'आनन्दनिष्यन्दो' स्तोत्र को पापनाशक भी कहा है—

य त्रैलोक्यपितस्तव स्तवमिम सन्दृब्धवान् मुग्धधी—
रप्याचार्यजिनप्रभ श्रवणयोरान्दनिष्यन्दिनम् ।
भक्तिव्यक्तितरगरगमनसा पुसाममु सादर
पापं पापठता प्रयाति विलयं ससारनामारिपु ॥ २१ ॥

इसीतरह का एक अन्य चमत्कारपूर्ण स्तोत्र 'अरजिनस्तव' है । इसमे १४ छन्द है प्रथम तेरह पचदशाक्षरी श्लोक हैं । जिनमें ५ नगण एक साथ आये हैं अन्तिम शार्दूलविक्रीडित श्लोक है । लेखक ने पुष्पिका में इस स्तव को केवलाक्षरमय कहा है जिसमें किसी भी प्रकार की मात्रा का प्रयोग नही हुआ है । विना भाषा पर असाधारण अधिकार प्राप्त हुए ऐसा प्रयोग किया जाना असभव है । माघव और भारवि ने एकाक्षर व द्व्यक्षर श्लोक लिखे हैं परन्तु वे अर्थ की दृष्टि से अत्यन्त क्लिष्ट हो गए हैं । वहाँ जिनप्रभ का प्रयोग अद्भुत है जिसमें किसी भी तरह की अर्थ की हानि न होने पायी है । इसका प्रथम श्लोक है—

जय शरदशकलदशहयवदन
जय हतजगदसहनमदमदन ।
जय नतयमगतशमनजकदन
जय भगवदरपरमपदसदन ॥ १ ॥

इस सारे स्तवो मे अनुप्रासो का प्रयोग अपूर्व है। इस प्रकार का सफल प्रयोग कदाचित् मात्राओ के अभाव के कारण ही हो पाया है। अन्त्यानुप्रास की छटा भी निराली है। छेका, वृत्ति व अन्त्य अनुप्रासो को अपनी समस्त विशेपताओ के साथ नीचे के श्लोको मे देखिये—

नतशतमखतमखलजनमदर
गमयपरमपदमभयदसदर ।
नवनवभववनभवदशमगम
शकलनगजकलगतदनवगम ॥ ७ ॥

अनुप्रास के साथ यमक का प्रयोग इस श्लोक में दर्शनीय है—

समतसतममहपरमतकलस
गणधरगणधरगमरसकलस ।
भवदभवदपदलयलसदवम्
वनमवनमयसहनमहनवम ॥ १३ ॥

नेमिनाथ से सम्वन्धित भी एक ही स्तोत्र है। यह भी वडा ही चमत्कारपूर्ण है। इसमे २० विविध प्रकार के छन्द व्यहृत हुए है। प्रथम छन्द आर्या है। दूसरे से २० वें तक क्रमश वशस्थ, सुनन्दिनी, रथोद्धता, उपजाति, अनुष्टुप्, स्रग्विणी, द्रुतविलम्वित, रुचिरा, वसन्ततिलका, मृदग, स्वागता, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, वियोगिनी, औपच्छन्दिक, पुष्पिताग्रा तथा मॉलिनी है। इस स्तोत्र का नाम क्रियागुप्त नेमिजिनस्तव है। इसके नाम से ही प्रकट होनेवाली विशेपता यह है कि इसके प्रत्येक श्लोक में कोई क्रिया गुप्त रक्खी गई है जिसका रचयिता ने अलग से उल्लेख कर दिया है। इसका प्रारम्भ निम्न आर्या छन्द से होता है—

श्रीहरिकुलहीराकर, वज्रमणिर्वज्रपाणिनाप्रणत ।
त्ववद्यमुक्तनेमे, प्रणमुपा शेमुपीमशुभाम् ॥

इस श्लोक में आया हुआ 'अवद्य' शव्द अगले श्लोक की क्रिया के साथ प्रयुक्त होता है पर वह वहाँ लुप्त है। देखिये—

॥अवद्य॥ मयिप्रसाद प्रवण कृपानिधे
विधेहि शंवेय निज मनन्तथा ।
यथाजगन्नाथमधुव्रतव्रतं
भवे भवे तारक पादपद्मयो ॥

उक्त श्लोक का भवे रूप अगले श्लोक की क्रिया के साथ प्रयुक्त होता है जहाँ वह लुप्त है—

॥भवे॥ नयेन नेमे यदुवशमौक्तिक-
श्रिया निवासस्तव पादपकजम् ।
दु खोर्मिसघट्टविघट्टितात्मना
तेनाति गभीरतमे भवाम्बुधौ ॥

इसका 'आति' अगले श्लोक की क्रिया के साथ प्रयुक्त होता है। इसी तरह क्रम चलता गया है। सस्कृतप्रेमी राजाओ की विद्वन्मडली मे इस प्रकार के शब्द-चमत्कार बहुधा दिखाये जाते थे। जिनप्रभ ने इसी को लेकर एक स्तोत्र की रचना कर दी। यद्यपि रसवादी आलोचको को इस प्रकार के चमत्कार कभी प्रिय नही रहे। फिर भी यह कहना ही पडता है कि विना भाषा पर असाधारण अधिकार प्राप्त किए कोई भी लेखक इस प्रकार के चमत्कारो की सृष्टि नही कर सकता। इस स्तोत्र का अन्तिम श्लोक देखिये जिसमें 'अय' क्रियाग गुप्त है जो इसके पहले वाले श्लोक में आया है—

॥ अय ॥ निखिलजगता गोप्ता गुप्तक्रियास्तव सूत्रणा—
दितिकृतनुति सानन्द श्रीजिनसूरिभि ।
भवतु भवता- भेत्तु भूयो भवभ्रमसभव
भयमभयदो भीम श्रीमच्छिवातनय प्रभु ॥ २० ॥

चन्द्रप्रभ स्वामी से सम्बन्धित ३ स्तोत्र प्राप्य हैं। जिनमें एक अत्यन्त छोटा है जिसमें ५ अनुष्टुप् छन्द है। प्रत्येक दूसरे व चौथे चरण में अन्त्यानुप्रास का सफल प्रयोग मिलता है। यमक व अन्त्यानुप्रास का समन्वित-रूप छोटा होते हुए भी स्तोत्र को चमत्कारपूर्ण बना देता है। पहला श्लोक यह है—

देवैर्य स्तुष्टुवे तुष्टै सोमलाञ्छितविग्रह ।
दद्याच्चन्द्रप्रभ प्रीतिं सोमलाञ्छितविग्रह ॥

इस स्तोत्र का अन्तिम श्लोक देखिये—

पातु गीर्वा कृताविद्यो परमा कमलासना ।
यत् प्रभो वा जनैर्लेभे परमा कमलासना ॥ ४ ॥

दूसरा स्तोत्र चन्द्रप्रभ स्वामी के चरित्र को चित्रित करता है। यह प्राकृत भाषा में लिखा गया है। इसमें २२ प्राकृत पद्यो मे चन्द्रप्रभ का जीवन चरित उपस्थित किया गया है। इस स्तोत्र का प्रथम पद्य है—

चदप्पह ! चंदप्पह ! पणमिय चरणारविंदजुयल ते ।
भविय मवणामयपिव भणामि तुह चेव चरियलव ॥

चन्द्रप्रभ के जन्मस्थान व मातापिता का नाम इस पद्य में मिलता है—

तत्तो इह भरहद्धे चविड चदाणणाय नयरीए ।
महसेनराय-पणयिणि-लक्खणदेवीई कुच्छसि ॥ ४ ॥

चन्द्रप्रभ से सम्बन्धित तीसरा स्तोत्र षड्भाषामय है। इसमें विविध-भाषामय १३ पद्य है। प्रथम दो संस्कृत श्लोक है। स्तोत्र का प्रारभ निम्न श्लोक से होता है तथा प्रथम व द्वितीय तथा तृतीय व चतुर्थ चरण में तुक मिलाई गई है—

नमो महसेननरेन्द्रतनूज जगज्जनलोचनं भृङ्ग सरोज ।
शरद्भ्रवसोमसम द्युतिकाय दयामय तुभ्यमनन्तसुखाय ॥

इस प्रकार की तुक अन्य भाषाओं के पद्यो में भी मिलती है। तीसरा व चौथा पद्य प्राकृतभाषा के है। उनमें तीसरा देखिये—

जय निरसियतिहुयणजन्तु भति जय मोहमहीरुहदलनदति ।
जय कुन्दकलियसमदतपति जय जय चन्दप्पहवदकति ॥

पाँचवाँ पद्य शौरसेनीभाषा का है—

विगददुहहेदु मोहारिकेदूदय
दलिदगुरुदुरिदमव विहिदकुमदक्खयं ।
नावत नमदि जोसदहनदवत्सल
लहृदि निच्चदि गति सोदद निम्मलं ॥

छठा पद्य उक्त समस्त विशेषताओ से समन्वित मागधी भाषा का है—

असुल सुलविसलनयनाय सेविनपदे
नमिल जय जतु तुदि दिन्नसिवपुलपदे ।
चलन पुलनिलद संसालिसलसीलुदे
देहि महसामि तं सालि सासदपदे ॥

सातवाँ पैशाचीभाषा का पद्य है—

तलिताखिलतोसतया सतन, मदनानलनीलमनानगुण ।
नलिनारुण पाततला नमने, जिन नो इध तं स शिवं लभते ॥

आठवाँ चूलिका पैशाची भाषा का पद्य है—

कलनालिकनातुलतप्पहल, चलनीकल चालुयशप्पसलं ।
ललनाचनकीतकुनलुचिल, चिनलावमहसमलामि चल ॥

नवें व दसवें पद्य अपभ्रंश भाषा के हैं । ये हिन्दी भाषा के सोरठे के पूर्वरूप हैं । हिन्दी का प्रारंभिक रूप भी इनमें देखा जा सकता है । एक पद्य देखिये—

सासयसुक्खनिहाणु, नाह न दिट्ठो जेहिं नऊं ।
पुन्न विहूणउ जाणु, निफल जम्मु तिह नरपसुह ॥

शेष तीन पद्य सम संस्कृत भाषा के हैं । अन्त्यानुप्रास के सौन्दर्य की दृष्टि से ही नहीं, प्रवाह की दृष्टि से भी इनकी भाषा द्रष्टव्य है । एक श्लोक देखिये—

हारिहासहरहास कुन्दसुन्दरदेहाभय
केवलकमलाकेलिनिलय मजुलगुणगणमय ।

कमलारुणकरचरणचरणभरधरणधवलवल—
सिद्धिरमणिसगमविलासलालसमलमवदल ॥११॥

प्रवाह की दृष्टि से इसकी भाषा जयदेव की प्राजल सुमधुर पदावली की याद दिलाती है। जयदेव के गीत गोविन्द की भाषा को देखने से विश्वास होता है कि इस प्रकार की ललितभाषा की अवश्य ही कोई सुदीर्घ परम्परा रही होगी। जिनप्रभ के सारे स्तोत्र मिल सकें तो अवश्य ही कुछ उनमें ऐसे मिल सकते है जो इस परम्परा की शृखला में कडी का काम दे सके।

शान्तिनाथ से सम्बन्धित तीन स्तोत्रो से हम परिचित है। इनमें एक 'शान्तिनाथाष्टक' फारसी भाषा मे लिखा गया है। इनमे ९ पद्य है। इसका प्रथम पद्य देखिये—

अजिकुहकाफुजनूविशहरिहयिणापुरगो—
वनिपात साहि त्रिससेणु खिम्मिति ओ राया जेवनि
कौम्यो ऐरादेवि तविहि सीतारामानइ
जुजिय किसू हरिपासदिगरहियपियरादान इ
आदिगारिरोजिपु फूसिपु सेदरिनिगार खानैनिपो
छारिदहष्वावि अह सदिवइ आखरि सौविन इह मो।

छप्पय छन्द में फारसीभाषा का उक्त प्रयोग अनूठा है। अन्तिम पद्य मे जिनप्रभ ने समकालीन दिल्लीश्वर मुहम्मद (तुगलक) का नाम भी दिया है, जिसपर जिनप्रभ का अत्यन्त प्रभाव पडा था—

अशितेरीषमुहम्मद सनखमसचति सईन सित्तमिय।
फितरीदीशशिमिसराकउदा सुदीलति वामी ॥

दूसरे 'शान्तिजिनस्तवन' में २१ श्लोक है। जिनमें प्रथम २० अनुष्टुप् छन्द है व इक्कीसवाँ शार्दूलविक्रीडित है। प्रत्येक छन्द के द्वितीय चरण को चतुर्थ में दोहराया गया है। इस प्रकार यमक व अन्त्यानुप्रास का प्रयोग हुआ है। प्रथम छन्द देखिये—

श्री शान्तिनाथो भगवानष्टापदसमानरुक् ।
विभ्रद् गुणान् मया स्तोता-नष्टापदममानरुक् ॥

भावगौरव की दृष्टि से अन्तिम छन्द भी द्रष्टव्य है—

स्तुत्वा त्वामिति मार्गये मुहुरिदं श्रीनर्तकीनर्तने
नाटयाचार्य जिनप्रभजनमहाविघ्नाम्बुदाच्छादने ।
धत्ता सततमेव तावकगुणग्रामाभिरामस्तव-
प्रज्ञापारमितामपारमहिम प्राग्भारमद् भारती ॥ २० ॥

तीसरा स्तोत्र अभी तक नही मिल सका । इसमें २४ श्लोक है । यह भी वडा चमत्कार पूर्ण है । इसका प्रारभ 'शृगार भासुर सुरासुर' अक्षरो से होता है ।

एक स्तोत्र मुनिसुव्रत से सम्वन्धित है । यह सस्कृत भाषा मे है । इनमे इकतीस श्लोक हैं । अभी तक मिला नही है । प्राप्य सूचनानुसार यह भी वडा ही चमत्कारपूर्ण है । इसका प्रारभ 'निर्माय निर्माय गुणर्द्धि' शब्दो से हुआ है ।

आचार्य जिनप्रभ द्वारा रचित ३ गौतम स्वामी से सम्वन्वित स्तोत्र है । इनमें से एक 'गौतमाष्टक' है जिसमें ° अनुष्टुप् छन्द प्रयुक्त हुए हैं । इसका प्रथम श्लोक निम्न है—

ॐ नमस्त्रिजगन्नेतु वीरस्याग्रिमसूनवे ।
समग्रलब्धिमाणिक्यरोहणायेन्द्रभूतये ।

दूसरे 'गौतमस्तवन' में २१ विविध प्रकार के संस्कृत छन्द व्यवहृत हुए हैं । इसमें पहला शार्दूलविक्रीडित है । दूसरे से सतरहवें तक उपजाति छन्द हैं । अठारहवां वियोगिनी, १९वॉं वसन्ततिलका, २० वां रथोद्धता व २१ वां शिखरिणी छन्द है । इस स्तोत्र का प्रारभिक श्लोक देखिये—

श्रीमन्तं मगधेषु गोर्वर इति ग्रामोऽभिरामोऽस्ति य
स्तत्रोत्पन्नमसन्नचित्तमनिशं श्रीवीरसेवा विधौ ।

ज्योति- सश्रय गौतमान्वयवियत्प्रद्योतनद्योमणिम्
तपोत्तीर्ण सुवर्णवर्णवपुप भक्त्येन्द्रभूर्ति स्तुवे ॥

तीसरा 'गौतम स्तोत्र' प्राकृत भापा के २५ पद्यो में निवद्ध है। इस स्तोत्र मे गौतम स्वामी का जीवन चरित वडे ही सुन्दर शब्दो मे उपस्थित किया गया है। भापा वडी ही सुन्दर व सरस है। भावगर्भित भापा का परिचय इन प्रारभिक दो पद्यो में मिलेगा—

जम्मपवित्तियसिरिमगहदेस अवयस गुव्वरगाम।
गोयमगुत्त सिरिइदभूइगणहारिण नमिभो ॥
वसुभूइ कुलविभूपण ! जिट्ठाउडुजाय ! कचणच्छाय।
पुहवीउअरसरोरुहमराल ! त जयसु गणनाह ॥

अन्तिम पद्य में जिनप्रभ ने अपना नाम भी दिया है—

नमिरसुररायसेहरचुविअपय ! सथुओसि इअ भयव।
जिणपह मुणिद। गोयम मह उवरि पसीअ अविसाम ॥२५॥

आचार्य जिनप्रभ ने एक स्तोत्र अपने गुरु जिनसिंहसूरि की स्तुति में भी लिखा है। इस स्तोत्र को लेखक ने 'यमकस्तवकित' कहा है। अनुप्रासो की छटा तो दर्शनीय है ही। कही प्रथम चरण के शब्दो की आवृत्ति तृतीय चरण में हुई है तो कही द्वितीय चरण को चतुर्थ मे दोहराया गया है। प्रथम श्लोक देखिये—

प्रभु प्रदघान्मुनिपक्षिपक्ते-
नगारिरागोपचिर्ति सदान.।
समुद्वहन् श्रीजिनसिंहसूरि-
र्नगारिनागोपचिर्ति स दानः ॥

एक अन्य श्लोक देखिये जिसमें प्रथम चरण के अक्षरो की आवृत्ति तृतीय चरण में हुई है—

योगेन वीरोचित माननीय
श्रियस्तवोचे शशिनोपमानम्।

योगेन धीगेचित माननीय

प्रख्यातमूर्त्तं तमुदाहनाम ॥१०॥

अन्तिम छन्द भी द्रष्टव्य है—

श्रीमज्जिनेश्वरयतीश्वरपादपद्म

भृंगारभृन्नकरणिर्जिनसिंहसूरि ।

इत्थ स्तुतोऽस्तु यमकैं शमकैरवेन्दु-

रानन्दकन्दलनदुर्ललितो नतानाम् ॥१३॥

एक अन्य स्तोत्र सुधर्म स्वामी से सम्बन्धित है। इसमे २१ विविध प्रकार के छन्द हैं। वे क्रमश स्वागता, इन्द्रवज्रा, शार्दूलविक्रीड़ित द्रुत-विलम्बित, उपचित्रा, वैस्वदेवी, रुचिरा, शालिनी, शिखरिणी, गीति, इन्द्र-वज्रा, आर्या, अनुष्टुप्, वसन्ततिलका, चण्डवृष्टिदण्डक, मजुभाषिणी, माल-भारिणी, अपरान्तिका, रथोद्धता, स्रग्धरा व हरिणी हैं। स्तोत्र का प्रारम्भ इस श्लोक से हुआ है—

आगमत्रिपथगा हिमवन्त सनृतेर्नत समूहमवन्तम् ।

नौ ममानमभिनौमि सुधर्म-स्वामिनं महति मोहपयोधौ ॥

जिनप्रभ केवल छोटे श्लोक लिखने में ही सिद्धहस्त न थे वरन् बडा से बडा छन्द भी साधिकार लिखने मे समर्थ थे। उनके २७ अक्षरो के चण्डवृष्टिदण्डक को देखने से इस विषय में कोई सन्देह नही रहता।

जनुरभजत फाल्गुनीपूत्तरासु प्रधानद्विजश्लाघनीयाऽग्निवैशायना-

भिजनजलधिचन्द्रमाश्चण्डमतिण्डतुल्यप्रतापाभिभूताभियातप्रभ. ।

अविगतवति वर्द्धमाने जिनेन्द्रे शिवश्री परीरम्भलीला च य पादपो-

पगमनमुपगम्य वैभारशैले द्विपक्षीमवापाऽपवर्गं स जीयाद्भवान् ॥१५॥

एक स्तोत्र मगलाष्टक के नाम से है जिसमें ८ अनुष्टुप् छन्द है। प्रत्येक श्लोक के चतुर्थ चरण के अन्त में 'मंगलम्' शब्द आया है जो वल्लभाचार्य के मधुराष्टक के 'मधुर' शब्द से किसी भी तरह कम प्रभाव-

गाली नहीं है। इस स्तोत्र में बडे ही विनयपूर्वक श्रद्धानत होकर जिनप्रभ के भक्ति-आपूरित हृदय ने इष्टदेव को भावसुमन अर्पित किए है। किसी तरह का चमत्कार न होते हुए भी भावगरिमा के कारण यह जिनप्रभ के श्रेष्ठ स्तोत्रो मे गिना जा सकता है। स्तोत्र का प्रारभ इस श्लोक से हुआ है—

जितभावद्विपा सर्वविदा तत्त्वार्थदर्शिनम्।
त्रैलोक्यमहिताह्नीणामर्हतामस्तु मगलम् ॥

अन्तिम श्लोक में जिनप्रभ ने श्लेप का आश्रय लेकर अपना नाम उल्लिखित किया है—

मगलस्तोत्रमंगल्यप्रदीपस्यास्य दानत ।
येऽर्चयन्ति जिनान् भक्त्या ते स्यु प्रासजिनप्रभा ॥

दो पञ्चपरमेष्ठि स्तव है। प्रथम स्तोत्र मे ५ अनुष्टुप् छन्द व्यवहृत हुए है। इस स्तोत्र का प्रारभिक श्लोक यह है—

स्वः श्रिय श्रीमदर्हन्त सिद्धा सिद्धपुरीपदम्।
आचार्या पञ्चधाऽऽचार वाचका वाचना वराम् ॥

उपर्युक्त स्तोत्र के अन्तिम श्लोक की तरह इस स्तोत्र के अन्त में भी जिनप्रभ ने श्लेप का आश्रय लेकर अपना नाम उल्लिखित किया है—

मत्राणामादिमं मत्र तन्त्र विघ्नौघनिग्रहे।
ये स्मरन्ति सदैवेन ते भवन्ति जिनप्रभा ॥ ५ ॥

दूसरे पचपरमेष्ठि स्तव में ७ आर्या छन्द प्रयुक्त हुए है। इस स्तोत्र की प्रथम आर्या है—

परमेष्ठिन सुरतरुनिवनुतविदितत्रिविष्टपावस्थान्।
पचापि सदा पत्रान् सुमन प्रियसौरभान् सफलमुक्तीन् ॥

एक 'पचनमस्कृतिस्तव' है। जिसमे ३३ श्लोक प्रयुक्त हुए है। प्रथम ३१ अनुष्टुप् छन्द है तथा अन्तिम २ शार्दूलविक्रीडित छन्द हैं। इस स्तोत्र

में 'पत्रनमोकार' मत्र व प्रक्रिया की महत्ता वतलाई गई है। स्तोत्र का प्रारभ इस श्लोक से होता है—

प्रतिष्ठित तम पारेवाग्वर्तिवैभवम् ।
प्रपचवेदस पच नमस्कारमभिष्टुम ॥

'पचनमोकार' की महत्ता के कुछ अन्य श्लोक देखिये—

अहो पचनमस्कार कोऽप्युदारो जगत्सु य ।
सम्पदोऽष्टौ स्वय धत्ते दत्तेऽनन्तास्तु ता सताम् ॥ २ ॥
स्मृत्वा पचनमस्कार प्रविष्टायास्तमोगृहम् ।
घटन्यस्तो महासत्या पन्नग पुष्पमाल्यभूत् ॥२५॥
एप माता पिता स्वामी गुरुनेत्रं भिपक् सखा ।
प्राणत्राण गतिर्द्वीप शान्तिर्पुष्टिर्महन्मह ॥२८॥

एक 'पञ्चकल्याणकस्तव' है जिसमें ८ श्लोक है। इस स्तोत्र का प्रारंभिक वशस्थ छन्द यह है—

निर्लिपलोकायितभूतल श्रिया
नयन्मुद नैरयिकानपि क्षणम् ।
त्रिलोकलोकस्य रतेः प्रपचक
जिनेन्द्रकल्याणकपचम स्तुम ॥

अन्तिम श्लोक में लेखक ने अपना नाम वडे ही कौशल से गु फित किया है—

इत्याहतस्त्रिभुवनप्रभुसत्क पच-
कल्याणवज्रकवच हृदि यो बिभर्त्ति ।
शस्त्राणि ते जिततराण्यपि मोहराज
सौभाग्यभाग्ययुजि न प्रभवन्ति तस्मिन् ॥ ८ ॥

एक अन्य स्तोत्र 'द्वित्रिपचकल्याणकस्तव' है। इसमें १५ श्लोक है। सभी अनुष्टुप् छन्द हैं। इसका प्रथम छन्द है—

पद्मप्रभप्रभोर्जन्म गर्भाधान च नेमिन ।
भवार्ति कार्तिक श्याम द्वादश्या लुम्पता मम ॥

इस प्रकार पञ्चकल्याणमहोत्सवो की तिथियो के नामो की गणना हुई है। अन्तिम श्लोक में लेखक का नाम भी दिया गया है।

एक स्तोत्र का नाम अर्हदादि स्तोत्र है। इसमे ८ श्लोक है। जिनमे प्रथम दो मन्दाक्रान्ता छन्द है। पहला श्लोक देखिये—

मौनेनोर्वी व्यहृत परितो वत्सराणा सहस्र
यो निर्माणश्चरणयुगल भव्यमालोपकारी ।
अर्हन्नुत्तारयतु हृदयात्स स्वकीय कलाना
यो निर्माणश्चरणयुगलं भव्यमालोपकारी ॥

इस श्लोक में सम्पूर्ण द्वितीय चरण की आवृत्ति चतुर्थ चरण मे हुई है। प्रसन्न यमक का अन्यत्र भी प्रयोग द्रष्टव्य है—

शिवरतोवरतोपवशान्नतो-मघवताऽव्रवतामतिदूरग ।
अमदनो मदनोदनकोविद शममल मम लभयताज्जिन ॥ ६ ॥
अविकल विकलकधिया सुख विदधत दधत जगदीशिता ।
अकलह कलहसगति श्रये जिनवर नवरगतरगित ॥ ७ ॥

एक अन्य स्तोत्र 'वीतरागस्तव' है। इसमें १६ उपजाति छन्द प्रयुक्त हुए है। इस स्तोत्र का प्रारभिक श्लोक है—

जयन्ति पादा जिननायकस्य
दोपापहा ध्वस्ततमोविकारा ।
रवेरिवाश्चर्यमतापकाश्च
न कौशिकक्लेशकरा खराश्च ॥

किसी प्रकार के चमत्कार का आवरण न होने पर भी 'वीतरागस्तव' भाव की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट स्तोत्रो में गिना जाता है। अन्तिम श्लोक मे लेखक का नाम भी है।

एक अन्य स्तोत्र का नाम प्राभातिक नामावली है। इसमें पहला श्लोक वसन्ततिलका है जिसमे जिनसिंहसूरि की स्तुति है। स्तोत्र के शेष अश मे जिनाचार्यो व तीर्थकरो के नाम गिनाए गये है। नामो में ५ पाण्डवो व सीता आदि सतियो को भी गिनाया गया है। प्रथम श्लोक यह है—

सौभाग्यभाजनमभगुरभाग्यभगी
सगीतधाम निजधाम निराकृतार्कम्।
अर्चामि कामितफल हृति-कल्पवृक्ष
श्रीमन्तमस्तवृजिन जिनसिंहसूरिम्॥

अन्त मे अपने गुरु परम्परा पट्टावली दी है।

एक स्तोत्र वीरजिन की 'विज्ञप्ति' के रूप में इसी नाम से मिलता है। यह प्राकृत भाषा में लिखा गया है। इसमें कुल ३५ पद्य है। भावो की दृष्टि से यह बडा ही मधुर व मनोरम स्तोत्र है। इसका प्रथम पद्य यह है—

सिरिवीरराय देवाहिदेव
सव्वनु जणिय जय रिक्ख।
विन्नवणिज्ज जिणेशर
विन्नति मुझ निसुणेसु॥

एक स्तोत्र, जिसे स्वतत्र ग्रन्थ भी गिनाया गया है, हीयाली है। 'हीयाली' शब्द का तात्पर्य दृष्टिकूट या पहेली है। स्तोत्र-साहित्य मे इस प्रकार का प्रयोग अनूठा है। यह अपभ्रश भाषा में है। अभी तक यह अधूरा ही मिला है। पूरा प्राप्त होने पर अमीर खुसरो की पहलियो की परम्परा की एक कडी मिल सकती है। इसका पहला पद्य देखिये—

अकुलु अमूलुअ जोणी मभवु निर्मल वण्णु सो दीसइ।
हरिहर वभु न सिद्धिनु गोरखु इदु चदु न सलीसइ॥

इस प्रसग में चार पद्य है। आगे एक अपूर्ण पहाडीराग में हीयाली और मिलती है जिनका प्रथम पद यह है—

चारि चलण चउ सवण चउरभुज वधुन करइ पचारि ।
बूझहु मकल सयाणा पडित कासु कहउँ सा नारि ॥

यह आदिकालीन हिन्दी भापा का रूप समझने के लिए भी अधिक प्रामाणिक सिद्ध हो सकती है ।

जिनप्रभसूरि द्वारा विरचित ६ स्तोत्र ऐसे हैं जिनमें विभिन्न तीर्थ स्थानों के नाम आये है । उनमें एक 'तीर्थमालास्तव' प्राकृत में है जिसमें १२ पद्य हैं । मारे स्तोत्र में अनेक जैनतीर्थों के नाम गिनाए गये है । इस स्तोत्र का प्रारभिक पद्य यह है--

चउविसपि जिणिदे, सम्म नमिऊणाइसरणत्थ ।
जत्ताऽऽराहिय तित्थं नाम सकित्तण कुणमह ॥

दूसरा 'तीर्थयात्रास्तोत्र' है जिसमें २७ जैन तीर्थ स्थलो के नाम आये हैं । कुल ९ पद्य हैं । भापा इसकी भी प्राकृत ही है । प्रथम पद्य देखिये जिममें शत्रुंजयतीर्थ व उज्जयत शैल के नाम आये हैं—

सिरि सत्तुंजयतित्थे रिसहजिण पणिवयामि भत्तीए ।
उज्जितसेल सिहरे जायवकुलमडण नेमिं ॥

तीसरा मथुरा-यात्रा स्तोत्र है जिसमें मथुरा-क्षेत्र के तीर्थस्थलो व जैन विग्रहो का उल्लेख आया है । इसमें १० उपजाति छन्द व्यवहृत हुए हैं । प्रथम छन्द देखिये—

मुराचलश्रीजितिदेवनिर्मिते स्तूपेऽभिरूपे वरदो कृतास्पदौ ।
सुवर्णनीलोपलकोमलच्छवि सुपार्श्वपार्श्वौ मुदिता स्तविमि वाम् ॥

चतुर्थ स्तोत्र में श्रीदेव द्वारा विनिर्मित मथुरास्तूप की स्तुति है । इसमें केवल चार श्लोक है । प्रथम श्लोक हैं—

श्रीदेवनिर्मितस्तूपशृगारतिलकश्रियौ ।
सुपार्श्वपार्श्वतीर्थेशौ क्लेश नाशयता सताम् ॥

दो स्तोत्रो का नाम 'स्तुतित्रोटक' है । दोनो अपभ्रंश भाषा में लिखे

गये हैं। एक में ५ पद्य है तथा दिवराय, विमलगिरि, उज्जिलगिरि, दिल्ली आदि स्थानो के नाम प्रयुक्त हुए हैं। प्रथम पद्य यह है—

नियजमु रावणह सुय दिवराय जुतित्थह जत्त किय।
निच्चलवणि वेचिउ नियवण विमलगिरि वदिउ आदिजिण ।।

दूसरे स्तुतित्रोटक में चार पद्य हैं और फलवर्द्धिपुर के पार्श्वविग्रह का वर्णन व स्तुति की गई है। प्रथम पद्य देखिये—

ते धन्नपुन्नसुकयत्थनरा जे पणमहि सामिउं भत्तिभरा।
फलवद्धिपुरट्ठियपासजिण, अससेणह नन्दण भयहरण ।।

उक्त सभी स्तोत्र 'विधिमार्ग-प्रपा' नामक ग्रन्थ में भी आये हैं।

एक अन्य स्तोत्र का नाम 'आगम स्तवन' है। जिसमें ४५ आगम ग्रन्थो के नाम प्रयुक्त हुए हैं। स्तोत्र में कुल ११ आर्याछन्द हैं। भाषा प्राकृत है। प्रथम छन्द यह है—

सिरिवीरजिण सुयरयरोहण पणमिऊणभत्तीए।
कित्तेमि तप्पणोय सिद्धन्तमह जगपईव ।।

'वर्धमान विद्यास्तवन' वर्धमान-विद्याकल्प नामक ग्रथ मे आया है। यह भी प्राकृत भाषा में विरचित है। इसमे १७ पद्य व्यवहृत हुए हैं। इस स्तोत्र के पठन का फल अन्तिम पद्य में मगल कल्याण का आवास होना बताया गया है। प्रथम पद्य देखिए—

आम्मि किलट्ठुत्तरसय पयविन्नासो हुइज्ज पीढमि।
तत्तो उद्धरियाओ वायगसिरिचन्दसेणेण ।।

पद्मावती चतुष्पदिका

पद्मावती चतुष्पदिका का उल्लेख अन्यत्र स्वतत्र ग्रंथ के रूप में किया जा चुका है, किन्तु यह इतना छोटा है कि इसे एक बडा स्तोत्र कहना अधिक सगत है। भाषा अपभ्रंश है, परन्तु कही कही उसमें आदिकालीन हिन्दी भाषा का रूप भी देखा जा सकता है। इस विस्तृत स्तोत्र में ३७

चतुष्पदियो में पद्मावती-देवी की स्तुति की गई है। भापा-सगठन व भाव-विन्यास दोनो ही दृष्टियो से यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्तोत्र है। इसके प्रथम दो पद्य देखिए—

जिणसासणु अवधारि करेवि
झायहु सिरि पउमावइदेवि
भवियलोय आणदपरे।
दुलहउसावयजम्मुलहेवि, मनरिमित्थसुर अणुसरहु ॥१॥ ध्रुवकम

इसकी प्रथम दो पक्तिया चौपई छन्द (हिन्दी) के दो चरण है अंतिम चरण गाने की टेक की तरह है। दूसरा पद्य और देखिए—

पास नाह पयपकयभुसलि, सघविग्धनिन्नासणिकुसलि।
मसिकर निम्मलगुणगणपुन्न, पउमएवि मम होहि पसन्न ॥

इसी तरह सारे पद्य चौपई छन्द है जिसके प्रत्येक चरण मे १५ मात्राए होती है और अन्त में ह्रस्व स्वर व्यवहृत होता है। १८वें पद्य में जिणदत्तसूरि का व ३६वे मे जिनप्रभ के गुरु जिनसिंहसूरि के नाम भी आये है। अन्तिम पद्य मे लेखक ने अपना नाम भी दिया है—

पउमावइ चउपईय पढतु, होइ पुरिस तिहुयण सिरिवंतु।
इम पभणइ नियजस पप्पूरि, सुरहिय भवणु जिणप्पहसूरि ॥

इस स्तोत्र का न केवल भाव व भापा की दृष्टि से ही महत्त्व है वरन् इसका ऐतिहासिक दृष्टि से भी उल्लेखनीय स्थान है। जायसी व तुलसी की दोहा-चौपाई शैली की प्राचीन परम्परा अप्राप्य है। यह तत्कालीन लोकभाषा (अपभ्र श-हिन्दी का पूर्वरूप) में चौपई छन्द में लिखी हुई रचना है। यह और इसी तरह की अन्य चौपई व चौपाई छन्दो की रचनाएं मिलें तो इस त्रुटित परम्परा का पता लग सकता है।

कालचक्रकुलकम्

इसका नाम भी अन्यत्र एक स्वतत्र ग्रथ के रूप मे प्रकरणग्रंथ में

गिनाया गया है। किन्तु इसे भी एक बड़ा स्तोत्र कहना अधिक उपयुक्त है। यह भी प्राकृत भाषा में विरचित है। कुल ३५ छन्द प्रयुक्त हुए हैं। सुख-निर्वाण के लिए इसका पठन फलदायक माना गया है। इसकी भाषा प्राचीन अपभ्रंश के अधिक निकट है उससे प्रस्फुटित होने वाली तत्कालीन हिन्दी के नहीं। भावों की दृष्टि से यह बड़ा ही गंभीर स्तोत्र है। इसके प्रारम्भिक दो छन्द देखिये—

अवसप्पिणि उसप्पिणि भेएण होइ दुविहउ कालो।
सागर कोडाकोडीउ वीसा एमो ममप्पेइ।
सुससुसमादि सुसमा सूसमा दुसमा य दुसमसुसमाय।
पचमिया पुण दूसम तह दूसमदूसमा छट्ठो॥

शब्द चमत्कार भी दर्शनीय है। जैसा कि 'कुलकम्' नाम से ही स्पष्ट है एक छन्द के भाव दूसरे से सग्रथित हैं स्वतंत्र नहीं हैं। इस कुलक के रूप में कालचक्र की गाथा की रचना जिनप्रभ ने अबोध व्यक्तियों के बोधनार्थ की है जैसा कि अन्तिम छन्द से विदित होता है—

अवुहजणवोहत्थं अप्पणो समासेण।
कालचक्कस्स गाहा जिणपहसूरींहि सठविया।

दार्शनिक स्तोत्र

दो स्तोत्र जैनदर्शन के सिद्धान्तों से सम्बन्धित हैं। इसलिए इनका परिचय स्वतन्त्र रूप से दिया जाना ही अधिक उपयुक्त होगा। दोनों ही विस्तृत आकार वाले हैं। इनमें से एक नितांत महत्त्वपूर्ण 'सिद्धान्तागम' स्तव है। प्रस्तुत स्तोत्र में ४५ आगम ग्रन्थों के सिद्धान्तों एवं वर्ण्य विषयों का विवेचन किया गया है। यह ४६ संस्कृत श्लोकों में निबद्ध है। अनुष्टुप्, आर्या, आर्यागीति, उपजाति, इन्द्रवज्रा, रथोद्धता, वंशस्थ, प्रहर्षिणी, रुचिरा, वसन्ततिलका, हरिणी, स्रग्धरा आदि विविध छन्द प्रयुक्त हुए हैं। साथ में इस पर लिखी हुई एक अवचूरि (टीका)

भी मिलती हैं। अवचूरि के इस अश से ही उनके प्रतिदिन स्तवनिर्माण प्रतिभा का पता लगता है—

"पुरा श्रीजिनप्रभसूरिभि प्रतिदिन नवस्तवनिर्माणपुरस्सर निरवद्याहारग्रहणाभिग्रहवद्भि प्रत्यक्षपद्मावतीदेवीवचसामभ्युदिन श्रीतपागच्छ विभाव्य भगवता श्रीसोमतिलकसूरीणा स्वशैक्षशिष्यादिपठनविलोकनाद्यर्थ यमकश्लेषचित्रच्छन्दोविशेषादिनवनवभगीसुभगा सप्तशतीमिता स्तवा उपदीकृता निजनामाकिता । तेष्वय सर्वसिद्धान्तस्तवो वहूपयोगित्वाद्विव्रियते ।–

स्तोत्र के प्रथम श्लोक में गुरु व गणधर सुधर्मा के साथ आचार्य वडे ही विनीत होकर श्रुतदेवता—सरस्वती को भी प्रणति निवेदन करते हैं। देखिए—

नत्वा गुरुभ्य श्रुतदेवतायै सुधर्मणे च श्रुतभक्तिनुन्न ।
निरुद्धनानावृजिनागमाना जिनागमाना स्तवन तनोमि ॥

आगे प्रत्येक श्लोक में जिनागमो का वर्णन मिलता है। स्तोत्र की विषय स्थापन शैली के लिए कुछ श्लोक व उनकी अवचूर्णि द्रष्टव्य है।–

सामायिकादिकषडध्ययनस्वरूप-
—मावश्यकं शिवरमावदनात्मदर्शम् ।
निर्युक्तिभाष्यवरचूर्णि विचित्रवृत्ति-
स्पष्टीकृतार्थनिवह हृदये वहामि ॥

"अवश्यकरणादावश्यकम् । सामायिकादिकानि सामायिक-चतुर्विशतिस्तव-वन्दनकतिक्रमण-कायोत्सर्ग—प्रत्याख्यानरूपाणि यानि षडध्ययनानि तत्स्वरूपम् । शिवरमाया (मोक्षलक्ष्म्या) वदनात्मदर्शं दर्पणतुल्यम् । पुन किंविशिष्टम् । निर्युक्ति श्री भद्रवाहुकृता एकत्रिंशच्छतप्रमाणा । भाष्य सूत्रार्थप्रपचनम् । वरावचूर्णिरष्टादशसहस्रप्रमाणा पूर्वर्षिविहिता । विचित्रवृत्तिरनुगतार्थकथन द्वाविंशतिसहस्रप्रमाणम् । एताभि स्पष्टीकृतोऽर्थनिवहो यस्य तथाविधं हृदये वहामि स्मरामि ।"

प्रवचननाटकनान्दी प्रपंचितज्ञानपंचकसतत्त्वा ।
अस्माकममन्दतमं कन्दलयतु नन्दिरानन्दम् ॥

"प्रवचन जिनमतमेव नाटकं तत्र नान्दी द्वादशतूर्यनिर्घोष. तन्मूलत्वान्नाटकस्य । प्रपंचित प्रकटीकृत ज्ञानपंचकस्य मतिश्रुतावधिमन पर्यय केवलज्ञानरूपस्य सतत्त्व स्वरूप यया सा नन्दिरस्माकममन्दतम बहुतरमानन्द कन्दलयतु वर्धयतु ।"

अन्तिम श्लोक में जिनप्रभ ने अपना नाम देने के साथ साथ स्तोत्र को कण्ठस्थ करने का फल श्रुतदेवता—सरस्वती के द्वारा सन्तुष्ट होकर वर प्रदान करना कहा है—

इति भगवत सिद्धान्तस्य प्रसिद्धफलप्रर्था
गुणगणकथा कण्ठे कुर्याज्जिनप्रभवस्य य ।
वितरतितरा तस्मै तोषाद्वरं श्रुतदेवता
स्पृहयती च सा मुक्तिश्रीस्तत्समागमनोत्सवम् ॥

जिनागम सिद्धान्तों का एकस्थ-विवेचन करके आचार्य ने निश्चय ही जिज्ञासुओं के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया है । इसे एक तरह की अनुक्रमणिका या कोष कहना अधिक सगत होगा ।

'सिद्धान्तागमस्तव' की तरह ही दूसरा महत्त्वपूर्ण स्तोत्र 'परमतत्त्वावबोध द्वात्रिंशका' है । इसमें ३२ अनुष्टुप् छन्द हैं । इस लघुकाय स्तोत्र में, छोटे-छोटे श्लोकों में बड़े ही सरल शब्दों में साथ ही रोचक ढग से आचार्य जिनप्रभ ने 'परमतत्त्व' का विशद विवेचन किया है । जैनधर्म की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह व्यावहारिक है । इसी व्यावहारिकता ने उसे मनोविज्ञान व विज्ञानसम्मत बना दिया है । नैतिकता पर जैनधर्म में सबसे अधिक बल दिया गया है । नीति और व्यवहार के अद्भुत मिश्रण के साथ उच्चकोटि के दार्शनिक विवेचन को हम इस स्तोत्र के अन्दर पाते हैं । परमसुख की प्राप्ति के लिए इस स्तोत्र के ३२ श्लोक

जैसे ३२ चिन्तामणि मौक्तिक है जिनके चिन्तन का फल अमोघ व सद्य.साध्य है। प्रथम श्लोक देखिए—

धर्माधर्मान्तर मत्वा, जीवाजीवादितत्त्ववित्।
ज्ञास्यति त्व यदात्मान, तदा ते परमं सुखम्॥

इन सीधे सादे श्लोको मे चाणक्य के सूत्रो की तरह का महान् ज्ञान भरा हुआ है। विहारी के दोहो की तरह ये भी नाविक के तीर से उपमेय है जो छोटे दीखने पर भी हृदय में गभीर घाव कर जाते है। आगे के २ श्लोक देखिए—

यदा हिंसा परित्यज्य कृपालुस्त्वं भविष्यसि।
मैत्र्यादिभावना-भव्यस्तदा ते परम सुखम्॥
न भापसे मृषा भाषा विश्वविश्वासघातिनीम्।
सत्य वक्ष्यसि सौहित्य तदा ते परम सुखम्॥

अर्थात् जव हिंसा को छोड कर के कृपालु वन जाओगे, मैत्रीभावना वढा कर भव्य वन जाओगे, विश्वविश्वासघातिनी झूठ न वोलोगे और सुन्दर हितकारिणी सत्य वाणी वोलोगे तभी परम सुख की प्राप्ति होगी।

जैन समाज की भाषागत प्रसिद्ध प्रार्थना 'बारहभावना' के अन्तर्गत इस प्रकार के भावो के लिए ही तो आकाक्षा प्रकट की गई है। गीता की समत्वभावना भी स्तोत्र में प्राप्य है—

स्वरे श्रव्ये च वीणादौ खरोष्ट्रीणा च दु श्रवे।
यदा सममनोवृत्तिस्तदा ते परम सुखम्॥
इष्टेऽनिष्टे यदा दृष्टे वस्तुनि न्यस्तशस्तधी।
प्रीत्यप्रीतिविमुक्तोऽसि तदा ते परम सुखम्॥
घ्राणदेशमनुप्राप्ते यदा गन्धे शुभाशुभे।
रागद्वेषौ न चेत्तत्र तदा ते परम सुखम्॥
यदा मनोज्ञमाहारं यद्वा तस्य विलक्षणम्।
समासाद्य तयो. साम्यं तदा ते परम सुखम्॥

सुखदु खात्मके स्पर्शे समायाते समो यदा ।
भविष्यसि भवाभावी तदा ते परम सुखम् ॥

गीता व स्तोत्र के इस श्लोक में कितनी समता है देखिए—

यदा सहरते चाय कूर्मोऽङ्गानीव सर्वश. ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतीष्ठिता ॥

गीता—२/५८

तथा—

अगोपागानि सकोच्य कूर्मवत्सवृतेन्द्रिय ।
यदा त्व कायगुप्तोऽसि तदा ते परम सुखम् ॥

और भी देखिए—

यदामित्रेऽथवा मित्रे स्तुति निन्दा विधातरि ।
समान मानस तत्र तदा ते परम सुखम् ॥
लाभालाभे सुखे दु खे जीविते मरणे तथा ।
औदासीन्यम् यदा ते स्यात्तदा ते परमं सुखम् ॥
यदा यास्यसि निष्कर्मा साधुधर्मधुरीणताम् ।
निर्वाणपथसलीनस्तदा ते परम सुखम् ॥

यहाँ तो गीता की नैष्कर्म्य-भावना और भी स्पष्ट हो जाती है। स्पष्ट है कि स्तोत्र रचना करते समय आचार्य जिनप्रभ गीता से प्रभावित हुए थे। या यो कहना अधिक संगत होगा कि जिस तरह तुलसीदास ने रामायण में 'नानापुराणनिगमागमसम्मत' ज्ञान भर दिया, जिनप्रभ ने भी अनेक दार्शनिक व धार्मिक ग्रथो का व्यावहारिक ज्ञान प्रस्तुत स्तोत्र में समन्वित रूप में उपस्थित कर दिया। स्पष्ट है कि सदाचार व उच्च भावनाओ के लिए विशेष धर्म का बन्धन नही है। वे सभी स्थानों पर समान रूप से मिल सकती है। महामुनि याज्ञवल्क्य ने धर्म की यथेष्ट परिभाषा देने पर भी सन्तोष न होने पर इतना कह दिया है और वही चरम ज्ञान है कि—

एष तु परमो धर्म यद्योगेनात्मदर्शनम् ।

'अर्थात् योग द्वारा सर्वत्र आत्मदर्शन ही परमधर्म है ।' कुछ ऐसी ही बात जिनप्रभ ने भी अन्तिम श्लोक मे कहकर विरति ग्रहण की है—

आत्मपद्मवन ज्ञान-भानुना वोध्य लप्स्यसे ।
यदा जिनप्रभा वर्या तदा ते परम सुखम् ॥

अर्थात् जब आत्मारूपी पद्मवन को ज्ञानभानु की प्रभा से आलोकित कर श्रेष्ठ जिनप्रभा को प्राप्त कर लोगे तभी परमसुख की प्राप्ति होगी । यह जिनप्रभा की प्राप्ति सर्वत्र आत्मदर्शन का दिव्यज्ञान—दिव्य दृष्टिकोण ही है ।

निश्चय ही प्रस्तुत स्तोत्र जिनप्रभाचार्य के स्तोत्र साहित्य मे भावो की दृष्टि से सबसे गभीर और महान् सन्देश से ओतप्रोत है। भाषागत चमत्कार प्रदर्शन करने मे ही जिनप्रभ सिद्धहस्त नही थे वरन् मौलिक, समन्वित व संयत विचार देने में भी उन्हे कृपण नही कहा जा सकता । यह बात इस स्तोत्र को देख कर समझी जा सकती है । यह स्तोत्र साधारण व्यक्ति के लिए भी बोधगम्य है ।

वाणीवन्दना

जिनप्रभाचार्य के प्राप्य स्तोत्रो का परिचय दो अन्य स्तोत्रो के विना अधूरा ही रह जायगा । ये स्तोत्र केवल स्तोत्र की दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण नही है वरन् ये रचयिता के विचारौदार्य को भी प्रकट करते हैं । दोनो में वाग्देवी सरस्वती की वन्दना अत्यन्त भावप्रवण हृदय से की गई है । इनमें एक छोटे स्तोत्र का नाम 'सरस्वत्यष्टक' है । जिसमें ९ रथोद्धता छन्द प्रयुक्त हुए है । कही-कही यमक और अनुप्रास की छटा भी मिलती है परन्तु रचयिता की दृष्टि चमत्कार की ओर कदापि नही रही, भावो की सहज-मधुर सरणि ही उसमें विद्यमान है । स्तोत्र का प्रारभ प्रणवमत्र (ॐ) से होता है—

ॐ नमस्त्रिदशवन्दितक्रमे
सर्वविद्वद्वनपद्मभृंगिके ।
बुद्धिमान्द्यकदलीदलीक्रिया
शस्त्रि तुभ्यमधिदेवते गिराम् ।।

भारती की महिमा के कुछ श्लोक देखिए—

दत्तह्रीन्दुकमलश्रियो मुख
यैर्न्यलोकि तव देवि सादरम् ।
ते विविक्तकवितानिकेतन
के न भारति भवन्ति भूतले ।।
श्रीन्द्रमुख्य विबुधार्चितक्रमा
ये श्रयन्ति भवती तरीमिव ।
ते जगज्जननि जाड्यवारिधि
निस्तरन्ति तरसा रसा स्पृश ।।

तथा—

विश्वविश्वभुवनैकदीपिके
नेमुपा मुपितमोहविप्लवे ।
भक्तिनिर्भरकवीन्द्रवन्दिते
तुभ्यमस्तु गीर्देवते नम ।।

यह अष्टक सरस्वती के 'ॐ ह्रीं श्रीं' बीजनिर्मित मन्त्र से गर्भित है । स्वय जिनप्रभ ने अन्तिम श्लोक में इसे स्पष्ट किया है—

उदारसारस्वतमंत्रगर्भितम्
जिनप्रभाचार्यकृत पठन्ति ये ।
वाग्देवाया स्फुटमेतदष्टक
स्फुरन्ति तेषा मधुरोज्जला गिर ।।

वाग्देवी सरस्वती की वन्दना करते समय जिनप्रभ उतने ही प्रणत व भावप्रवण दिखाई पडते हैं जितने ऋषभदेव या अन्य किसी तीर्थंकर की

स्तुति करते समय। इनके दूसरे स्तोत्र का नाम 'शारदास्तव' है। इसमे १२ उपजाति व १ वसन्ततिलका छन्द प्रयुक्त हुए है इसमे केवल प्रणति निवेदन ही नही है शब्द चर्मत्कार भी उसी मात्रा में प्रस्तुत है। विपम सख्या के छन्दो के दूसरे चरण की चौथे चरण मे आवृत्ति की गई है। इसका प्रारंभिक श्लोक यह है—

वाग्देवते भक्तिमता स्वशक्ति-
कलापविन्नासितविग्रहे मे।
वोधं विशुद्धं भवती विधत्ता
कलापविन्नासितविग्रहा मे॥

इसी तरह सम संख्या के छन्दो में प्रथम चरण की आवृत्ति तृतीय चरण में हुई है। दूसरा श्लोक देखिये—

अकप्रवीणाकल हसपत्रा-
कृतस्मरेणानमता निहन्तुम्।
अंकप्रवीणा कलहसपत्रा
सरस्वती शश्वदपोहताद्व.॥

यमक के चमत्कार ने इस श्लोक से भाव को किस तरह प्रभावप्रेष-णीय वना दिया है—

सिताशुकां ते नयनाभिरामा
मूर्ति समाराध्य भवेन्मनुष्य।
सिताशुकाते नयनाभिरामा-
-वकारसूर्यः क्षितिपावतस॥

अन्तिम श्लोक में भक्तहृदय की प्रणतिपुरस्सर श्रद्धाजलि देखिये, जिसमें कवि ने अपना नाम की गुम्फित किया है—

क्लृप्तस्तुतिर्निविडभक्तिजडत्वपृक्तै-
र्गुम्फैर्गिरामिति गिरामधिदेवता सा।
वालोऽनुकम्प्य इति रोपयतु प्रसाद-
-स्मेरा दृश मयि जिनप्रभसूरिवर्ण्या॥

इस प्रकार इन सभी प्राप्य स्तोत्रो का सक्षिप्त परिचय व सामान्य विशेषताओ का उल्लेख करने के वाद सारे स्तोत्र-साहित्य पर समष्टि रूप से विचार कर लेना असगत न होगा।

जिनप्रभ-स्तोत्र-साहित्य की सामान्य विशेषताएँ

भक्ति, विनय व औदार्य

जिनप्रभसूरि के सारे स्तोत्र धार्मिक गीतिकाव्य की महती सम्पत्ति हैं। वे मुक्तक है इस लिए उनके भावपक्ष पर विचार करते समय उनके स्तोत्रो में व्यजित भक्ति, विनय तथा औदार्य पर सर्व प्रथम हमारा ध्यान जाता है। जैन-धर्म एक व्यावहारिक-धर्म है और भक्ति स्वय धर्म का सवसे अधिक व्यावहारिक पहलू है। विगत दो सहस्राव्दियो में उठे हुए भक्ति के विभिन्न आन्दोलनो ने इस पहलू को प्रभूत विकसित वना दिया है। विष्णु के विभिन्न अवतारो व विग्रहो की कल्पना, नवधा विभक्ती-करण, प्रत्येक प्रकार की भक्ति की अनेक भूमिकाएँ आदि देखकर उसके विकसित स्वरूप का अनुमान लगाया जा सकता है।

इन भक्ति सम्वन्धी आन्दोलनो ने जैन धर्म पर भी प्रभाव डाला। श्रद्धाप्रधान होने से भक्ति जैन-धर्म के अनुकूल थी और प्रत्येक जैन व्यावहारिक दृष्टि से साधक होने पर भी भक्त प्रथम था। हाँ, सभी तीर्थंकर जिन थे। अतएव सभी जैनसाधक उस अवस्था की प्राप्ति के प्रयत्न में उनके सेवक थे। इसलिए जैनधर्म मे दास्य-भक्ति ही प्रमुख रही। सख्य भक्ति को उसमे किसी भी प्रकार का कोई स्थान नही। हाँ श्रवण, कीर्तन, स्मरण, भजन, पूजन, वन्दन व आत्मनिवेदन का दास्यभक्ति से कोई विरोध नही है इसलिए इनको भी उतना ही महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

भक्ति के उपजीव्य जैनधर्म के अनुसार केवल चौवीस तीर्थङ्कर ही नहीं है। उनके जीवन से सम्वन्धित ग्रन्थ व तीर्थस्थल भी भक्ति के उप-जीव्य रहे हैं। इसलिए जैनधर्मानुयायी स्त्री-पुरुष तीर्थों व ग्रन्थो की भी

तीर्थङ्करो के साथ स्तुति करते है । आचार्य जिनप्रभसूरि ने भी इन सभी के लिए स्तोत्र लिखे ।

जैनधर्म मे भक्ति नवधा के स्थान पर षडधा मानी गई है । भक्ति की परिभापा देखिए—

मोक्षमार्गस्य नेतार भेत्तार कर्मभूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वाना वन्दे तद्‌गुणलब्धये ॥

अर्थात् मोक्षमार्ग के नेता (हितोपदेशी), कर्मरूपी पर्वतो का भेदन करने वाले (वीतराग) और विश्व के तत्त्वो को जानने वाले (सर्वज्ञ) आप्त (अर्हत) की भक्ति, उन्ही के गुणो को पाने के लिए करता हूँ ।

स्पष्ट है कि विशिष्ट गुणवालो (अरिहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु) के गुणो मे अनुराग करके उनका सान्निच्य प्राप्त करने की क्रिया ही भक्ति है । जो जैनधर्म के अनुसार ६ प्रकार की मानी जा सकती है—

१ नामभक्ति—नाम व गुणो का स्मरण ।
२. स्थापना भक्ति—मूर्तियो का स्थापन, पूजन व दर्शन ।
३ द्रव्य भक्ति—अरिहत तथा सिद्धपुरुष के स्वरूप का चिन्तन ।
४ भावभक्ति—अरिहंत तथा सिद्ध भावो का विचार करना ।
५ क्षेत्रभक्ति—तीर्थस्थानो के सहारे वहाँ जन्म व निर्वाण प्राप्त करने वाले महान् पुरुपो का स्मरण ।
६ कालभक्ति—जिन कालो में महान् पुरुषो ने जन्म, तप ज्ञान व निर्वाण प्राप्त किया उनके सहारे उन महान् पुरुपो के स्मरण द्वारा भक्ति ।

यदि भक्ति के उक्त प्रकारो को ध्यान में रखकर आचार्य जिनप्रभ के स्तोत्र साहित्य का विहगावलोकन किया जाय तो पता चलता है कि आचार्य ने इन सभी दृष्टिकोणो से भावविभोर होकर अपने इष्टदेव के प्रति प्रणति निवेदन की है ।

केवल काल (समय) को लेकर आचार्य ने 'कालचक्रकुलकम्'

नामक स्तोत्र लिखा है। उनके विभिन्न तीर्थमालास्तव तथा किसी विशिष्ट तीर्थस्थल के नाम से सलग्न तीर्थङ्कर सम्बन्धी स्तोत्र क्षेत्र-भक्ति के अच्छे उदाहरण हैं। अरिहत व सिद्ध भावो का दर्शन उनके दार्शनिक स्तोत्रों में होता है जो भावभक्ति के उदाहरण हैं। 'परमतत्त्वाववोधद्वात्रिंशिका' इस प्रकार के स्तोत्रो का चूडामणि कहा जा सकता है। दृश्यभक्ति के उदाहरण तीर्थंकरो के विग्रहो का चित्रोपम वर्णन करने वाले स्तोत्र वन सकते है। नाम और स्थापन भक्ति के उदाहरण तो सभी वन सकते है। यही नही जिनप्रभ ने अपने गुरु को भी बडे ही प्रणत भाव से श्रद्धाजलि अर्पित की है जो नामभक्ति के उदाहरण के रूप में उपस्थित की जा सकती है।

विनय और भक्ति का अन्योन्याश्रय सम्वन्ध है। इष्टदेव अथवा महान् पुरुप की महत्ता और अपनी लघुता विनय को जन्म देती है। विनय के अभाव में कोई भक्त भक्त नही रह सकता। आचार्य ने अपने सभी स्तोत्रो में विनयशीलता का अच्छा परिचय दिया है। कही-कही तो वे इतने भाव विह्वल हो जाते है कि उनके स्तोत्रो का पाठ करने वाले तक के चक्षु आर्द्र और कण्ठ वाष्परुद्ध गद्‌गद हो जाते हैं। तुलसी का विनय दीनता मिश्रित है किन्तु आचार्य जिनप्रभ के विनय में एक सिद्धिपथ के पथिक की विनम्र-दृढता व अथक विश्वास के दर्शन होते है। सभी स्तोत्रो में आचार्य आत्मविश्वासी रहे है और उनकी ज्ञान-गरिमा तो सर्वत्र झलकती ही है।

आचार्य जिनप्रभ मोहम्मद तुगलक के सपर्क में आये थे और उसके पास सुदीर्घ काल तक रहे भी थे अतएव उनमें धार्मिक उदारता होनी ही चाहिए। केवल शारदा स्तवन मात्र से ही उनकी यह उदारता प्रकट नही होती, फारसी जैसी विदेशी भापा को स्तोत्र रचना के लिए अपना कर भी उन्होने अपनी उदारता की पुष्टि की है। ऐसी पाडित्यमण्डित उदारता निश्चय ही वहुत ऊँची वस्तु है और आचार्य जैसे निस्पृही, सर्वस्व-त्यागी में ही मिल सकती है।

भाषा

आचार्य जिनप्रभ अनेक भाषाओ के पण्डित थे। सस्कृत, समसस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, पैशाची, फारसी आदि अनेक भाषाओ मे उन्होंने अपने भावप्रसून इष्टदेव को समर्पित किए हैं और सभी पर उनका असाधारण अधिकार प्रकट होता है। अनुप्रास, यमक, श्लेषादि शब्दालकारो से उनकी भाषागत सामर्थ्य झलकती है। प्रासाद व माधुर्य गुणयुक्त प्राजल पदावली के दर्शन सर्वत्र होते हैं। भाव-प्रवणता के कारण उसमें ओज व सहज-गाम्भीर्य का प्रवेश हो गया है। प्रवाह कही टूटने नही पाता।

षड्भाषा-गर्भित व अष्टभाषा गर्भित स्तोत्र उनके साधिकार-भाषा-प्रयोग के उदाहरण हैं। कातत्रसधिसूत्रगर्भित, षड्ऋतुगर्भित, उपसर्गहर-स्तोत्र पादपूर्तिमय, विविधछन्दोनामगर्भित, लक्षण-प्रयोगमय आदि अनेक स्तोत्र अर्थगाम्भीर्य की पुष्टि करते हैं। चित्रकाव्यमय स्तोत्र में यही बात और भी सफलतापूर्वक देखी जा सकती है। इतना अवश्य है कि इन प्रयोगो के उपरान्त भी भाषा बोधगम्य बनी रहती है।

यही नहीं, उनकी भाषा में गभीर से गभीर दार्शनिक भावो को सरलतम ढग से व्यक्त करने की क्षमता भी विद्यमान है। इसी तरह की शक्ति, प्रवाह, गम्भीरता व विशदता सस्कृतेतर भाषाओ के प्रयोग में भी समान रूप से मिलती है।

शैली

स्तोत्र ललित-साहित्य की एक-विधा है। साथ ही वे मुक्तक-काव्य होने मे-पूर्वापर सम्बन्धनिरपेक्ष सहज रसपेशल भी होते हैं। उनमें किसी तरह का कथा प्रवाह नही होता। हाँ, भावो का प्रवाह उतना ही अनिवार्य है। आचार्य ने अपने स्तोत्रो को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए सार्थक शब्दो का प्रयोग किया है। इसी तरह छन्द प्रयोग भी भावगुरुता की दृष्टि से हुआ है। छोटे अनुष्टुप् या आर्याछन्द से लेकर बडे-बडे दण्डक छन्दो

का प्रयोग भी जिनप्रभ ने किया है। वह योग्यता-प्रदर्शन मात्र के लिए न होकर भावाभिव्यक्ति के सौकर्य्य के कारण ही हुआ है। आचार्य को अपने इस उद्देश्य में अतीव सफलता मिली है। कही-कही चमत्कारो के कारण भावग्रहण में कठिनाई अवश्य होती है। फिर भी आधिक्य को प्रमाण मान कर उनकी शैली को प्रसन्नगम्भीर कहा जा सकता है जिसमें कही-कहीं सहजप्रसन्नता कुछ क्षणो के लिए विलुप्त प्राय भी देखी जा सकती है। प्रसग व भावानुभूतियो की सघनता पर केन्द्रित कही माधुर्य की, कही प्रसाद की और कही ओज की छटा देखने को मिलती है। सरलता, स्पष्टता व परिवर्तनशीलता उनकी शैली की विशेषता है।

वर्णन वैचित्र्य विविध प्रयोग

जैनाचार्यो को कभी चमत्कार प्रदर्शन का लोभ नही रहा। कहा जाता है कि राजा भोज ने एक वार मयूरभट्ट के 'सूर्यशतक' और वाणभट्ट के चण्डीशतक' के भावनिधि पर मुग्ध होकर उसकी प्रशसा करते हुए जैनाचार्य मानतुग से भी इस प्रकार का चमत्कार-प्रदर्शन करने के लिए कहा। आचार्यजी ने केवल आत्मा के परम चमत्कार को ही सर्वोत्तम वताकर प्रदर्शन से इन्कार कर दिया। कहते है कि राजा भोज ने आचार्य को वदीघर में वन्द करके ४६ ताले लगवा दिये और आचार्य ने 'भक्तामर स्तोत्र' की रचना करके वन्दीगृह मे मुक्ति पाई। कदाचित् उक्त घटना को जिनप्रभ ने ध्यान में रखा और भाषा व भावसम्बन्धी सवसे अधिक प्रयोग करके पाठको के लिए आश्चर्य की स्थायी सम्पत्ति छोड गए।

आचार्य जी के स्तोत्रो मे पद-पद पर भाषा तथा भाव सम्बन्धी चमत्कारो के दर्शन होते हैं। उनके कोई स्तोत्र यमक, श्लेष, अनुप्रासादि से ओत प्रोत है तो किसी अन्य रचना को गुम्फित देखा जा सकता है। यमक प्रयोग भी अनेक प्रकार से हुआ है—कही एक चरण को दूसरे में दोहराया गया है तो कही चारो चरण एक ही है। शब्द-यमक से तो कदाचित् किसी स्तोत्र का कोई स्थल अछूता न होगा। एक स्तोत्र में

कातंत्र व्याकरण का संधिसूत्र गुम्फित है तो दूसरा उपसर्गहर स्तोत्र की पादपूर्ति से युक्त है, एक अन्य पचकल्याणकमय है, तो दूसरा लक्षण प्रयोग-मय है। एक षड्ऋतु-वर्णनमय है तो अन्य नवग्रहगर्भित है। क्रियागुप्त रचना तो एक नितान्त अद्भुत प्रयोग है। अनेक भापाओ का एक साथ प्रयोग तो है ही। हीयाली यद्यपि अपूर्ण प्राप्त है फिर भी इतना पता चल जाता है कि इसमे अनेक प्रहेलिकाएँ है। कही आगमो के नाम स्तोत्रो मे गुम्फित है तो किसी में आगम-सिद्धान्तो का उल्लेख है। कही छन्दो के नाम भी स्तोत्रो में आये है तो अन्य अनेक स्थानो पर आचार्य ने अपना नाम ही अनेक प्रकार के कलात्मक ढंगो से गुम्फित किया है। छोटे-से छोटे व वडे से वडे छन्दो का प्रयोग भी कम चमत्कार जनक नही है। राजा भोज इन विविध प्रकार के चमत्कारो को देखा होता तो उसका गुणग्राही मन विभोर हुए विना न रहता।

प्राप्य स्तोत्रो के आधार पर कुछ चमत्कारो का नामोल्लेख मात्र यहाँ किया गया है। यदि ७०० स्तोत्रो की रचना करने की वात सत्य हो, तो पता नही लुप्त या अप्राप्य स्तोत्रो में कितने चमत्कार भरे पडे होगे। जो हो, प्राप्य स्तोत्रो व उनकी विशेपताओ के आधार पर ही हम आचार्य जिनप्रभ की प्रतिभा के प्रति नत होने को वाध्य है।

चित्र काव्य

प्राप्य स्तोत्रो मे एक स्तोत्र चित्रकाव्यमय भी है। यद्यपि चित्रकाव्य को काव्यालोचको ने अधमकोटि का काव्य कहा है, किन्तु फिर भी इतना मानना पडेगा ही कि विना भापा पर असाधारण अधिकार प्राप्त किए कोई भी कवि चित्रकाव्य की सृष्टि नही कर सकता। आचार्य जिनप्रभ ने अपने 'वीरजिनस्तव' में इस प्रकार का प्रयोग किया है और वे इसमें सफल भी हुए है। इस कार्य में उनकी सफलता को देख कर यह सोचने के वाध्य होना पडता है कि इस प्रकार के प्रयोग के विना कदाचित् उनके

स्तोत्र-साहित्य का एक अंग विच्छिन्न रह जाता। चित्रकाव्य की रचना करने से अधिक सफलता उन्हें इसी क्रम से स्तोत्र में अपना नाम गुम्फित करने में भी मिली है।

उपसहार

जिनप्रभाचार्य की इन विशेपताओ पर विचार करने के वाद हम निस्सन्देह कह सकते है कि न केवल जैन साहित्यकारो में वरन् भारतीय स्तोत्र-साहित्य में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। सफल भापा प्रयोग, उच्च-कोटि के भावो का उद्भावन, अनुभूति की मघनता, विविधचमत्कारिक प्रयोग किसी भी दृष्टि मे देखा जाय उनका स्थान अपने सहयोगी जैन-साहित्यकारो मे शीर्प-कोटि का है। उनके सम्पूर्ण स्तोत्र प्राप्त होने पर निश्चय ही वे उत्तरकालीन साहित्य की परम्पराओ के उद्भावक व अनेक शृखलाओ को जोडने वाली कडी के रूप में चिरउल्लेखनीय गौरव के अधिकारी समझे जायेंगे। हम निस्सन्देह उन जरामरण भयरहित यश-सिद्धकवीश्वर के समक्ष श्रद्धानत हैं।

माघ शुक्ल पूर्णिमा : २०१७
३१–१–६१ : कोटा

परिशिष्ट

जिनप्रभसूरि गुणवर्णन छप्पय

—.०—

तिन्नि वार सुलितानु जासु पुच्छवि हक्कारइ,
निय करि करु सगहइ अप्प सरखइ वइसारइ।
अतीत अनागत वर्तमान पूछै ज भावइ,
हसि हसि उत्तर देइ सुगुरु रायह रजावइ।
असपत्ति राउ ढिल्ली तणउ, जसु एवडु आयरु करइ।
भट्टारक सूरि जिणप्पह हं सूरि न को सरभरि करइ ॥ १ ॥

रयणपाल निम्मल-विसाल-कुलि-कमल-दिवायर,
हीर-खीर-डिंडीर-विमल-गुणमणि-रयणायर।
तिहुयण-जण-लोयण-चकोर-उल्हासण-ससहर,
विसम-विपय-जाला-कराल-दावानल-जलहर।
खेतल्लएवि-वर कुक्खिसर, रायहस सुदर चरिय।
तुव सरिसु जिणपहसूरि गुर, गछि गछि नहु आचरिय ॥ २ ॥

ता तित्तरु तडपडइ जाम सिञ्चाणु पयट्टइ,
तां कुरंगु मयमंतु जाम चित्तउ संघट्टइ।
मयगलु तामउ करइ जाम नवि केहरु पिक्खइ,
ता पव्वय उत्तुंगु जाम गिरि मेरु न पिक्खइ।
पंडियहं ताम गव्वु वहइ जा-जिनप्रभ न वसि पडइ।
वहु सत्थ हत्थि अवहत्थियहं वा अग्गल तीसउ झडइ ॥ ३ ॥

को जग्गावइ काल-सप्पु सुत्तउ निद्दह भरि,
कविण होइ दप्पिट्ठु धिट्ठु अग्गेसरि केसरि।

झल्हनात अगार कवण निय सीसि वहिज्जइ,
कवण कुत लोयणह खग्ग खडण भणि दिज्जइ।
इत्तडिहिं पयारिहिं जो रमइ भमइ जीउ संसय ठिउ।
सो अहड जिणपहसूरि सिउ वाय करिवि अइ दिढ हिउ ॥ ४ ॥

मागिद्द मेरु जिम धीरु रागिद्द रायह मनूरजणु,
मागिद्द नत्थ पारीण वागिद्द वाइग मउ-भजणु।
वागिद्द धम्मि अनुरत्तु तागिद्द तपतेय-दिवायरु,
गागिद्द गच्छ खरतरह पागिद्द पयडउ गुणसायरु।
दादागिद्द दानि सुरतरु सरिसु जिनतिलकसूरि पट्टिहिं जयउ।
जिनराजसूरि सूरिहिं तिलउ, राजहंस गणि जपियउ ॥ ५ ॥

सयल कला सुज्जाण सरसवचनेंहिं सुमिट्ठउ,
सोहगि जवुकुमारु दाण-गुणि करण गरिट्ठउ।
आगम गथ पुराण वेद व्याकरण बहु जाणइ,
मधुर सघीर गभीर वईण नव रस वक्खाणइ।
खरतरहं गच्छि जिनतिलकगुरु, निय पट्टिहिं थिरु थप्पियउ।
जिनराजसूरि जयवत चिरु, नयतिलक्क गणि जपियउ ॥ ६ ॥

ओवलिव्वा मदि रिमह नाह वदिगो वगोयं,
महावीर मखदूम तु दिलइ कीव गोय।
दन्तिमवारण सिर निहाद वुजरु कीविदाद,
पजम गणहर सुहनामि रात खूविदाद।
जवुकुमार मुणि सुव्वयह, पभव सजभवादिह।
जिनदत्तसूरि सिरिताज सिरि, एलिमाल जूमलइ जह ॥ ७ ॥

पइं पयडिउ जिणधम्मु मिच्छरज्जिहि ढिल्लियपुरि,
पइ रजिउ सुरताणु नाणि विन्नाणि विविह परि।
पइ वाइय निज्जिणि असेस जयपत्तु वि लद्धउ,
तुह वाइय-गय-सिंह विरुद जाणियइ पसिद्धउ।

पउमावइ-देविय पत्तवर, तुव चरित्त कित्तिय भणउ।
मिरि सूरि जिणप्पह अगण गुण, इक्क जीह किम करि थुणउ ॥ ८ ॥

सरसइ-कंठाभरण पवर वाइय-गर्य-सकल,
विज्जा-सत्तागार वाइगय-अकुस निम्मल।
सयल वाइ-गय-गवहत्थि वाइय विड्डारण,
जिणसासण-वण-सिंह वाइ-गय-घड-पचाणण।
हम्मीर वीर वदिय चलण, मिच्छरज्जि अक्खलिय-पसर।
जिणपह-मुणिद इत्तिय विरुद, तुव छज्जइ पर हत्थु घर ॥ ९ ॥

लोह न कचण सरिस मेरु सम अवर न भूधरु,
गरुड सरिस न हुँ पखि इद सम अवरि न निज्जरु।
रवि सम इयर न खयरु न मणि चिंतामणि सनिह,
कप्परुक्ख सम सरिस इयर न हु दीसइ भूरुह।
जिणसिंघसूरि मीसप्पवर, भुवब्भुय गुण उक्करिस।
सिरि सूरि जिणप्पहसूरि तलि, सूरि न दीसइ तुव सरिस ॥१०॥

अब निंब अतरउ जेम अतरु वक हसह,
जक्ख घणह अतरउ जेम नारायण कसह।
चिंतामणि पाहणह जेम अतरु ससि तारह,
रयणायर सरवरह रक अतरु जिम रायह।
इयरे वि सूरि चाउद्दिसिहिं, सीह सरस जिम अंतरउ।
भट्टारक सूरि जिणप्पह हं, न ल्हवडउ पट्टतरउ ॥११॥

—अपूर्ण—

[श्री साराभाई नवाव सग्रह, वि० स० १५५८ राजसुदर लिखित गुटके के आधार से साभार उद्धृत]

छप्पय क्रमाक ५ एव ६ प्रक्षिप्त मालूम होते हैं।

जिनप्रभसूरि षट् पद–

जुग्गिनि पुरि विस्तरउ सयल ससारिइ जाणिउ ।
सुगुरु सूरि जिनप्रभु साहि वुलाइ सभापिउ ।
पूछइ खुदालम्म सुणि नितू वातह म्हारी ।
इमि देवहिं क्या शक्ति, दूनी पूजइ विशयारी
त च साहि महमद (को) पीउ चडि पोसालइ आईयउ ।
पद्मावति समरि जिनप्रभुसुरि, श्री महावीर वोलावीउ ॥१॥
शक्ति करइ सुलताण, दुनी आलम ए का (य) म ।
इह खालि कु विशयासह स ,ऐक दीम दायम ।
हाजतिअ-वहु भवइ, जिके तुम्ह भावन भाविइ ।
पुज्जइ मनि धरि स्वामि, मन वाछित फल पावइ ।
तिहाँ मीरु मलिका डमरा, खडा जावन किसिहि अवीउ ।
श्री महावीर अतिसय कीउ, जिन शासनि छत्र चढाईउ ॥२॥
काजी उर मुख इम कुटिल्ल जमि लें हक्कारियाँ ।
तुम्ह हु रोग गद्रद दुनी, ए जम विशयारियाँ ।
इह जिन खानी खास नेक मनि जरं दीदं ।
खालिक जबाक राख जिमिइ अडरूने को दीद ।
तव साहि महमद प्रज्वलू जइ खुदाइ न हु डर करुउ ।
अति वास मेति काजी, मुला वदि मोलिघर धारी करुउ ॥३॥

इति पट् पद समाप्त
(१६ वी शती, गुटका विनयसागरजी संग्रह)

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१७	प्रभावगा	पभावगा
	२२	साहित्कारो	साहित्यकारो
२	१४	अत्याश्यक	अत्यावश्यक
२	२४	विद्वता	विद्वत्ता
६	११	असन्तुष्ठ	असन्तुष्ट
११	११	वनइं	वनाइं
१२	६	प्रवल	प्रवल
	९	है ।	हैं ।
	१५	अम्मोहर	अम्भोहर
१४	२	चायोत्कट	चापोत्कट
१५	३	करडी हड्डी	करडी हट्टी
१६	१५	वहुश्चुत	वहुश्रुत
	२६	६२००	६२०००
१७	७	अनुत्तरौपपातिक०	अनुत्तरोपपातिक
	१६	सेठी नदो	सेढी नदी
१८	२	आगामो	आगमो
	१८	है ।	है ।
	२०	हो गये ।	हो गये थे ।
१९	१७	चित्रकूटीय वीरचैत्य प्रशास्त	चित्रकूटीय वीरचैत्य प्रशस्ति
	१७	भवारिवारण स्तोत्र	भावारिवारण स्तोत्र
	२५	स्वप्नसवृत्तिका	स्वप्नसप्ततिका
२०	३	हुम्व	हुम्वड

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०	४	शुक्ल १	शुक्ला १
२०	१०	यह	×
	१६	विक्रमपुरा	विक्रमपुर
	२२	मन्नवादी	मन्त्रवादी
२१	२२	सर्वाधिष्टात्री	सर्वाधिष्टायी
२२	५	आध्यात्मगीतानि	अध्यात्मगीतानि
	११	भादो	भाद्रपद
	१९	गच्छनामक	गच्छनायक
२३	५	भादो	भाद्रपद
	६	मालप्रदेश	भालप्रदेश
२४	२	निजपतिसूरि	जिनपतिसूरि
	३	प्रतिमा	प्रतिभा
	२४	पृ० २५३४	पृ० २५ से ३४
२५	४	वृहद्वार	वृहद्वार में
	५	ने किया	ने शास्त्रार्थ किया।
	१३	प्रतिमा	प्रतिभा
२६	३	दो	द्वितीया
२६	४	वीरप्रभा	वीरप्रभ
	५	आपाठ	आपाढ
	६	वृहद्वारा	वृहद्वार
	११	सर्वदेवसूरि नामकरण किया गया।	सर्वदेवसूरि ने जिनपतिसूरि की आज्ञानुसार इनको आचार्य-गण-नायक पद प्रदान कर जिनेश्वरसूरि नामकरण किया।
२६	१९	शन्तुजय	शत्रुञ्जय
२७	२	वावरी	चाचरी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७	१८	गलितकोटकपुर	गलितकोटकपुर,
	२०	के	का
	२१	पचशती	पचशती में
२८	२	सेतलदेवी	खेतलदेवी
	१०	द्वितीय आचार्य जिने-श्वरसूरि	आचार्य जिनेश्वरसूरि (द्वितीय)
	१८	रमणपाल	रयणपाल
	२०	स० पट्टावली ३० पाच पुत्र में तृतीय नवर	ख० पट्टावली ३ के अनुसार पांच पुत्रो में से तीसरे।
	२३	पच	पचशती
	२४	वल्लभभारती	वल्लभभारती
३०	४	यह	×
	७	मूलगच्छा	मूलगच्छ
	८	जिनचन्द्रसूरि	जिनसिंहसूरि
३१	१	प्रभावती	पद्मावती
	२५	मोहिलवाणी	मोहिलवाडी
३२	२६	पच	पचशती
३३	१६	१४१८	१३१८
	१९	१३४७	१३४१
३४	९	प्राप्ति का	प्राप्ति का।
	१३	अष्टभापाम	अष्टभापामय
	१३	'निरवधिरुचिर ज्ञानमय,	'निरवधिरुचिरज्ञान'
	१६	नन्दाप्तोरुविशुद्धयोग[1]	नन्दाप्तोरुविशुद्धयोग-
	१७	शास्तं	शस्त
	१९	दन्ताज्ञानरमा	रन्ता ज्ञानरमा
३५	१२	ग्रन्थो का निर्माण किया।	ग्रन्थो का किया।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३६	१९	पद्मदेवसूरि	पद्मदेवसूरि,
	२०	निम्नग्रन्थ	निम्न ग्रन्थ
३७	८	ये न ज्ञान कला-	येन ज्ञानकला-
३७	१९	देनेन्द्रसूरि	देवेन्द्रसूरि
३८	१३	१०९७	१३९७
	१३	काम्वोजकुलीयढ	काम्वोजकुलीय ठ०
	१४	अभ्यर्थतया	अभ्यर्थनया
३९	५	सहाय्योद्भिन्नसौरभ	साहाय्योद्भिन्नसौरभ ।
	७	प्रशात्ति	प्रशस्ति
	१३	महावीग्प्रतिभाकल्प	महावीरप्रतिमाकल्प
	१५	देवगिरि	देवगिरि,
४०	१६	वैभारागिरि	वैभारगिरि
	१८	शुद्धदेह	शुद्धदेही
४१	११	शेरोपक	शेरीपक
	१४	आशापल्ली	आशापल्ली,
	१५	१३६९	१३६९ में
	१६	१३९१	१३९१ में
	१६,१७	नाभि नदनजिनोद्धार प्रवन्ध	नाभिनन्दनजिनोद्धारप्रवन्ध
४२	३	३१८	३२८
	५	लिखित	लेखित
	८	ऽत्रवंशे	ऽत्र वंशे
	१०	प्रसाद	प्रमाद-
	११	मामाद्यमद्गुण-	मासाद्य सद्गुण-
	१३	लिखित	लेखित
	१६	सूरिजिनप्रभाङिकमले	सूरिजिनप्रभाङ्घ्रिकमले

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	१८	वित्तपवनं	वित्तवपन
	१९	समाजस्तु ताथ	समाजस्तुतान्
४३	४	पुराश्रीजिनप्रभसूरिभि	पुरः श्रीजिनप्रभसूरिभि
	४	पुरसार.	पुरस्सर
	७	चित्रद्धान्दो	चित्रच्छन्दो
	१३	तपोरमतकुट्टनशतं	तपोटमतकुट्टनशतं
	१७	२९ वी	२० वी
	२०	समुदाय पिष्ट	समुदाय की दृष्टि
४४-	४,६	गुच्छाग्रह	गच्छाग्रह
	८	रुद्रपल्ल	रुद्रपल्ली
	१५	सोमसुदर	सोमतिलक
४५	१	प्रतिरोध	प्रतिवोध
४६	१०	आचार्य ही ने	आचार्यश्री ने
	११	रखकर	रचकर
	२५	जिनदेवसूरि	जिनदेवसूरि[1]
४७	९	की	के
	२२	रजित	रचित
	२३	अमरनाम	अपरनाम
४८	६	(युगप्रवरागम जिनपति सूरि के चाचा)	युगप्रवरागम जिनपतिसूरि के चाचा,
	७	सङ्घेप	सङ्घे
	९	वाणव्ट	वाणाव्ट
	१५	विच्चमधुर	विक्रमपुर
	१८	उपरयुक्त	उपर्युक्त
	१९	कन्यानयनवर्त मान कालानूर	कन्यानयन वर्तमान कानानूर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७९	२०	नानानाटकहाटका भरगिरि	नानानाटकहाटकामरगिरि.
	२३	सरोरुह–	सरोरुह
८०	८	विपक्षवादिद्विपञ्चवक्त्र	विपक्षवादिद्विपपञ्चवक्त्र.
	११	तजित–	तर्जित-
	१३	जिनमेरुसूरि	जिनमेरुसूरि.
	१५	गुणगणभणि–	गुणगणमणि
८१	३	विपक्षवादिद्विपञ्चवक्त्र	विपक्षवादिद्विपपञ्चवक्त्र
८३	४	अरउक्कमल्ल	अरडक्कमल्ल
	१९	राघवलक्ष	राघवलक्ष
८४	१	उ०	ठ०
	१९	वाणेन्दु	वाणेन्दु
८५	११	समच्यर्थिता	समभ्यर्थिता
	२०	न्यूनधम.	न्यून धर्म.
	२४	स चरित्रभू	सच्चरित्रभू
८६	३	अरउकमल्ल	अरडकमल्ल
	११	अरउक्कमल्ल	अरडक्कमल्ल
	२३	अरउक्कमल्ल	अरडक्कमल्ल
८७	६	मंघद्दै (?) रि	मंघद्दैरि-
	१८	अरउक्कमल्ल	अरडक्कमल्ल
८९	४	स० १४	स० १४
	१४	सीतालती	सीता सती
	१९	सागरतिलक से	सागरतिलक के
९१	३	वीरस्तोत्र टीका	वीरस्तोत्र टीका[७]
९२	६	पडिवद्धा	पडिवद्धा
	९	जिणदत्तसूरिसलाण	जिणदत्तसूरिसताण
	१०	ढाणप्पमिए	ट्ठाणप्पमिए

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९२	१३	सिरिजणवल्लह-	सिरिजिणवल्लह
	१७	पसाया ओ	पसायाओं
	१९	समिसूरपई वा	ससिसूरपईवा
९३	७	पच्चक्खाणठाइं	पच्चक्खाणठाणाइ
	९	सुवहुविद्वाणेसु	सुवहुविहाणेसु
९४	३	पद्पदकाव्यटीका	पट्पदकाव्य टीका
	९	समर्पिता	समर्थिता
	१४	श्रीजिनप्रभसूरीकृत	श्रीजिनप्रभसूरिकृत
	१५	भापाकाव्यावचूरी	भापाकाव्यावचूरिः
९५	४	सुगता हि सेवा-	सुगताह्रिसेवा-
	६	विधा	विधाय
	२६	समर्पित	समर्थित
९६	१	अश्वानबोधतीर्थकल्प	अश्वावबोधतीर्थकल्प
	१२	चतुरशीतिमहातीर्थ- नामङ्ग्रहकल्प,	चतुरशीतिमहातीर्थनामसंग्रहकल्प
	१६	मृदुविशदयदा-	मृदुविशदपदा-
	१८,२१,	जिणपट्टसूरीहिं	जिणप्पहसूरीहिं
	२०	पूसक्कवारसीए	पूसक्कवारसीए
	२३	चिट्ठसिय-	जिट्ठसिय-
	२४	शशधरहृपोकाक्षि-	शशधरहृपीकाक्षि-
	२७	रितिविरचया चक्षु	रिति विरचयाचक्रु
९७	२	आमरकुण्ड-	अमरकुण्ड-
	१०	पृपत्कविपयिकिमिते	पृपत्कविपयार्कमिते
	११	यात्रोत्सवौ-	यात्रोत्सवो-
	११	जिनप्रभोस्य	जिनप्रभास्य

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४८	२१	किन्तु समय	किन्तु उस समय
	२३	सिंघि	सिंघी
	२५	वागुड	वागड
	२६	उल्छेख	उल्लेख
४९	१५	फरयान	फरमान
	१७	नवाहा	नवहा
	२४	महावीर पुत्र	महावीर प्रभु
५०	२	निकाला	निकला
	४	पहुंचा	पहुचा।
५१	१५	निश्चितया	निश्चिततया
	१८	सेवागड	से वागड
	२४	युगप्रभ रागम	युगप्रवरागम
५२	११	५४	९४
	१४	मृगाकग, यो	मृगाङ्कग यो,
५३	६	अघिष्ठापक	अधिष्ठायक
५४	५	वृत्तान्त होने	वृत्तान्त ज्ञात होने
	९	आर्शीर्वाद	आशीर्वाद
	१२	जैन-सघ	जैन-सघ
५५	९	जिनप्रभ शाही	जिमप्रभ ने शाही
	११	सिद्धातवाचना	सिद्धान्तवाचना
५६	७	आया	हो आया
	१०	पाण्डित	पाण्डित्य
५९	५	सरिजी	सूरिजी
	११	शासन भावना	शासन प्रभावना
६०	५	सघवात्मलादि	सघवात्सल्यादि
	२०	जयपुरस्तोत्र	गजपुरस्तोत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६०	२२	पृषत्क[५] विषयां कंमिते[१२]	पृषत्कविषयार्कमिते[१२]
	२४	यात्रोत्सवोपत्तत	यात्रोत्सवोपनत
६१	२०	प्रभावती देवी	पद्मावती देवी
६४	२	यह	×
६५	१	मुहम्मदशाह	महम्मदशाह
	१	सत्कार	सत्कृत
	२	राघवचैतन्य	राघवचैतन्य
	५	भी	ही
	८	प्रभावती	पद्मावती
	२३	शाक भरीश्वर	शाकम्भरीश्वर
	२४	द्विजागुणी	द्विजाग्रणी
	२६	टशे	हशे
६६	१७	कर्तव्य	आश्चर्य
६९	१९	विया	दिया
७१	२०	दें	वाञ्छित दें
७३	२४	वैठ	वैठ
७४	५	देने का	देने को
	१२	नागरिको	नागरिको ने
	२६	करे ।	करें ।
७६	६	१७४	? १३७४
	७	लेरस्सए	तेरस्ससए
७७	१	तथा	तपा
७८	३	जिनप्रभ	जिनप्रभ ने
	२४	शिलोञ्छा	शिलोञ्छ
७९	१	कर्म	कर्म
	८	वाचनार्य	वाचनाचार्य

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९७	१२	वीज	बीज
	२४	हरिमागरसूरि	हरिसागरसूरि ज्ञान भण्डार,
९८	४	च्छान्दोविशेषादि-	च्छन्दोविशेषादि-
	२१	निर्लोहितशठकमठ	निर्लोठितशठकमठ
९९	४	ऋषभनाथमनाथ	ऋषभनाथभनाथ
१००	२	गुणार्द्धि	गुर्णार्द्धि
१००	१६	दोसावहार दक्खो	दोसावहारदक्खो
१०१	१२	धन्नपुन्नसुकपत्थनरा	धन्नपुन्नसुकयत्थनरा
	२४	अवधावि	अवधारि
१०२	६	वर्गीकरके	वर्गीकरण करके
	१८	मन्दोहमोहावतमस-तर्रणि	सन्दोहमोहावनमसतर्रणि
	२२	आकाव्य	आ काव्य
१०३	६	दमदमभोजसा	दमदममोजसा
	७	ह्यकामचदामय	ह्यकामयदामय
	१०	आचाममाचाममभि-भास्व	आचाममाचामभिमास्व-
	१८	ब्राहम्यै	ब्राह्म्यै
१०४	२३	श्लाघा	श्लाघा।
१०५	१	इसमें मत्,	इसमें अस्मद् के मत्,
१०६	१२	और	और भी
	१९	विष्ठप-	विष्टप-
१०८	९	रिप्पनक	टिप्पनक
११०	९	अभयदेवसूरि शि०	(अभयदेवसूरि शिष्य)
	२५	१२१	१२०
११२	७	श्रीचन्द्रसूरी	श्रीचन्द्रसूरि
	१३	विपय	विषय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११२	१८	कथादन्नकोष	कथारत्नकोष
	२१	ह० ५६२	इ० ५६२
	२५	लालक	लालचद
११३	९	८ गाथा, ११	८ गाथा, पृष्ठ ११
	१०	गा० ९।१५	९ गाथा, पृष्ठ १५,
	११	गा० ५ १०३	५ गाथा, पृष्ठ १०३
	१२	गा० ६ १०३	६ गाथा, पृष्ठ १०३
११४	३	प्रतिष्ठाविधान	प्रतिष्ठाविधान का
११७	९	वर्धमानविघकल्प	वर्धमानविद्याकल्प
	२०	वर्धमानविवाकल्प	वर्धमानविद्याकल्प
११८	८	में गायत्री आचार्य	में आचार्य
१२०	१९	'संदेह 'विषौषधि'	'सदेहविषौषधि'
१२१	११	१२६४	१३६४
१२३	११	तात्वज्ञ	तत्वज्ञ
	२५	इसमें	इनमें
१२४	११	चतुर्विशति	चतुर्विंशति
	१५		
१२५	९	सपृहयोदय	सप्तहयोदय
	१०	नवमामल	नयमासल
	१९	भवनाथनिभानन	भनाथनिभानन
	२४	के	की
१२६	९	रतिर्जयिन	रतिपतेर्जयिन
	१९	वंधनंधा·	वन्द्य नन्द्याः
	२२	अष्टम छन्द	२८ वाँ छन्द
१२७	१८	यस्मादधीत्ये–	यस्मादधीत्ये–
	२४	प्रणम्यादिजिन	प्रणम्यादिजिनं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२८	१९	पार्श्वजिनस्तव	पार्श्वजिनस्तव शीर्षक पंक्ति २३ में 'द्व्याश्रयकाव्य जैसा बन गया है।' इसके पश्चात् पैराग्राफ छोड़कर पढ़ें।
१२९	१२	स्तोत्र	स्तोत्र
	२६	सियपक्खाणदयर	सियपक्खाणंदयर
१३०	१२	फणीन्द्र	फणीन्द्र
	१२	रुद्यचोतिताशा	रुद्योतिताशा
१३१	१५	महिमश्रियाह	महिमश्रियामह
	१६	कमरुदर्पकोपिणाम्	कमठदर्पकोपिणम्।
	१८	श्रवणस्तवोत्तमा	श्रवणतस्तवोत्तमा
	२०	नाकिनामकयुगेन	नाकिनायकयुगेन
	२१	मुह्ये	मुक्तये
	२२	है	हैं
	२६	सुरनपूइया	सुरनरपूइय
	२७	सघवण	सथवण
१३२	९	ते लुक्कं	तेलुक्कं
	१४	ढालिय–	टालिय–
१३४	१२	भव्यानऽवस्तु	भव्यानवतु
	२२	दृष्टव्य	द्रष्टव्य
	२५	स्पृहामवृजिनप्रमवाय	स्पृहामवृजिनप्रभवाय
	२६	लक्ष्मीविभर्ति	लक्ष्मीर्विभर्ति
१३५	१६	दुराधामपि	दुराराधामपि
१३६	२	प्रतिलोमानुलोमाद्यै	प्रतिलोमानुलोमाद्यैः
	५	ननानेननोनम	ननानेननोनन
	१०	जिनेश्वरवरो भव्याब्ज-	जिने[१]श्वरवरो भ[४]व्याब्ज–
	१२	सुख[२]प्रदा	सुख[३]प्रदा.
	२०	छन्दोभिर्विविधैरधीर	छन्दोभिर्विविधैरधीरधी-

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	२३	दूयभान	दूयमान
१३७	४	सेव्याऽह्निशा	सेव्याऽह्निम्
१३८	१५	तमकसिणसप्परवयमो	तमकसिणसप्पखयमो
	१८	तुहश्चस्ति	तुहशुस्ति–
	२२	रतूणहितयके	रतूणहितपके
१३९	२	कुमुदमकथनिदानं	कुमुदमकयनिदान
	१३	नन्दाप्तोरुविशुद्धयोग–	नन्दाप्तोरुविशुद्धयोग–
	१५	सिद्धरमणी	सिद्धिरमणी
१४०	१०	न हत्र	नह्म
	१५	जिणथहसूरीहि	जिणपहसूरीहि
१४२	१९	माघव	माघ
१४३	१	स्तवो	स्तव
	८	गतदनवगम	गलदनवगम
	१२	लसदवम्	लसदवम
	१५	व्यहृत	व्यवहृत
	२५	त्ववद्यमुक्तनेमे	त्वमवद्यमुक्तनेमे
१४४	२१	श्रीजिनसूरिभि	श्रीजिनप्रभसूरिभि
१४५	१	देवैर्य	देवैर्य
	४	कृताविद्यो परमा	कृताविद्योपरमा
	१२	चविङ चदाणणाय	चविउ चंदाणणाए
	१५	पद्य हैं।	पद्य हैं।
	१८	जगज्जनलोचन भृङ्ग सरोज	जगज्जनलोचनभृङ्गसरोज
१४६	७	सेविनपदे	सेवियपदे
	१३	नमने	नमते
	२५	हारिहास–	हारिहार–

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४७	१२,१३	हथिणापुर गो-वनिपात साहि	हथिणापुरगोवनि, पातसाहि
	१५	दिगरहिय	दिगरिहय
	२१	अशितेरीष	अजितेरीप
	२१	सनखमसचति सईन	सन खमस वतिसईन
१४९	२	तपोत्तीर्ण	तापोत्तीर्ण
	८	नमिभो	नमिमो
	१९	प्रदघान्	प्रदद्यान्
१५०	२०	चण्डमतिण्ड	चण्डमार्तण्ड
१५१	१५	वाचना	वाचना
	१९	सदैवेर्न	सदैवैन
१५२	३	प्रतिष्ठित तम	प्रतिष्ठित तम पारे
	१०	गुरुनेत्र	गुरुर्नेत्र
	२०	इत्याहत	इत्यादृत
	२३	श्लोक है ।	श्लोक हैं ।
१५३	२	लुम्पता	लुम्पता
	१३	मघवताऽघवता	मघवताऽघवता
१५४	३	जिनाचार्यो	जैनाचार्यों
	१५	जिणेशर	जिणेसर
	२३	सिद्धिनु	सिद्धु न
१५५	१	वघुन	वघण
	४	चउविसपि	चउवीसपि
	२०	स्तविमि	स्तवीमि
१५६	१	दिवराय	दिवराय (वलिनाम)
	३	नियजमु	नियजंमु सफलु
	९	ग्रथ में भी आये है ।	ग्रथ में प्रकाशित हो चुके हैं ।
१५७	६	आणदपरे	आणदयरे

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५७	१०	पयपकय भुसलि	पयपकयभसलि
	१७	पप्पूरि	कप्पूरि
१५८	८	कोडाकोडीडं	कोडाकोडीउ
	१०	छट्ठी	छट्ठो
	१६	जिणपहसूराहिं	जिणपहसूरीहिं
१५९	२०	वन्दनकतिक्रमण	वन्दनकप्रतिक्रमण
१६०	११	कुर्याज्जिन	कुर्याञ्जिन
१६०	१३	स्पृहयती	स्पृहयति
१६२	५	प्रतीष्ठिता	प्रतिष्ठिता
	१७	स्पप्ट	स्पष्ट
१६४	२	पद्मभूगिके	पद्मभृ गिके
	२४	मवुरोज्जला	मवुरोज्ज्वला
१६५	७	विग्रह	विग्रहा
	१६	श्लोक से	श्लोक के
	२२	नाम की	नाम भी
१६७	११	सान्निच्य	सान्निध्य
१७०	१७	४६	४४
	२३	किसी अन्य	किसी में किसी अन्य
१७१	२०	कौ	को
	२५	के वाच्य	के लिये वाच्य
१७२	१	विच्छिन्न	अपूर्ण

नोट—पृष्ठ ७९ पक्ति ८ वाचनाचार्य चारित्रवर्द्धन शीर्षक मे लेकर पृष्ठ ८८ पक्ति १३ तक का अश पृष्ठ ८९ पक्ति ११ पर पढें।

जैनप्रभीय प्रकाशित स्तोत्र-सूची

क्रमाक	स्तवनाम	आदिपद	पद्य सं०	मुद्रित स्थल	
१.	पञ्चनमस्कृतिस्तव	प्रतिष्ठित तम छरे	३३	प्रकरणरत्नाकर भा० ४	
२	पञ्चपरमेष्ठिस्तव	स्व श्रिय श्रीमदर्हन्त	५	,, ,,	
३	अर्हदादि स्तोत्र	मानेनोर्वीं व्यहृतपरितो	८	जैन स्तोत्र सदोह भा० में चन्द्रप्रभसूतिकृत है।	
४.	प्राभातिक नामावली	सौभाग्यभाजन		विधिमार्गप्रपा	
५	वीतरागस्तव	जयन्ति पादा जिननायकस्य	१६	प्रकरणरत्नाकर भा० ४	
६	पञ्चकल्याणकस्तव	निलिम्पलोकामितभूतल	८	,, ,,	
७	चतुर्विंशतिजिनस्तव	कनककान्तिधनु शत-	२९	,, ,,	काव्यमाला गुच्छक ७
८	,,	ऋपभनम्रसुरासुरशेम्वरं	२९	,, ,,	जैन स्तोत्र समुच्चय
९.	,,	आनम्रनाकिपतिरत्न	२५	,, ,,	
१०	,,	पात्वादिदेवो दशकल्प-	२९	,, भाग २,	
११.	,, (श्लेपमय)	य सततमक्षमालोप-	३०		

१२	,,	तत्त्वानि तत्वानि भूतेषु	२८ प्रकरणरत्नाकर भा० ४
१३	,,	प्रणम्यादिजिन प्राणी	२८ ,, ,,
१४	,,	जिनर्षभप्रीणितभव्य-	८ ,, ,,
१५	,,	नतसुरेन्द्रजिनेन्द्रयुगादि-	९ पञ्चप्रतिक्रमण सूत्र (वीरपुत्र) ।
१६.	पुडरीकगिरिमण्डन ऋषभ-स्तव-कातन्त्र सन्धिसूत्रगर्भित	सिद्धो वर्णसमाम्नायः	२३ प्रकरण रत्नाकर भा० ३, जैन स्तोत्र सदोह भा० २ में निर्नाम ।
१७.	युगादिदेवस्तव (८भाषा)	निरवधिरुचिरज्ञान	४० प्रकरणरत्नाकर भा० २,
१८.	,,	अस्तु श्री नाभिभूर्देवो	११ ,, भा० ४, जैन स्तोत्र समुच्चय ।
१९.	,,	अल्लाल्लाहि सुराह	११ जैन स्तोत्र समुच्चय, जैन साहित्य सशोधक खड ३ अंक १
२०.	ऋषभदेवाज्ञास्तव	नयगमभगपहाणा	११ जैन स्तोत्र सदोह भा० १
२१	अजितजिनस्तव	विश्वेश्वर मथितमन्मथ-	२१ जैन स्तोत्र समुच्चय, चतुर्विशति जिनानन्द स्तुति-मेरुविजयकृत ।
२२.	चन्द्रप्रभजिनस्तव (षड्भाषा)	नमो महसेननरेन्द्रतनूज	१३ प्रकरणरत्नाकर भा० ४
२३.	,,	देवैर्यस्तुष्टुवे तुष्टै	४ ,, ,,
२४.	शान्तिजिनस्तव	श्रीशान्तिनाथो भगवान्	२० ,, ,,
२५.	अरजिनस्तव	जय शरदशकलदशहय.	१४ ,, ,,

२६	नेमिजिनस्तव (क्रियागुप्त)	श्रीहरिकुल हीराकर	२० ,, ,,
२७	पार्श्वजिनस्तव	कामे वामेय शक्ति	१७ काव्यमाला गुच्छक ७
२८	,, (फलवर्द्धि)	अधियदुपनमन्तो	१२ ,, ,,
२९	,, (जीरापल्लि)	जीरिकापुरपति सदैव त	१५ प्रकरणरत्नाकर भा० ४
३०	,, (८अतिहार्य)	त्वा विनुत्य महिमश्रिया-	१० ,, ,,
३१.	पार्श्वजिनस्तव	श्रीपार्श्वपादानतनागराज	८ प्रकरणरत्नाकर भा० ४
३२	,,	पार्श्वं प्रभु शश्वदकोपमान	८ ,, ,,
३३.	,,	श्रीपार्श्वं परमात्मान	८ जैन स्तोत्र सदोह भा० २
३४	,,	श्रीपार्श्वं भावत. स्तौमि	९ ,, ,, प्रकरण रत्नाकर भा० ४
३५.	,, (नवग्रहगर्भित)	दोसावहारदक्खो	१० पचप्रतिक्रमणसूत्र
३६	,, (फलवर्द्धि)	सयलाहिवाहिजलहर	११ प्रकरणरत्नाकर भा० ४
३७.	वीरजिनस्तव(चित्रकाव्य)	चित्रै स्तोष्ये जिन वीर	२७ ,, ,, जैन स्तोत्र समुच्चय
३८	,, (विविधछद)	कंसारिक्रमनिर्यदा	२५ काव्यमाला गुच्छक ७.
३९	,,(पचवर्गपरिहार)	स्व श्रेयससरसीरूह	२६ प्रकरण रत्नाकर भा० ४
४०.	,, (लक्षणप्रयोग)	निस्तीर्णविस्तीर्णभवार्णव	१७ ,, ,,
४१	,,	असमशमनिवास	२५ ,, ,,

४२	,,	श्रीवर्द्धमान' सुखवृद्धये	९	,, ,,
४३	वीर निर्वाणकल्याणक स्तव	श्रीसिद्धार्थनरेन्द्रवश	१९	,, ,, काव्यमाला गुच्छक ७,
४४.	वीरजिनस्तव (५ कल्याणकमय)	पराक्रमेणेव पराजितोयं	३६	,, ,,
४५	,,	श्रीवर्द्धमानपरिपूरित	१३	,, ,,
४६	तीर्थयात्रास्तव	सिरिसत्तु जयतित्थे	९	विधिमार्गप्रपा
४७	मथुरायात्रा स्तोत्र	सुराचलश्रीजिति	१०	,,
४८	मथुरा स्तूप स्तुति	श्रीदेवनिर्मितस्तूप	४	,,
४९	स्तुति त्रोटक	नियजम्मु सफलु	५	,,
५०	,,	ते धन्न पुन्न सुकयत्थतरा	४	,,
५१.	गौतमस्तव	श्रीमन्त मगधेषु	२१	प्रकरण रत्नाकर भा० ४, काव्यमाला गुच्छक ७,
५२	,,	जम्मपवित्तियसिरि	२५	जैन स्तोत्र सदोह भा० १,
५३	गौतमाष्टक	ॐ नमस्त्रिजगन्नेतु	९	,, ,,
५४.	जिनसिंहसूरिस्तव	प्रभु प्रदधान्मुनिप	१३	प्रकरण रत्नाकर भा० ४,
५५.	सिद्धान्तागमस्तव	नत्वा गुरुभ्य श्रुतदेवतायै	४५	काव्यमाला गुच्छक ७,
५६.	शारदा स्तव	ॐ नमस्त्रिदशवन्दितक्रमे	९	जैन स्तोत्र सदोह भा० २,
५७	,,	वाग्देवते भक्तिमता	१३	प्रकरण रत्नाकर भा० ४,
५८	पद्मावती चतुष्पदिका	जिणसासणु अवधारि	३७	भैरव पद्मावतीकल्प (नवाब)
५९	वर्द्धमान विद्यास्तव	आसि किल ठुत्तरसय	१७	वर्द्धमानविद्याकल्प
६०.	चतुर्विंशति जिनस्तव	आनन्दसुन्दर	२९	जैनस्तोत्र समुच्चय में निर्नामिक
६१.	वीरजिनस्तव चित्रमय	विश्वश्रीविधुरच्छिदे	२१	जैन स्तोत्र समुच्चय

जैनप्रभीय अप्रकाशित स्तोत्र

क्रमांक	नाम	आदि पद	पद्यसंख्या
१	मगलाष्टक	जितभावद्विषां	८
२	पञ्चपरमेष्ठिस्तव	परमेष्ठिन सुरतरु-	७
३	द्वित्रिपञ्चकल्याणकस्तव	पद्मप्रभ प्रभोर्जन्म	२५
४	युगादिदेवस्तव	मेरौ दुग्धपयोधि	३३
५	चन्द्रप्रभचरित्र	चंदप्पह-चदप्पह	२२
६	शान्तिनाथाष्टक (पारसीछ्पा)	अजि कुदु काफु जुनूवि	८
७	पार्श्वजिनस्तव	श्रीपार्श्व श्रेयसे भूयाद्	४४
८.	,, (फलवर्द्धि)	जयामलश्रीफलवर्द्धि पार्श्व	२१
९	,, ,,	श्रीफलवर्द्धि पार्श्व	९
१०	,, (षड्ऋतु वर्णन)	असमसरणीय जओ	७
११	,, (उवसग्गहर-स्तोत्र पादपूर्ति)	पणमिय सुरनरपूइया	२२
१२	तीर्थमालास्तव	चउवीसपि जिणिदे	१२
१३.	विज्ञप्ति	सिरिवीयरायदेवाहिदेव	३५
१४	सुधर्मस्वामी स्तोत्र	आगमत्रिपथगाहिमवन्त	२१
१५	४५ नामगर्भित आगमस्तव	सिरिवीरजिण सुयरयरोहण	११
१६	परमतत्त्वाववोधद्वात्रिंशिका	धर्मधर्मान्तर मत्वा	३२
१७	कालचक्रकुलक	अवसप्पिणी उसप्पिणि	३४
१८	हीयाली	अकुलु अमूलु अ	४

परिशिष्ट जिनप्रभसूरिपरपहागीत (जिनप्रभसूरिगीत, जिनदेवसूरिगीत)

(१) मङ्गलाष्टकम्

जितभावद्विषा सर्वविदा तत्त्वार्थदर्शिनाम् ।
त्रैलोक्यमहिताह्लीणामर्हतामस्तु मङ्गलम् ॥ १ ॥
कृत्स्नकर्मक्षयावाप्तमुक्तिसाम्राज्यसम्पदाम् ।
गुणाष्टकैश्वर्ययुपा सिद्धानामस्तु मङ्गलम् ॥ २ ॥
पञ्चाचारसमृद्धाना सुतजीवातुवेदिनाम् ।
भवच्छिदामाचार्यणा श्रीमतामस्तु मङ्गलम् ॥ ३ ॥
वाचकाना जिनवच -पीयूपरसतृष्णज ।
भव्यान् सूक्तिसुधावर्षै प्रीणतामस्तु मङ्गलम् ॥ ४ ॥
साधूना सिद्धिसम्बन्धी-लीलालालसचेतसाम् ।
सम्यग्ज्ञानक्रियावद्धो-द्यमनोमस्तु मङ्गलम् ॥ ५ ॥
जिनागमगजेन्द्रस्य स्याद्वादकरशालिन ।
रहस्योत्सर्गदन्ताभ्या शोभितस्यास्तु मङ्गलम् ॥ ६ ॥
कुतीर्थिमत्तेभहरे पूजितस्यार्हतामपि ।
चतुर्विधस्थानधस्य श्रीसघस्यास्तु मङ्गलम् ॥ ७ ॥
मङ्गलस्तोत्रमगल्य प्रदीपस्यास्य दानत. ।
येऽर्चयन्ति जिनान् भक्त्या ते स्यु प्राप्तजिनप्रभा ॥ ८ ॥

इति मङ्गलाष्टकम् ।

[अभयसिंह ज्ञान भडार पो १६ गु २१८ पृ २२३]

●

(२) पञ्चपरमेष्ठिस्तवः

परमेष्ठिन सुरतरू-निव नुतविदितत्रिविष्टपावस्थान् ।
पञ्चापि सदा पत्रान् सुमन. प्रियसौरभान् सफलमुक्तीन् ॥ १ ॥

(४) युगादिदेवस्तवः

(शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः)

मेरौ दुग्धपयोविवा प्लवमिषाज्जन्माभिषेके ध्रुवं
यत्कीर्त्तिप्रकरा प्रसस्तुरभितो लोकत्रयी लङ्घितुम् ।
नैव क्वापि कदापि युष्मदपर स्वामी करिष्याम इ-
त्यङ्गस्पर्शनत प्रणीतशपथास्त नाभिसूनु स्तुम. ॥ १ ॥
पुण्यश्रीसुरभेरभीप्सिततरा चारि प्रदातु किमु
प्रत्याग्राहरितालिकाङ्कुरततिर्न्यस्ता तप सम्पदा ।
यस्याशस्थलयोश्चकास्ति चिकुरश्रेणी कृपाणी रुचि.
स श्रीमानृषभप्रभु प्रभवतु प्रद्रोग्धुमेनासि न ॥ २ ॥
वस्तु प्राप्य किमप्यपूर्वमनघा दद्युर्गुरुभ्योऽङ्गजा
प्रागित्यार्यकुलक्रमानुसरणाद्योऽनर्घरत्नोपम् ।
मात्रे कौशलिका व्यधत्त विविधक्लेशार्जित केवल
सद्य सद्यतु नाभिनन्दनविभुर्विद्यामविद्या मम ॥ ३ ॥
मामेवैक्षत पूर्वमस्य जननी स्वप्ने गजादीन् पुन
पश्चादित्यभजद् भवन्तभृषभ सौभाग्यदर्पा ध्रुवम् ।
जातस्थामतया वुरधरतया गत्याजितस्त्याजिता-
हङ्कार' शरणी चकार भगवस्त्वामेव चाङ्कच्छलात् ॥ ४ ॥
त्वा वीक्ष्योभयलोकभोग्यफलद स्व चैहिकर्द्धिप्रद
पङ्क्ति कल्पमहीरुहास्तव गुणाधिक्येन सप्रेरिता ।
एकैकं निजपल्लव नखमिषात् कृत्वार्चनं त्वत्पदो-
र्मोघं मन्यतया जिन त्वदुदये जग्मु' किलादृश्यताम् ॥ ५ ॥
त्वत्सेवा विनमेर्नमेश्च करतो पातालपातालस-
त्तोप खेचरचक्रिता निरवपद्यस्मादसौ निश्चितम् ।
त्वा साक्षात्तदसिद्धयेप्युभयत. सङ्क्रान्तमेक्ष्यानुमा
हृद्या धत्त यदादिमध्यनिवने स्वाम्येव सेव्योऽनयो ॥ ६ ॥

श्रेयासप्रतिलम्भितैर्गजपुरे पीयूषपूरोपमै-
श्चोक्षैरिक्षुरसैर्भरेण भरिते नाथ त्वदीयाञ्जली ।
चण्डाशु प्रतिविम्बित करतल प्राप्त प्रभो केवला-
लोक. पारणयोद्धृते वपुषि ते द्योतिस्म सोसूच्यते ॥ ७ ॥

यत् सर्व महता महद्वच इद सत्यापयन् वत्सर
मानः सज्वलनोऽपि वाहुवलिन पक्षायुरप्यस्फुरत् ।
तत्रास्कन्ददमूढलक्षतरता सार्वज्ञभाजस्तवो-
पेक्षापारमितैव हेतुपदवी कालादिसाचिव्यभाक् ॥ ८ ॥

आषाढे त्रिदिवादभूदवतरस्तिथ्या चतुर्थ्यां शिता-
वष्टम्यां वहुले मघोस्तव जनुर्दीक्षा क्षणौ जज्ञतु ।
कृष्णे फाल्गुनिकस्य तीर्थपतिथावेकादशे केवल
देवैभिस्तु पवित्रता नवमहैर्नीता विनीतापुरी ॥ ९ ॥

पूर्वाह्णे तपसस्त्रयोदशतिथौ शित्या नगेऽष्टापदे
प्रायै. षड्भिरभीचिभे व्रतभृता पवत्या सहस्रै समम् ।
पर्यङ्कासनि तस्थिवानुपगतस्त्व पूर्वलक्षा चतु-
र्युक्ताशीतिमितायुरव्ययपुरश्रीभर्तृभाव विभो ॥१०॥

जित्वा वा लवणोदधि निजवपुर्लावण्यलक्ष्मीभरै-
र्ज्योतिर्द्योतिभुजाचतुष्टयचतुश्चक्रीपदेशेन या ।
तस्माद्दण्डपदेऽग्रहीद्ग्रहपुपानुच्चैश्चतु सख्यकान्
सा त्वद्भक्तिकृतो भनक्ति विपदा चक्राणि चक्रेश्वरी ॥११॥

मामेकाक्ष मुदाहरन्ति मुनय कस्मादितीव क्रुधा
रक्त लोलतरालितारमुदयच्चक्षु सहस्र नृणाम् ।
रक्ताशोकतरुः प्रसूननिकरव्याजेन सदर्शया-
मास व्याहरतो वृषं हतनतारिष्टोपरिष्टात्तव ॥१२॥

नाहारस्तव सस्कृतोऽजनि गुणैरभ्यूषुषो मन्दिर
व्याहारस्तु सुसंस्कृतोऽजनि गुणैर्गेहे यतित्वेऽपि च ।

कल्याणमयशरीरा रुचिरचतु सख्यकान् ता सततम् ।
सर्वक्षमाभृदग्र्या मेरव इव सन्तु हृद्यकूटा न ॥ २ ॥
विधुरवियुक्तमविग्रह-मकर्मक सततगतमनाकल्पम् ।
अच्युतपदेतिरूढ नभ इव सस्तौमि सिद्धिनिकुरम्बम् ॥ ३ ॥
असमानक्रममकरा मुक्तावासा सरस्वतीनिलया ।
आचार्या सज्जनद-त्तरङ्गका. सागरा इव जयन्ति ॥ ४ ॥
पान्तु विनीतागमदा अपव्यपाया अलकृतसुवर्णा ।
दर्शितनयनालीका. शक्रा इव जययुता उपाध्याया ॥ ५ ॥
विरचितकेसोद्धरणो जडाशयानामपास्तकालुष्य ।
अध्युषितो यमकाष्टं साधुगुण कुम्भयोनिरिव जीयात् ॥ ६ ॥
परमेष्ठिपञ्चकमिद जिनप्रभवशसनैकसर्वस्वम् ।
य॰ पठति निर्मलमति सतत शिवसौख्यमश्नुते सततम् ॥ ७ ॥

इति श्रीपञ्चपरमेष्ठिस्तोत्र कृत श्रीजिनप्रभसूरिभि ॥

[अभय जैन ग्रन्थालय ९५२३ प. १ ले. १७वी]

•

(३) द्वित्रिपञ्चकल्याणकस्तवः

पद्मप्रभप्रभोर्जन्म गर्भाधान च नेमिन ।
भवार्ति कार्तिकश्याम-द्वादश्या लुम्पता मम ॥ १ ॥
दीक्षारस्य नमेर्ज्ञान श्रीमल्लेस्ते च जन्म च ।
मार्गस्य शुक्लैकादश्या—मथात्कल्याणपञ्चकम् ॥ २ ॥
ज्ञानश्रिया वासुपूज्यो जन्मना चाभिनन्दन ।
या पवित्रितवान् माघ-द्वियीया सा शुचि श्रिये ॥ ३ ॥
माघश्वेततृतीयाया ययोर्जन्ममहोऽजनि ।
प्रपद्ये शरण पादास्तयोर्विमलधर्मयो ॥ ४ ॥

सुपार्श्व' प्राप कैवल्यं केवल चन्द्रलान्छन ।
यस्या सा व सुखायास्तु कृष्णाफाल्गुनसप्तमी ॥ ५ ॥
श्रीश्रेयासस्य जन्माभूत् ज्ञान श्रीसुव्रतप्रभो ।
यस्या सा वहुला दद्यात् फाल्गुनी द्वादशी मुदम् ॥ ६ ॥
मल्लिर्मुक्तिमुरीचक्रे दीक्षा च मुनिसुव्रत. ।
यत्र सा श्रेयसे भूयात् फाल्गुनद्वादशी सिता ॥ ७ ॥
अजित सभवोऽनत प्रापुर्यत्र पर पदम् ।
चिनोतु साव शुचिता शुचिश्चैत्रस्य पञ्चमी ॥ ८ ॥
अनन्तस्य व्रतं ज्ञाने कुन्थोर्जन्ममहोत्सव ।
वैशाखाद्यचतुर्दश्या नन्द्यात् कल्याणकत्रयी ॥ ९ ॥
वैशाखे विशदाष्टम्या सुमतेर्जननोत्सव' ।
अभिनन्दननाथस्य मुक्तिश्च कुरुता मुदाम् ॥१०॥
भाद्रस्यासितसप्तम्या मुक्तिश्चन्द्रप्र भप्रभो ।
शान्तेश्च गर्भावतर तार वितरता सुखम् ॥११॥
नमेन्द्रचूडारत्नाशु–मञ्जरीपिञ्जरक्रमा ।
जयन्ति जिनशार्दूलास्त्रैलोक्याभयलग्नका ॥१२॥
अजरामरता यान्ति य–पि भव्यजन्तव ।
सा सर्वज्ञमुखाम्भोधि–निर्गतावाक्सुधाश्रिये ॥१३॥
विलेपनं ददानाह्नि—नखाशुघुसृणद्रवै ।
नम्रामराङ्गनास्येषु ञायता व सरस्वती ॥१४॥
इति स्तुता' जिनाधीशा कल्याणैर्द्वित्रिपञ्चभि ।
भव्यात्मना प्रमोदाय श्रीजिनप्रभसूरिभि ॥१५॥

इति द्वित्रिपञ्चकल्याणकस्तुतयः समाप्ता ॥

[अभयसिंह ज्ञान भडार, पो–१६ गु. २१८ प १६६ ले १६वी]

किन्तु द्वावपि मार्दवेन सहितौ सौहित्यदौ द्वावपि
द्वावप्यर्पयतः स्म चामृतसुखास्वाद सदा सेवितु ॥१३॥

दिग्यात्रासु चलद् यदीयपृतनोत्सर्पद्रजो गुण्डित
स्फूर्जत्तूर्यरवाकुलीकृतचेतु सिन्वूच्छलद् वारिभि ।
द्यौरव्यन्तिकवर्तिभास्करकरोत्तप्तैं स्वमक्षालयन्
स श्रीमान् भरतस्त्वदङ्घ्रिकमले भक्त्यालिलीला ललौ ॥१४॥

द्रष्टव्यान्तररामणीयकमुदत्क्षेडापहारि स्फुरत्
सौन्दर्यामृतपूर्णयोर्भुजशिर सौवर्णसत्कुम्भयो ।
स्निग्धश्यामलकान्तिपन्नगपुग रक्षाधिकारे त्वया
वेल्लन् कुन्तलवल्लरीद्वयनिभान्मन्यामहे स्थापितम् ।१५॥

आदौ शिल्पशत द्विसप्ततिकला पष्ठिश्चतुर्भि समा-
युक्ता. स्त्रैणगुणा. प्रजाहितकृते नाथस्त्वयाविष्कृता ।
उत्पन्ने सति केवले तु सुधिया रत्नत्रय देशिन
स्वार्थश्चेतसि गौण एव महता मुख्य परार्थ. पुन ॥१६॥

आरूढन्त कुञ्जर शुचिलसज्ज्ञानक्रियाचामरो
भावारीस्तरसा विजित्य शिरसिच्छत्र त्वदाज्ञा दधत् ।
शिष्याणूस्तव पुण्डरीकगणभृज्जीयात् क्षमाभृत्पति
श्री शत्रुञ्जयभूमिभृद्विरचितो येन स्वनामाङ्कित ॥१७॥

मारिर्वारिहुताशनो द्विरसनः पञ्चानन कानन
शाकिन्य पलभुक्कुल परवल पाटच्चर. मिन्वुर ।
कारागारगरग्रहामयमहीपाला कराला अपि
त्वत्पादस्मृतिमादरान् परवश नेतर्न नेतुं क्षमा ॥१८॥

त्वद्देहप्रभया विजित्य कनक रम्यत्ववादस्थले
वर्णाविक्रयचिराविरूढमिव तत् पानीयमुत्तारितम् ।
नून निष्कमिति प्रथा तदगमल्लोकेऽमुना हेतुना
कं पाथ समुदाहृत तदभितो निष्क्रान्तमस्मादिति ॥१९॥

दीप्राक्षीयित निश्चयव्यवहृतिर्भाति क्रियाज्ञप्तिस-
द्दंष्ट्राढ्यो नयकेसरप्रसरवान् स्याद्वादपुच्छच्छट ।
प्रोद्यद्युक्तिनख· कुतीर्थिकरिणा जैत्र स्फुरद्देशना-
जिह्व सूरिमतिस्थलीषु विचरन् सिद्धान्तसिंहस्तव ॥२०॥

दिव्यालङ्कृतिभूषित द्युपतिना क्लृप्ताभिषेकोत्सव
त्वा वीक्ष्योद्गतविस्मयैर्मिथुनकैर्न्यस्तानि हस्तद्वये ।
पादावेव तवासिचन् पुटकिनी पत्राणि वा पूरिता-
न्याकारैक्यजपङ्कजभ्रमभुव सा जात्यरागादिव ॥२१॥

यद्राज्यं भरतेश्वराय ददुषी मह्य तु निर्ग्रन्थता
तुष्टिस्ते ननु वल्लभोऽस्मि तव तन्मन्ये सुतादप्यहम् ।
सार वस्तु विभु. प्रियाय हि दिशेद्राज्य स्वसार यत-
स्तत्त्यक्त्वा तृणवद्भवानचकल नैर्ग्रन्थ्यमेव स्वयम् ॥२२॥

सान्द्रामोदविलासवासितदिगाभोगा नभोगामिभि-
र्मुक्तासुस्मितपुष्पवृष्टिररुचद्व्याख्यानभूमौ तव ।
त्वत्संत्रासजुष: प्रसूनधनुष स्रस्तेव हस्तोदरात्
प्रासूनीशरसंहतिस्त्रिभुवनं चक्रे यया प्राग्वशम् ॥२३॥

वाच्यावाच्यसदृग्विरूपसदसन्नित्यक्षयित्वात्मक
सद्द्रव्यास्तिक-पर्ययास्तिकनयस्याद्वादमुद्राङ्कितम् ।
विश्व वस्तुनयप्रमाणघटयोत्पादव्ययध्रौव्ययुक्
त्व व्रूषे स्म सता यथा कुनयिभि स्वप्नेऽपि नाप्त तथा ॥२४॥

यद्भानुर्दिनमात्रदीप्तिकलिता नक्तदिवद्योतिना
स्पर्द्धा वन्ध्यमय व्यधत्त भगवन् सार्द्धं प्रतापेन ते ।
गुप्त गुप्तिगृहे व्यधारि विबुधैर्भास्वन्मणीकुट्टिम-
व्यास्योर्वीप्रतिविम्बकैतनधरस्तेनागसा मन्महे ॥२५॥

त्वामुच्चैरनमाननक्रमकर शौर्याश्रय मत्सर-
त्यक्तं सज्जनदत्तरङ्गमुदयन्मुक्तालयश्रीजुषम् ।

त्राणार्थं भुवनेश्वर वहुलहर्यन्वास्यमान जिना-
हार्यापत्शतकोटिपानचकितोऽम्येति क्षमाभृद्गण ॥२६॥

मुक्ताहारतया तवाब्दमधिक योऽभूद्विहार क्षितौ
मुक्ताहारतया सहृद्युपदधे चारित्रलक्ष्म्या निजे ।
दुर्मेघान्यपि वत्सरेण भवता 'जन्मदानैकधी-
रादाने पठिनीकृतो निजकरो दानप्रवृत्त्यै सताम् ॥२७॥

प्राप्त पाणिरय प्रतिग्रहमहाविद्याब्धिपार प्रभो-
रद्येति प्रमदप्ररूढपुलकाकूरागशृङ्गारिभि. ।
भावत्कादिमपारणावधिदिने भक्त्यासुरैर्भासुरै
प्रादुर्भावितपञ्चदिव्यमिषतश्चक्रेऽस्त एवोत्सव ॥२८॥

भेजुर्भद्रकता भृशोपि भवतो यन्मौनिनोपीक्षणा-
द्बीजाधानमभूच्च तेपु भवत' सद्देशना भो विना ।
सर्वोप्येष तवैव दैवतत्कृतश्लोकत्रिलोकप्रभो-
माहात्म्यातिशय सुधारसमय. प्रध्वस्तपापोदय ॥२९॥

त्वच्चैत्यप्रणिनसया तव पदन्यासै पवित्रस्य ये
देवाष्टापदभूभृतोऽष्टपदिका क्रामन्ति पङ्क्त्या नरा ।
अष्टानामपि कर्मणा ददति ये पाद शिरस्सु ध्रुव
जायेरन्नचिराच्च निर्वृतिपुरी साम्राज्यलक्ष्मीभुज ॥३०॥

निर्वेदोऽ[प्य]सि नाभिभू स्मरहरोऽप्यालम्वसे नोग्रता
कस नो पुरुपोत्तमोऽपि कलयस्यार्योऽपि नार्यादृत ।
त्व सोमोपि यमी कृतान्तजनक श्रीदोऽपि वित्तापहृत्
जायास्तीर्थपते चिरायवि[ग]तच्छद्मापि मायानिधि ॥३१॥

श्रीनाभेय विभु पदाननदृभु त्रैलोक्यरक्षणी प्रभु
नीरन्ध्रावृजिनप्रभु कृतशुभ श्रेय श्रियो वल्लभम् ।
स्तुत्वेत्यादिकृत मयार्जिसुकृत यत्तुङ्गताऽलकृत
भव्यानामसम समुज्ज्वलतमस्तेनास्तु सौख्यद्रुमः ॥३२॥

सुधीजनश्रोत्रसुधासुगन्ध. शार्दूलविक्रीडितवृत्तबन्ध. ।
सतामयं भावरिपुद्विपेषु शार्दूलविक्रीडितमातनोतु ॥३३॥
इति श्रीयुगादिदेवस्तवन श्रीजिनप्रभसूरिविरचितम् ॥
[अभय जैन ग्रन्थालय ९५२१ पृ० १ ले० प्र० "स० १४८६ वर्षे"]

(५) चन्द्रप्रभ-चरित्रम्

चदप्पह ! चदप्पह !, पणमिय चरणारविंदजुयल ते ।
भविय सवणामयपवं भणामि तुह चेव चरियलव ॥ १ ॥
धायइसडे दीवे अहेमि त मगलावईविजए ।
मुणिरयण ! रयणसचयपुरम्मि सिरिपउमनरनाहो ॥ २ ॥
सुगुरुजुगवरपासे निक्खमिउ चिणिय तित्थयरनाम ।
तुममुप्पन्नो पुन्ननिहि ! वेजयते विमाणम्मि ॥ ३ ॥
तत्तो इह भरहद्धे चविउं चदाणणाइ नयरीए ।
महसेनराय-पणयिणि-लक्खणदेवीइ कुच्छसि ॥ ४ ॥
चित्ताऽसियपचमि निसि त चउदससुमिणसूइओ नाह ! ।
अवयरिओ तिन्नाणो सयलिंदनिवेइयवयारो ॥ ५ ॥
पोसाऽसियबारसि निसि विच्छियरासिमि सामि ! सोमको ।
कासवगुत्ते जाओ तं सारयससहरच्छाओ ॥ ६ ॥
छप्पन्नदिमाकुमारी-चउसट्ठिसुरिंदविहियसक्कारो ।
उज्जोइय-भुवणयलो तुह जम्ममहो य सक्कउहो ॥ ७ ॥
जणणी पइ गब्भगए अकासि जं चदपाणदोहलयं ।
चंदप्पहु त्ति त तुह विक्खायं तिहुयणे नाम ॥ ८ ॥
सड्ढधणुसयपमाणो अड्ढाइय पुव्वलक्खकुमरत्ता ।
सड्ढे छपुव्वलक्खे चउवीसगे य रज्जसिरिं ॥ ९ ॥
परिवालिय लोयतिय-विबोहिओ वरिसकयमहादाणो ।
सिविया मणोरमाए सहसववणम्मि छट्ठेण ॥१०॥

नरवइसहस्समसहिओ चरमवए चरणमेगदूसेण ।
पोसस्स वहुलतेरसि अवरण्हे ते पवज्जेसि ॥११॥

तक्खणमणनाणजुओ अकासि तं पउमसडनयरम्मि ।
वयवीयदिणे परमन्न-पारण सोमदत्तघरे ॥१२॥

वोसट्ठचत्ततणुणो नानादेसेसु विहरमाणस्स ।
भयव ते मासतिग अहेसि छउमत्थपरियाओ ॥१३॥

सहसववणे पडिमाठियस्स छट्ठेण नागतरुहिट्ठे ।
तुह फग्गुणाइसत्तमि पुवण्हे केवल जाय ॥१४॥

अहसढ्ढदुल्लक्खमुणी वीससहस्सूण-लक्खचउ समणी ।
तिनवइ गणा गणहरा अढ्ढाइयलक्खवरसढ्ढा ॥१५॥

इगणवइसहस्सअहिया लक्खा चउरो गुणढ्ढसढ्ढीण ।
इय गुणरयणमहग्घो जाओ तुह चउव्विहो सघो ॥१६॥

दो-दस-चउदससहसा चउदसपुव्वधर-केवलि-विउव्वी ।
अट्ठसहस्सा पत्तेय-मोहि-मणपज्जवनाणी ॥१७॥

वाईणमत्तसहसा छसयग्गा एस तुब्भ परिवारो ।
तह तुच्छे दुच्छयरा विजओ जक्खो सुरा भिउडी ॥१८॥

अणुराहरिक्ख चउकयकल्लाण गएसु चउजम धम्म ।
चउवीसगूण मय पज्जाउपुव्वलक्ख ते ॥१९॥

दसपुव्वलक्खमव्वाउ पालिउ मुणिसहस्ससहिओ त ।
करिउ णवोपगम मासियभत्तेण सम्मेए ॥२०॥

उदहीण नवकोडी सएसु विगएसु जिणसुपासाओ ।
भद्दवयकसिणसत्तमि सिव गओ सवणरिक्खम्मि ॥२१॥

इय तुह सुचरियलेस थो उ पत्थेमि तुममिम चेव ।
कुण गुणनिहि ! चदप्पह ! जिणप्पभत्ताण परमपयं ॥२२॥

इति श्री चन्द्रप्रभस्वामिचरित्रम् ॥छ॥

[श्री पुण्यविजयजी सग्रह, नवर २३४८ पत्र ५ साइज ११½" × ४¼" शुद्ध लें० १६ वी]

[अभय सिंह ज्ञान भडार पो० १६ ग्र० २१८ प० ११०-१११]

(६) पारसी भाषा चित्रकेण

शान्तिनाथाष्टकम्

[१]

अजि कुद काफु जुनूवि शहरि हथिणापुरगोवनि
वजिपातसाहि विससेणु खिम्मिति ओ राया जेवनि
कौम्यो ऐरादेवि तविहि सीतारा मानइ
जुजि यकि सूहरि षास दिगरि हिम पियरा दानइ
आ दिगरि रोजि पुफ्लसि षुसे दर निगार रवानै निषो
छारिदह वाविअह सदिवइ आषरि सौ विनइ हमो ।

[२]

नेकिस्पे नरगाउ पीलि दरियाउ निशाना
वा नर्गिसि पुरु हौदु कुम्कु उजूलू सदियाना
शमस कमर पुरु सुवो दिगरि मोहरिंसा तूदा
कसरि अजनित्फिमारिष्टिगा सेरि आतसि रुषसिंदा
गह सुवुह्व सुदा वेदार सुद्दु, रल्फु गुल्फु वरिसूइ षो
माविनी ज्वाव दीदौमि सौ चि सवइ षोदिह काम गो ।

[३]

पातसाहि विससेणु पेसि अइरादिवि गोयइ
पिसरि तु हमचो सवइ मुलुकि दुनिए उर जेवइ
विस्नी दो चो चिनी कवी षुसि सुदु दिलि पासा
दमलु नेकि परवरइ निको सीरति मे वासइ
चू हल्फु रोजि नुह्व माह्व सुदु, शव दुपास दरि पुल्फि गह
विहतरी वल्फि तालिहि निको, पिसरि जादु उ हम चु मह ॥

[४]

दरं सहरि मक्कूर राख्सि शादी इवि कउदनि
कुव्वा जाइ पि जाइ तवल तुहु गाना विजनि
मीर मुकद्दम साहि दरा शादीहरिक्यामा
पातसाहि विससेणि दादु हमगा रा जामा
द्वाज्द हमि रोजि सुद्दु नामि उर, सतिनाथु ब्वामदि महं,
वुजुरुकु सुदे सिस्तो तप्ति, मुलुकु विरानइ दरिजहा ।

[५]

गौहरि पाक दुहल्फु गजि तुहु जरि पेरा वा
फदलि कुननि फेरिष्टिगा शाजूदह जारि हमा वा
सस्तुष्यरि हज्जारि कौमि दरि हमि निकोतरि
लख हुष्टादु छहारि पीलि व अस्पि व अस्तरि
शशिनवदु क्रोडि दिहहा मिही कियासि पयादा हम चुनी
अउलाति सी उदु हजारि ओ राया पि हम व हम दुनी ॥

[६]

रोजि दिगरि दानिस्तु नेसि हिचि दरी जमाना
हरि चि ईसाति नुमाइ अवियक साति न माना
सदका दादा गिरिल्फुजरी दीनार न नुकरा
यक कुरोडि लख हुप्टि दिहइ हररोजि कदरे
से सदु व हुष्टि हुष्टा कुरोडि हुष्टा लख यकि सालि दादु
ईं चुनी मुलुकि दौलति चिनी, तरकि गिरिल्फा सेष सुदु ॥

[७]

हल्फु तवक आसमा जमी हर हल्फु मुदोवारी
वीनइ हमचु चरागु हचि दरि दुनी मुनौवरि
मे दानैं दरि गैवि हमा मुस्किल हल विकुनैं
रहनुमाई गुमरहा तवह वजगारी विजनइ

ई चुनी सक्लित आषरि उमरि दरि सवावि सालहा सुदु
अल उमरि चूकि पि तमामि सुद्, भिष्टि रल्फु एमिना सुदु ।

[८]

नामि तुष्वामदि सतिनाह हरि कि से कि गोयदु
हमा चीजि उर सवइ फुल्लुइब्वुनो वुगोयदु
अजि सेवस्ता गहिल कु उ पज्या उ सलामति
खाना विरसादारि पि हम इज्जति जरि दौलति
मिजुम्लै गुनहा वकसिमे वुकु रहमलुरुफु इं कदरि
अजि अदावि दुनीए निगहदारि, मरा भिष्टि वरियो वुवरि ।

[९]

अजि तेरीष मुहम्मद सन खमस व तिसईन सित्त मिय ।
फितिरीदी शशिमिसरा कउदामु दौलती वामी ।।

इति पारशीभापा चित्रकेण श्रीशान्तिनाथाष्टकम् ।

[अभय सिंह ज्ञान भडार, पो १६ ग्र २१८ पृ १४३-१४२. ले १६ वी]

•

(७)पार्श्वस्तव:

श्रीपार्श्व श्रेयसे भूयादलितालसमानरुक् ।
अनन्ता संसृतिर्येन दलिताऽलसमानरुक् ।। १ ।।
अज्ञा न मे दुरध्वान्तकारिणस्त्वद्गुणानलम् ।
अज्ञानमेदुरध्वान्त–भानोऽभिष्टोतुमीश गी ।। २ ।।
तथापि नुन्नोन्तर्भक्तिरहसा महितायते ।
गुणलेश स्तवीम्युच्चैरहसामहिताय ते ।। ३ ।।
अपारे कामरागेण भ्रान्तोस्मि भववारिधो ।
अपारेका मरागेण दर्शनेन विना तव ।। ४ ।।

प्राप्येदानी दर्शन ते नरामरसभाजनम् ।
स्पृहयामि प्रभो राज्य न रामरसभाजनम् ॥ ५ ॥
नेच्छा च मेऽप्सरोलोकं सकाममनस प्रति ।
रूचये मुक्तिकान्तापि सका मम न सम्प्रति ॥ ६ ॥
पुण्योदयादक्षमया मुक्त त्वद्दर्शने सति ।
पुण्यो दयादक्ष मयास्वात्मायं परिनिश्चत ॥ ७ ॥
जिनास्यसारससार किं नेदानी वराक रे ।
जिनास्यसारसं सार-मद्य यद्वीक्षत मया ॥ ८ ॥
धन्यास्ते प्रणतास्तुभ्य वासवाऽमेयशक्तये ।
त्रातुं जगत् सर्वगुणा-वास वामेय शक्त ये ॥ ९ ॥
कल्याणगिरिधीरे मे त्वयि चेत् परमेश्वर ।
कल्याणगिरि धी रेमे करस्था सर्वसम्पद ॥ १० ॥
तवाङ्घ्रे लीनदृष्टित्वा-द्दूरीकृततमालभे ।
जीवन्मुक्तिदशा कर्हिदूरीकृततमा लभे ॥ ११ ॥
कमलायतनेत्राभि-रक्षुब्धमनसस्तव ।
कमलायतनेऽत्राऽभिरमेता सदृशो मुखे ॥ १२ ॥
दृष्टे तवमुखे प्रीत्या रजनीश्वरकोमले ।
न निर्वाणपदे स्यास्नु-रजनीश्वर कोऽमले ॥ १३ ॥
अक्षोभ गभीरहितं तवाराध्य वच प्रभो ।
अक्षोऽभग भीरहितं निष्कर्मा लभते पदम् ॥१४॥
पीत्वा वचोऽमृतं तेऽस्तकलि कामधुर्गहितम ।
मेने जनै स्वर्गतरो' कलिकामधुर्गहितम् ॥१५॥
क्रमतामरसद्वन्द्व सेचने तव सादरम् ।
क्रमतामरसद्वन्द्व मामकीन मन सदा ॥१६॥
श्रियस्तवागमो दद्यात् वितता नयशोभित ।
यस्तवेव विदोषत्वाद् वितताय यशोऽभित ॥१७॥

अलं ते पदराजीवाऽभ्यर्चनैकरता. प्रभो ।
अलते पदरा जीवा मुक्तिदुर्गस्त्वय ग्रहे ॥१८॥
वशीचक्रे भवान् मुक्तिमहिला छितविग्रह ।
स्वैर्गुणैस्त्रातराकालमहिलाञ्छितविग्रह ॥१९॥
सदानमस्तपापाय गत्या जितवते गजम् ।
सदानमस्तपापायमेघश्यामाङ्गकाय ते ॥२०॥
यस्त्वामेकाग्रधी स्तौति देवपद्मावतीनतम् ।
इष्टार्थलाभैरऽचिरादेव पद्मा वतीन तम् ॥२१॥
सदान दतिना मोघमाप्य चाश्वीयमुत्र के ।
सदा नन्दति नाऽमोघ त्वद्भक्तिकृतनिश्चया ॥२२॥
ये नम्रास्त्वयि वन्द्यार्मदनागविराज ते ।
तेषा च रूपर्द्धिरतिमदना गवि राजते ॥२३॥
अहीनेन सदारेण सेव्यमान कृपानिधे ।
अहीनेन सदा रेण दून पाह्यातरेण— ॥२४॥
हित्वा तरारीस्त्वदाज्ञाविद्यास्मरणभूपिता ।
जयलक्ष्मी वयं नाथ विद्यास्म रणभूपिता ॥२५॥
नमो हरगजेनब्रह्मगक्रादीनपि जिष्णुना ।
न मोहराजेन ब्रह्मयोनये विजिताय ते ॥२६॥
य स्यात् त्वत्पादपद्मार्चारुचिरजितमानस ।
सर्वत्र लभते सौख्यं रुचिर जितमान स ॥२७॥
सर्वकपायमोहेलापतये द्रुह्यतस्तव ।
सर्व कपायमो हेलाग्रामराहूपमं वच ॥२८॥
सरस्वती पातु तवोपदेशामृतपूरिता ।
यत्प्रभावाज्जनैर्मुक्तिपदेशामृतपूरिता ॥२९॥
कामदे हतमोहेऽलिनीलवर्णे नतास्त्वयि ।
कामदेह तमोहेलितुल्ये नाऽश्नुवते श्रियम् ॥३०॥

स्वर्गयति यशो विश्वप्रकाश ते मरीचय ।
यस्याग्रे नैव शीताशो प्रकाशन्ते मरीचय. ॥३१॥
दर्पकोपरताऽऽयासच्छिदे मुनिगणाय ते ।
दर्पकोपरतायास स्पृहयालुर्नक. खलु ॥३२॥
कल्याणाना पचतय मुद्यत्कुवलयद्यु ते ।
कस्य न प्रीतये जातमुद्यत्कुवलयद्युते ॥३३॥
कमलाक्ष तपस्त्यागश्रीभुजग जिनेश्वर ।
कमलाक्षतपस्त्या गस्तिमिराऽर्कपुनीहि माम् ॥३४॥
त्वदानन जगन्नेत्रमुदारामघनोदकम् ।
निर्मिमीता मम प्रीतिमुदारामघनोदकम् ॥३५॥
यैस्त्व क्षतो मन. कृत्वा प्रमदाभोगभागिन ।
भवेयुर्दिवि ते दिव्यप्रमदाभोगभागिन ॥३६॥
नाथ वाऽरितमोहंस मुक्तशर्मापि दुर्लभम् ।
नाथ वारितमोहस्त्ते पामकलुपात्मनाम् ॥३७॥
युग्मम्
आनन्दतो यदऽच्छाय जन्तुजात ननाम ते ।
आनन्द तोयदच्छाय मुक्तिश्रोस्तत्र रागिताम् ॥३८॥
येन त्वदागम. स्वामिन् स्याद्वादेनोपराजित. ।
निर्णीत स कुतीर्थ्याना स्याद् वादे नो पराजित ॥३९॥
स्मरामि त्रस्यते भव्यसमूहायाऽभयप्रदम् ।
स्मरा मित्रस्य ते भव्यश्रिया धाम पदद्वयम् ॥४०॥
भव्यहृत्पक्षिणा वासक्षणदानाय काननम् ।
त्वा पर्युपासते धन्या क्षणदानायकाननम् ॥४१॥
जननव्यसनाधीर श्रीवामेय भवे भवे ।
जननव्य सना वीर भूया. स्वामी त्वमेव मे ॥४२॥
त्वद्गुणस्तुतिरऽभोदकान्ते यमकहारिणी ।
भव्यानवतु विशाना कान्तेयमकहारिणी ॥४३॥

इति प्रभो ते स्तवनं पठन्ति ये मुक्तिश्रिय प्रेत्य लुठन्ति ते हृदि ।
जिन प्रभा चार्य्यमभाति शायिनी जागर्ति तेषामिह पण्डितव्रजे ॥४४॥

इति श्रीपार्श्वनाथ स्तवनम् ॥

[अभय जैन ग्रन्थालय ९५२६ प० १ ले० १६वी शुद्धतम]

●

(८) फलवर्द्धिपार्श्वस्तवः

जयामल श्रीफलवर्द्धिपार्श्व पार्श्वस्थनागेन्द्र पृथुप्रभाव ।
भावल्लरीचेष्टितदिग्वितान तानर्चयाम स्तुवतेऽत्र ये त्वाम् ॥ १ ॥
दूरस्थितोऽपि स्मृतिवर्त्मना त्व–मारोपित सन्निहितत्वमुच्चैं ।
पिपर्षि चिन्तामणिवन्नराणा पर सहस्रा अभिलाषभङ्गी ॥ २ ॥
दुरुत्सहम्लेच्छहृत प्रतापी कृतान्यतीर्थे कलुषैककोशे ।
कुतूहलोत्तालहृदस्तवैव कलौ कलामाकलयन्ति सन्त ॥ ३ ॥
विस्फोटकश्लेष्मसमीरपितृ–लूताज्वरश्चित्रभगदराद्याः ।
त्वद्ध्यानसिद्धौषधबुद्धबुद्धि न व्याधयो वाधितुमुत्सहन्ते ॥ ४ ॥
शुकच्छदाभैस्तव देहभासि––रालिङ्गिताङ्गी प्रणता विभान्ति ।
सवीय वर्मा य समाहवो यो––घता सम मोहमहीभुजे वा ॥ ५ ॥
केऽनन्यसामान्यकृपाकृपाणी छिन्नातुरार्ति स्पृहणीयमूर्तिम् ।
त्वा भूर्भुव स्वस्त्रयगीतकीर्ति सवासनोल्लासमुपासते न ॥ ६ ॥
सिंहोभ वैश्वानरवैरिवार दस्यूदकाशीविषजन्यजन्यै ।
वैतालभूपालभवैश्च कश्चिन्न स्पृश्यते नान्यभयै श्रियस्ताम् ॥ ७ ॥
त्वदाननेन्दुद्यु तिसंप्रयोगाद् विवेकिना लोचनचन्द्रकान्तौ ।
प्रमोदवाष्पोदकविन्दुवृन्द––निष्पन्दभाजामुचित्त भवेताम् ॥ ८ ॥
पश्यन्ति नश्यत् कलिकालखेल निलिम्पलोकायितभूमिगोलम् ।
हर्षाश्रु वर्षामृतसिक्तगात्रा यात्रा महस्ते महनीयभाग्या ॥ ९ ॥

सप्तोपरिष्टात्फणभृत्फणास्तै सता प्रवेशप्रतिषेधनाय ।
एकाग्रपण्णा नरकावनीना द्वारापिधाना इव भान्ति सज्जा ॥१०॥
तवाङ्गरोचिर्जलदै कराह्निनखांशुशपास्फुरितै. परीते ।
शचीशचाप रचयन्ति चित्रा फणामणीना घृणयोऽन्तरिक्षे ॥११॥
तव क्षण नोज्झति पादपद्म पद्मावती तावदिय निरुद्धि ।
तद्यस्य चित्ते वसति क्रत्वसा सान्निध्यमस्या तनुते न चित्रम् ॥१२॥
भव्याश्रभीक्ष्ण भवत· प्रभावै—श्चमत्कृतं यद्वनु ते शिरासि ।
अमान्तमन्त प्रमद शरीरे ममापयन्ते तव वश्यमेते ॥१३॥
तवास्यपद्माङ्कुरतो निपीय निपीय लावण्यरसोतिलौल्यात् ।
भव्यात्मना लोचनचञ्चरीकै-र्मुदप्कदम्भादि न वम्यते न ॥१४॥
अहो मुखेन्दुस्तव कोऽपि दोपा निहन्ति यो यत्र विलोकिते च ।
पद्मानि काम दधति प्रवोध भवेन्न दीनोप्यपचीयमान ॥१५॥
जयत्यपूर्वोभवदाननेन्दुरालोकमात्रेण जिनेश यस्य ।
भवाम्बुराशि परिशोषमेति विकस्वरी स्यु-र्नयनाम्बुजानि ॥१६॥
तवापि माहात्म्यकलाविशेपा केपाचिदुच्चैस्तरपातकानाम् ।
मनासि नाथ व्यथयन्ति दन्ति-दन्तानिवाशुप्रकरा सुधाशोः ॥१७॥
घटा करीणामिव सिंहनादात् प्रालेयपातादिव पङ्कजिन्य ।
त्वद्ध्यानमात्रादपयान्ति पीडा, प्रणेमुपा देहमन समुत्था ॥१८॥
अशान्तिभाजामपि शान्तिशान्त-व्यापादमापादितनेत्र शैत्यम् ।
चैत्य तवा तविमानमान-मानन्दयेत्कं न समेतमेतन् ॥१९॥
तवैव वैवस्वतशासनाति-क्रान्तस्य कान्तस्य विमुक्तलक्ष्म्या ।
भवे भवेदास्यपदं प्रपद्ये यथा तथा नाथ मयि प्रसीद ॥२०॥
इत्थं श्रीफलवर्द्धिपार्श्विभुवने विश्वेन्दिरा नर्त्तकी
नाट्याचार्यजिनप्रभ जनभुजामीशेन सेव्यक्रम ।
श्रेय श्रीपरिरम्भ संभवसुखव्याघातवद्धोद्यमं
विघ्नौघ विनिगृह्य मह्यमुदय विश्राणय श्रेयसाम् ॥२१॥

इति श्रीफलवर्द्धिपार्श्वनाथस्तोत्र समाप्तम् ॥

[अभय सिंह ज्ञानभडार पोथी १६ ग्र० २१८ । प० १५९–१६०] ०

(९) फलवर्धिपार्श्वजिनस्तवः

श्रीफलवर्द्धिपार्श्व–प्रभुमोकार समग्रसौख्यानाम् ।
त्रैलोक्याक्षरकीर्ति लक्ष्मीबीजं स्तुवेऽर्हताम् ॥ १ ॥
नमिऊण तुह पयजुय भत्तीए पासनाह जोइ नरो ।
सिहणिज्ज सनिहाणो विसहरवसहस्स धरणस्स ॥ २ ॥
तुह उवरि जिण फुरता फणिफणरयणिकुराविरायति ।
पाववणडहणपजलिरज्झणानलफुडफुलिगुव्व ॥ ३ ॥
मायावीय कम्म खविउ पत्तस्स परमपयरज्ज ।
सिरिइदविंदवदिय अरहत नमो नमो तुज्झ ॥ ४ ॥
इय मतसरूओ तं जियचिंतारयणकप्पतरुदप्पो ।
हियकुसेसेकोसे निवसतो पूरसिमणिट्ठ ॥ ५ ॥
कलिकु ड-कुक्कडेसर, ससेसर-महुर-कासि-अहिछत्ता ।
थभणय-अजाहर पवर नयर करहेड नागदहो ॥ ६ ॥
सेरीसअ-तरिरक्खमिणिचारुप्पढिपुरी पमुहा ।
दिट्ठा तित्थविसेसा पइ पहु दिट्ठे गुणगरिट्ठे ॥ ७ ॥
तुह नामक्खरजावेण पडिहया जति विलयमुवसग्ग ।
किं गरुडपक्खवाएण पियाऊससंति फणी ॥ ८ ॥
विक्रमवर्षे करवसुशिखिकु १३८२ मिते माघवासितदशम्याम् ।
व्यधित जिनप्रभसूरिस्स्तवमिति फलवर्द्धिपार्श्वप्रभो ॥ ९ ॥

इति श्रीफलवर्द्धिपार्श्वस्तवन समाप्तम् ।

[अभयसिंह ज्ञान भडार पोथी १६ ग्र० २१८ पृ० २२१]

षड्ऋतुवर्णनागर्भित-
(१०) पार्श्वस्तवः

असमसरणीय जओ निरत्तरामोय सुमणमहमहिओ ।
भमरहिओ पियसुहओ जय इव संतुव्व पासजिणो ॥ १ ॥
परिवढि्ढयभूमियसो अहराई उवचाया वचइकरणे ।
वभपहतराभूमी पासजिणो जयइ गिम्हु च ॥ २ ॥
पयडियविज्जुज्जोओ विरइय मे हुन्नइ हरिपमोओ ।
नद उदयाभिरामो पहुपासो पावसुव्वचिरं ॥ ३ ॥
उवसतपकमग्ग विमलियभुवणासय अमलविसय ।
सियपक्खाणदयर सेवह सरय व पासजिण ॥ ४ ॥
परमहिमाकपिय जय जियभुवणाभोगसुहयर विमोह ।
निव्वाणलयघरारुह जयसि तुम पास हेमत ॥ ५ ॥
खोवियारविंदवारो सयलागमपत्त गणहरो जयइ ।
सिसिरुव्व पासनाहो तणुतेयप्पसर हरियासो ॥ ६ ॥
रिउछक्कव न गेण जिणपहसूरीहिं सथुय पास ।
जो सरइ हुति सयय छावि रिऊ तस्स अणुकूला ॥ ७ ॥

इति षट्ऋतुवर्णनागर्भित श्रीपार्श्वस्तवन समाप्तम् ।
[अभयसिंह ज्ञान भडार पो० १६ ग्र० २१८ पृ० २२३-२२४]

●

उवसग्गहरस्तोत्रस्य समग्रपादपूर्तिरूप
(११) पार्श्वजिनस्तोत्रम्

पणमिय सुरनरपूइया, पयकमल पुरिसपुडरीयपास ।
मथवण भत्तिचलणो भणामि भवभमणभीमभणो ॥ १ ॥

उवसग्गहरं पासं पणमह नट्ठट्ठकम्मदढपासं।
रोसरिउभेयपासं विणहियलच्छीतणयवासं ॥ २ ॥
जं जाणइ तेलुक्कं पासं वंदामि कम्मघणमुक्कं।
जो झाइऊण सुक्कं झाणं पत्तो सिवमलुक्कं ॥ ३ ॥
विसहरविसनिन्नासं रोसगइंदाइभयकयविणासं।
मेरुगिरिसन्निकासं पूरिअआसं नमह पासं ॥ ४ ॥
मरगयमणितणुभासं मंगलकल्लाणआवासं।
टालियभवसंतापं थुणिमो पासं गुणपयासं ॥ ५ ॥
विसहरफुल्लिंगमंतं सच्चं निच्चं मणे धरिज्ज तं।
कुणइ विसं उवसंतं भवियाईय मुणह निब्भंता ॥ ६ ॥
पयपणयदेवदणुओ कंठे धारेइ जो सया मणुओ।
सो हवइ विमलतणुओ नामक्खरमंतमवि अणुओ ॥ ७ ॥
तस्सग्गह रोगमारी पराभवं न करेइ दिसभारी।
जो तुह सुमरणकारी संसारी पत्त भवपारी ॥ ८ ॥
तस्सइ सिज्झइ कामं दुट्ठजराजंतिउवसामं।
सथुणइ जोयकामं अभिरामं तुज्झ गुणगामं ॥ ९ ॥
चिट्ठउ दूरे मंतो जो कायइ निच्चमेव एगंतो।
तुह नाम मसभतो सो जाइ लच्छिमइभतो ॥१०॥
न डसइ दुट्ठभोई तुज्झ पणामो वि बहुफलो होइ।
तुह नामेण वि जोई न हवइ न पराहवइ कोई ॥११॥
नरतिरिएसु वि जीवा भमंति नरपयकायरा कीवा।
सामि जिण समयदीवा जो हि तुह न नामिया गीवा ॥१२॥
रिद्धिं आहेवच्चं पावंति न दुक्खदोगच्चं।
जे तुह आणा सच्चं पालंती भावओ निच्चं ॥१३॥
तुह सम्मत्ते लद्धे जीवेण हवइ सासए सिद्धे।
अणुवमतेयसमिद्धे अणंतसुहनाणसंबद्धे ॥१४॥

तुह सुरनरवरमहिए चिंतामणिकप्पपायवब्भहिए ।
पयकमले मलरहिए मइ वसलोव सउ मह सुहिए ।।१५।।
पावंति अविग्घेण जीवा जइदुट्ठदोसवग्गेण ।
न मडिज्जतिय सिग्घेण भवपार विहितविग्घेण ।।१६।।
सासयसुक्खनिहाण जीवा अयरामरं ठार्ण ।
लब्भति तुह पयाण जेमि वट्टइ मणे झाण ।।१७।।
इय सथुओ महायस किर्त्ति दिर्त्ति धिय च महपयास ।
वयणस्य वि जिय पास निन्नासियदूरिय हयअयस ।।१८।।
कलिमलभयरहिएण भत्तिब्भरनिब्भरेण हियएण ।
थुणिओ हिय सहिएण मए तुम कम्मविहिएण ।।१९।।
दा दिव दिज्जवोहि उवेमि ज मायर्यमि तुह गेह ।
कय पावस्सय सोहि कुणसु भवारणभवणोहि ।।२०।।
अवगय पवयणनिच्चद भवे भवे पास जिणचंद ।
तुह पयपकयमयरद भवभसलत्त भवउ मह वद ।।२१।।
सिरिभद्दबाहुरइयस्स जिणपहसूरिहि म सपहाव ।
सथवणस्स समग्गस्स विहिय विवुहाणय पयस्स ।।२२।।

इति श्रीउपसर्गहरस्य स्तवन सपूर्णम् ।

[सवत् १७६४ वर्षे मिती श्रावण वदि १३ दिने लिपी कृत ।।
प० जीवराजवाचनार्थं ।।श्री ।। अगरचदजी लिखित प्रेस कॉपी के आधार से ।

(१२) तीर्थमालास्तवः

चउवीसपि जिणिंदे सम्म नमिऊणाइसरणत्थ ।
जत्ताऽऽराहिय तित्थ नाम सकित्तण कुणमह ।। १ ।।

मेत्तुज-रेवय-च्चुय तारण-सच्चउर-थमणपुरेसु ।
सखेसर-फलवद्धी भरूयच्छाएसु जिणा णमिया ॥ २ ॥
साकेय सत्तातित्थी रयणपुरे नागमहिय धम्मजिणो ।
उज्जेणी खउहसे चक्केसरि उवरि रिसहजिणो ॥ ३ ॥

सावत्थि सभवपहु कोसविपुरि पउमपहसामी ।
सीयलकुथु-पभागे पासजिणो कन्नतित्थमि ॥ ४ ॥
पास-सुपासा वाणा-रमीय पाडलपुरम्मि नेमिजिणो ।
चंदापुरीय चदप्पहो य गगानईतीरे ॥ ५ ॥

काकदि पुप्फदतो कपिल्लपुरम्मि विमलजिणचदो ।
वैभार नग य देवा मुणिसुव्वयवद्धमाणाई ॥ ६ ॥
खत्तियकुडग्गामे पावा नालिद जभियग्गामे ।
सूयरगामि अवज्झा विहार नयरीय वीरजिणो ॥ ७ ॥
मिहिलाए मल्लिनमी उमभजिणो पुरिमतालदुग्गम्मि ।
चपाइ वासुपूज्जो नेमिजिणो सोरियपुरम्मि ॥ ८ ॥

सिरिसतिकुंथुअरमल्लि-सामिणो गयउरमिपुरमहिया ।
अहिछत्त महुर पासो बहुविहमाहप्पभावा सो ॥ ९ ॥
भद्दिलपुर सीहपुरऽट्ठावय सम्मेयसेलपमुहाइ ।
तित्थाइं वदियाइ निक्केवलभावजत्ताइ ॥१०॥
एए तित्थविसेसा जिणपहसूरिहिं वदिया विहिणा ।
मव्वेवि निरुवसग्ग दितु सुह सयलसघस्स ॥११॥
जो धारइ रसणग्गे थवणमिण भावसिद्धिसजणण ।
ठाणट्ठिउ वि पावइ सुतित्थजत्ताफल विउल ॥१२॥

इति श्री तीर्थमालास्तवन समाप्तम् ॥छ॥

[साराभाई नवाव स० १५५८ लि० गुटके से]

(१३) विज्ञप्तिः

सिरिवीरराय देवाहिदेव सव्वनु जणिय जयरिक्ख ।
विन्नवणिज्ज जिणेसर विन्नति मुझ निसुणेसु ॥ १ ॥
सामिय समत्थु जय जतुसत्थनित्थारणे समत्थेण ।
भीभमि भवारन्ने किमह वीसारिउ तुमए ॥ २ ॥

पहु कम्म पयावयणा चउगयभयचक्कमज्झयारमि ।
मही पिढव्व अह हा वहुरूवीकओ वहुसो ॥ ३ ॥
हा पहु मोहनिवेण पावेण पाडिऊण पहुरहिउ ।
अवहरिय सहमावसरि भीम भवचार ए खित्ते ॥ ४ ॥

वेसासिऊ ण सामिय सया विसयवासिएहिं विसएहिं ।
तह ह कइत्थिउ जह अज्जवि पउणो न हा होमि ॥ ५ ॥
हा हा कसायसुहडेहिं ताडिउ तह पमायदडेण ।
तिजयपहु संयम पि हु जह सठाण न हु लहेमि ॥ ६ ॥

तुह विरहे तिहुयणगुरु कयत्थिउ कत्थ कत्थ न हुएहिं ।
रागाइवेरिएहिं अणेग हा हा भवारन्ने ॥ ७ ॥
तुह सामित्ताभावे ज पहु पीडति मह महापावा ।
मिच्छा य पमाय रागा य वेरिणो त न हु विरूव ॥ ८ ॥

जं पुण तुममि संते सरणागयरक्खणक्कमे नाहे ।
वाहिं ति व हु ता पहु हा सरण कस्स गच्छामि ॥ ९ ॥
अहवा को तुह दोसो पहुआणाभगधारण दट्ठु ।
दट्ठु रुद्धति मम पहुमि चित्ते ठिया एए ॥१०॥

तुम्ह चिय किरिभिच्चा मोहाइ अन्नहा कहन्नाह ।
जो सासणे विवट्टइ तुम ह त चेव निवडति ॥११॥
अहह अणिज्जेण मए अकज्ज सज्जेण विगयलज्जेण ।
अवमाणिओ तुमपि हु तिहुयणचिंतामणी देव ॥१२॥

एयावत्त नीउजेहिं गुरु अतरंगसत्तूहिं ।
पोसेमि सामि त चिय हट्ठी मह मूढया महइं ॥१३॥
वसिउ सह गेहिं सयं वेसासिओ मुसति त चेव ।
स गिहाओ उट्ठिउसिहिं अहह कह विज्झवेमि अहं ॥१४॥
ज तुण आणा रहिउ विवहाइ सामि वच्छम्मि ।
पक्खाइ विणा मूढो तुमह उड्डेउ मिच्छामि ॥१५॥
मुचामि नो पमायं पत्थेमि पुणो सुह सरूवाय ।
भक्खिउ मिच्छामि अह तुयरिओ कोपरणेमि अह ॥१६॥
इक्क अकज्जसज्जो अन्न पुण पुक्करे पहु पुरओ ।
गाम पिपीलिवेउ छट्टो पगरेमि वाहरण ॥१७॥
मग्गामि तुम्ह सरण वसामि मोहस्सरायहाणीए ।
अन्नस्स कडीचडिओ अन्नस्स वहेमि घणमाण ॥१८॥
मोहाएहि मुसिओ न नामि देहिं रक्खिय सक्को ।
णीया तुयगमेउ छड्डा विज्जइ कह खरेंहि ॥१९॥
पहुपसभा मथ पाणं तुमाउ पत्ता गय मह पमाया ।
सिरि सुत्तस्स य गच्छइ पहुणा विणयत्तिय अहवा ॥२०॥
अह किं पयासिएण तुह भव भावाविभावमाणस्स ।
माया मह गिह थुणण किरउ किं माउ पुरउवि ॥२१॥
जयवि अह उल्लठो तहा वि मनु वक्खिउ तुह न जुत्ता ।
अम्माप्पिउणो किं पु पहु वाल उज्झति कय हाण ॥२२॥
वम्मह सिरि वद्धाण मोहमहाराय पासवद्धाण ।
रागाइनिरुद्धाण त चिय सरण जए इक्को ॥२३॥
तारिक्खरुक्खहारिणिय अतरगारिगरुय सेनाउ ।
मुत्तूण पुमं सामिय सरण मे नत्थि कोइ जए ॥२४॥
जाणामि सामि सम्म अभग्गसि सिहरो सहावि अहं ।
तह चिय पहु देस सरण मज्झ असरणस्स रहियस्स ॥२५॥

जय जिणनाह न हु तो तुमं अमंवववववोघणिय ।
नो ह कस्स सयासे सरण भुवणम्मि मग्गंतो ॥२६॥

पहु पाय पोय मुक्खो अपारसमारसायरे घोरे ।
जम्मजरमरणजलचरगमणाह भक्खण जाओ ॥२७॥

हा नाह तारय रुदाओ भीमभवसमुद्दाओ ।
तारिउ को सक्को मुत्तूण तुम तिहुयणे वि ॥२८॥

भयव भवाडवीए मइ भमतेण भूरि रिद्धीउ ।
लव्दा उ सुरावेण न चेव तुह दसण पत्तो ॥२९॥

किमए तुम न दिट्ठो दिट्ठोवि न वदिओ सहावेण ।
जेणज्जवि जगवव ववस्स न होइ वुच्छ उ ॥३०॥

कप्पद्दुम्मस्स चितामणिस्स लभाउ अहिय हरिसेण ।
सपइ दिट्ठोसि तुम्म पुव्वज्जियपुन्नजोएण ॥३१॥

जाए तुह सेवाए सिवगण सामि तुह पयविउगो ।
अह न करेमि तय पहु पुण ससारो अहो कट्ठ ॥३२॥

मन्ने न नाह मुक्ख मुक्खेवि मुणिद मुणिय परमत्था ।
पहु पायाण पुरउ जह जाए मे लुठतस्स ॥३३॥

कि वहुणा भणिएण भवमयभीमो भणामि वयणमिण ।
काउ दय दयाउर जत्थ तुम तत्थ मन्नेसु ॥३४॥

इय विन्नत्तो सिरिजिणपहेण पाठेमि जेण परमपह ।
तमि मणोमहलीण निच्च चिय कुणसु वे राया ॥३५॥

कृतिरिय श्रीजिनप्रभसूरीणा विज्ञप्तिका समाप्ता ।

[लि० प्र० "सवत् १५६६ वर्षे फागुण सुदि ५ वुधवासरे । श्रीमज्जवण-कपुरवरे । दोर्दण्डाखण्डलप्राज्यराज्य सुलित्राणशिकर । प्रभुविजये राज्ये । लिखित श्रीमत्खरतरगच्छे श्रीजिनसिहसूरि । श्रीजिनप्रभसूर्यान्वये । श्री-जिनराजसूरिशिष्यहेमकुजरमुनिना । श्रीमालान्वये श्रीभडारीयागोत्रे सा. जिनदेव तत्पुत्र साह जाल्टा पुत्र पवित्रचतुरचित साह श्रीकरमसिह । तस्यात्मज परमप्राज्य सकलकलासौन्दर्यसज्जन चतुर्दशविद्यानिधान । उपाग-विद्याप्रधान । परतक्षमदनावतार मूर्ति निजयशोधवलीकृतकीर्ति । साधाधिपति श्रीश्रीश्रीश्रीनथमल्लेन निजपठनार्थं लिखापित । छ । कल्याणमस्तु ।

(१४) सुधर्मस्वामि-स्तवनम्

(वहुविधच्छन्दोजातियुक्तम्)

आगमत्रिपथगा हिमवन्तं ससृतेर्नतसमूहभवन्तम् ।
नौ समानमभिनौमि सुधर्म-स्वामिन महति मोहपयोधौ ॥ १ ॥

स वर्मिलो नदितधर्मिलोक सा भद्रिला भद्रनिधिर्मुदे नः ।
त्वा सद्गुणेऽजीजनता नतांह्रि सुरासुरैरादरभासुरैर्यौ ॥ २ ॥

प्रादुर्भावक-दिव्यपचकचमत्कुर्वाण सच्चेतसो,
वीरस्यादिमपारणेन वहुलाभिख्य द्विजाद्भाविना ।
श्रीकोल्लाकनिवेशनं कथमपि ज्ञात्वेव पावित्र्यवद्,
तत् स्वामिन्निजजन्मनोऽधिकरणीभाव भवान्नीतवान् ॥ ३ ॥

इह भवत्यसुमान् खलु यादृश
परभवेऽपि म तादृगुतान्यथा ।
इति जिन श्रुतिवाक्यविचारणा-
परशुना तव म शयमच्छिदत् ॥ ४ ॥

सा पूर्नन्दतु मध्यमपापा
यत्र जिनो महसेनवने त्वाम् ।
माधवधवलवलिन्दमतिथ्या
तथ्या सयमसपदमनयत् ॥ ५ ॥

वोध. प्रव्रज्यामान्तिपत्पञ्चशत्या
गाणेश्वर्यश्री सूत्रण द्वादशाङ्या ।
सद्योऽमूदृक्षं भाग्यसामग्र्यमग्र्य
त्वादृक् कोऽन्यत्र क्वापि किं देद्युतीति ॥ ६ ॥

हलास्त्र हर्यरिधरवानमन्तराद्य-
नुत्तरान्तसुरतृतीयवर्ष्मणाम् ।
यथोत्तर विलसति रूपवैभव
ततोऽधिकं गणधरदेव तत्तव ॥ ७ ॥

त्वद्दृब्धैव द्वादशाङ्गी युगेऽस्मिन्
स्याद्वादेन प्रास्यमाना कुतीर्थ्यान् ।
त्रैलोक्याचर्या दीप्यते दीप्रदीप–
प्रख्या मोहध्वान्तविध्वंसनेऽसौ ॥ ८ ॥

यथा पाश्चात्यो द्रु प्रसहमुनिनाथ. किल युग-
प्रधानाना भावी जजनिथ तथा घस्त्वमुदयी ।
गुणाग्रामारामे विचतुरसहस्रद्वयमिता
स्तुते त्वय्येकस्मिन्नपि त इव सर्वेपि विनुता ॥ ९ ॥

भाति ऋपिचक्रवर्तिन् षड्व्रत षट्खण्डभरतनेतुस्ते ।
निधिनवकं नवतत्त्वी रत्नानि चतुर्दशापि पूर्वाणि ॥ १० ॥

पुलाकलब्धि परमावधिर्मन –
पर्यायमाहारक - केवलश्रियौ ।
श्रेण्योर्द्वय निर्वृतिसयमत्रिके
कल्पश्च जैनोयमनुद्यपारमन् ॥ ११ ॥

तमपश्चिमकेवलिन जम्बूनामानमानतमृषीन्द्रै ।
स्वपदे न्ववीविशस्त्वं न परिद्रढयति हि पात्र क ॥ १२ ॥
युग्मम् ।

जैनत्वेऽपि तवास्थैय वेदे कास्त्रपि यत्त्वया ।
'शतायुर्वै पुरुप' इत्युक्ति सत्यापिता प्रभो ! ॥ १३ ॥

पञ्चाशत तव समा. सदने निवास
छद्मस्थता वरद षट्गुणसप्तवर्षान् ।
अब्दानि केवलिविहारवतस्तथाष्टौ
सर्वायुरित्यमभवच्छरद (दा) शत ते ॥ १४ ॥

जनुरभजत फाल्गुनीपूत्तरासु प्रधानद्विजश्लाघनीयाऽग्निवैशायना –
भिजनजलधिचन्द्रमाश्चण्डमार्तण्डतुल्यप्रतापाभिभूताभियातप्रभ. ।
अविगतवति वर्द्धमाने जिनेन्द्रे शिवश्रीपरीरम्भलीला च यः पादपो–
पगमनमुपगम्य वैभारशैले द्विपक्षीमवापाऽपवर्गं स जीयाद्भवान् ॥१५॥

इति प्रभो तें स्तवन पठन्ति ये मुक्तिश्रिय प्रेत्य लुठन्ति ते हृदि ।
जिन प्रभा चार्य्यमभाति शायिनी जागर्ति तेषामिह पण्डितव्रजे ॥४४॥

इति श्रीपार्श्वनाथ स्तवनम् ॥
[अभय जैन ग्रन्थालय ९५२६ प० १ ले० १६वी शुद्धतम]

●

(८) फलवर्द्धिपार्श्वस्तवः

जयामल श्रीफलवर्द्धिपार्श्व पार्श्वस्थनागेन्द्र पृथुप्रभाव ।
भावल्लरीचेष्टितदिग्वितान तानर्चयाम' स्तुवतेऽत्र ये त्वाम् ॥ १ ॥
दूरस्थितोऽपि स्मृतिवर्त्मना त्व–मारोपित सन्निहितत्वमुच्चै. ।
पिपर्पि चिन्तामणिवन्नराणा पर सहस्रा अभिलापभङ्गी ॥ २ ॥
दुरुत्सहम्लेच्छहत प्रतापी कृतान्यतीर्थे कलुपैककोशे ।
कुतूहलोत्तालहृदस्तवैव कलौ कलामाकलयन्ति सन्त ॥ ३ ॥
विस्फोटकश्लेष्मसमीरपितृ–लूताज्वरश्चित्रभगदराद्याः ।
त्वद्ध्यानसिद्धौषधवुद्धवुद्धि न व्याधयो वाधितुमुत्सहन्ते ॥ ४ ॥
शुकच्छदाभैस्तव देहभास्सि—रालिङ्गिताङ्गी प्रणता विभान्ति ।
सवीय वर्मा य समाहवो यो—वता. सम मोहमहीभुजे वा ॥ ५ ॥
केऽनन्यसामान्यकृपाकृपाणी छिन्नातुरार्ति स्पृहणीयमूर्तिम् ।
त्वा भूर्भुव. स्वस्त्रयगीतकीर्ति सवासनोल्लासमुपासते न ॥ ६ ॥
सिंहोभ वैश्वानरवैरिवार दस्यूदकाशीविपजन्यजन्यै. ।
वैतालभूपालभवैश्च कश्चिन्न स्पृश्यते नान्यभयैं श्रियस्ताम् ॥ ७ ॥
त्वदाननेन्दुद्युतिसप्रयोगाद् विवेकिना लोचनचन्द्रकान्तौ ।
प्रमोदवाष्पोदकविन्दुवृन्द—निष्पन्दभाजामुचित्त भवेताम् ॥ ८ ॥
पश्यन्ति नश्यत् कलिकालखेल निलिम्पलोकायितभूमिगोलम् ।
हर्पाश्रुवर्पामृतसिक्तगात्रा यात्रा महस्ते महनीयभाग्या. ॥ ९ ॥

सप्तोपरिष्टात्फणभृन्फणास्तै सता प्रवेशप्रतिषेधनाय ।
एकाग्रपण्णा नरकावनीना द्वारापिधाना इव भान्ति सज्जा ॥१०॥
तवाङ्गरोचिर्जलदै कराह्निनखाशुशंपास्फुरितै परीते ।
शचीशचाप रचयन्ति चित्रा फणामणीना घृणयोऽन्तरिक्षे ॥११॥
तव क्षण नोज्झति पादपद्म पद्मावती तावदिय निरूढि. ।
तद्यस्य चित्ते वसति क्रवसा सान्निध्यमस्या तनुते न चित्रम् ॥१२॥
भव्याश्रभीक्ष्ण भवत प्रभावै—श्चमत्कृत यद्धनु ते शिरासि ।
अमान्तमन्त प्रमद शरीरे ममापयन्ते तव वश्यमेते ॥१३॥
तवास्यपद्माङ्कुरतो निपीय निपीय लावण्यरसोतिलौल्यान् ।
भव्यात्मना लोचनचञ्चरीकै—र्मुदञ्कदम्भादि न वम्यते न ॥१४॥
अहो मुखेन्दुस्तव कोऽपि दोषा निहन्ति यो यत्र विलोकिते च ।
पद्मानि काम दधति प्रवोध भवेन्न दीनोप्यपचीयमान ॥१५॥
जयत्यपूर्वीभवदाननेन्दुरालोकमात्रेण जिनेश यस्य ।
भवाम्बुराशि परिशोपमेति विकस्वरी स्यु-र्नयनाम्बुजानि ॥१६॥
तवापि माहात्म्यकलाविशेषा केपाचिदुच्चैस्तरपातकानाम् ।
मनासि नाथ व्यथयन्ति दन्ति-दन्तानिवाशुप्रकरा सुधाशो. ॥१७॥
घटा करीणामिव सिंहनादात् प्रालेयपातादिव पङ्कजिन्य॰ ।
त्वद्ध्यानमात्रादपयान्ति पीडा, प्रणेमुषा देहमन समुत्था ॥१८॥
अशान्तिभाजामपि शान्तिशान्त-व्यापादमापादितनेत्र शैत्यम् ।
चैत्य तवा तविमानमान—मानन्दयेत्क न समेतमेतन् ॥१९॥
तवैव वैवस्वतशासनाति-क्रान्तस्य कान्तस्य विमुक्तलक्ष्म्या ।
भवे भवेदास्यपद प्रपद्ये यथा तथा नाथ मयि प्रसीद ॥२०॥
इत्थ श्रीफलवर्द्धिपार्श्वभुवने विश्वेन्दिरा नर्त्तकी
नाट्याचार्यजिनप्रभ जनभुजामीशेन सेव्यक्रम ।
श्रेय श्रीपरिरम्भ सभवसुखव्याघातवद्धोद्यमं
विघ्नौघ विनिगृह्य मह्यमुदय विश्राणय श्रेयसाम् ॥२१॥

इति श्रीफलवर्द्धिपार्श्वनाथस्तोत्र समाप्तम् ॥

[अभय सिंह ज्ञानभडार पोथी १६ ग्र० २१८ । प० १५९–१६०]

अलं. ते पदराजीवाऽभ्यर्चनैकरता प्रभो ।
अलंते पदरा जीवा मुक्तिदुर्गस्त्वय ग्रहे ॥१८॥
वशीचक्रे भवान् मुक्तिमहिला छित्तविग्रह ।
स्वैर्गुणैस्त्रातराकालमहिलाञ्छितविग्रह ॥१९॥
सदानमस्तपापाय गत्या जितवते गजम् ।
सदानमस्तपापायमेघश्यामाङ्गकाय ते ॥२०॥
यस्त्वामेकाग्रधीः स्तौति देवपद्मावतीनतम् ।
इष्टार्थलाभैरऽचिरादेव पद्मा वतीन तम् ॥२१॥
सदान दतिना मोघमाप्य चाश्वीयमुत्र के । /
सदा नन्दति नाऽमोघ त्वद्भक्तिकृतनिश्चया ॥२२॥
ये नम्रास्त्वयि वन्द्यार्मदनागविराज ते ।
तेषा च रूपर्द्धिरतिमदना गवि राजते ॥२३॥
अहीनेन सदारेण सेव्यमान कृपानिधे ।
अहीनेन सदा रेण दूनं पाह्यातरेण— ॥२४॥
हित्वा तरारीस्त्वदाज्ञाविद्यास्मरणभूषिता ।
जयलक्ष्मी वय नाथ विद्यास्म रणभूपिता ॥२५॥
नमो . हराजेनब्रह्मशक्रादीनपि जिष्णुना ।
न मोहराजेन ब्रह्मयोनये विजिताय ते ॥२६॥
य· स्यात् त्वत्पादपद्मार्चारुचिरजितमानस ।
सर्वत्र लभते सौख्य रुचिर जितमान स ॥२७॥
सर्वकषायमोहेलापतये द्रुह्यतस्तव ।
सर्वं कपायमो हेलाग्रामराहूपमं वच ॥२८॥
सरस्वती पातु तवोपदेशामृतपूरिता ।
यत्प्रभावाज्जनैर्मुक्तिपदेशामृतपूरिता ॥२९॥
कामदे हतमोहेऽलिनीलवर्णे नतास्त्वयि ।
कामदेह तमोहेलितुल्ये नाऽश्नुवते श्रियम् ॥३०॥

स्वर्गायति यशो विश्वप्रकाश ते मरीचय ।
यस्याग्रे नैव शीतांशो प्रकाशन्ते मरीचय ॥३१॥
दर्पकोपरताऽऽयासच्छिदे मुनिगणाय ते ।
दर्पकोपरतायास स्पृहयालुर्नक खलु ॥३२॥
कल्याणाना पचतयं मुद्यत्कुवलयद्यु ते ।
कस्य न प्रीतये जातमुद्यत्कुवलयद्युते ॥३३॥
कमलाक्ष तपस्त्यागश्रीभुजग जिनेश्वर ।
कमलाक्षतपस्त्या गस्तिमिराऽर्कपुनीहि माम् ॥३४॥
त्वदाननं जगन्नेत्रमुदारामघनोदकम् ।
निर्मिमीता मम प्रीतिमुदारामघनोदकम् ॥३५॥
यैस्त्व क्षतो मन कृत्वा प्रमदाभोगभागिन' ।
भवेयुर्दिवि ते दिव्यप्रमदाभोगभागिन ॥३६॥
नाथ वाऽरितमोहस मुक्तशर्मापि दुर्लभम् ।
नाथ वारितमोहसत्त्वे पामकलुपात्मनाम् ॥३७॥
युग्मम्
आनन्दतो यदच्छाय जन्तुजात ननाम ते ।
आनन्द तोयदच्छाय मुक्तिश्रीस्तत्र रागिताम् ॥३८॥
येन त्वदागम. स्वामिन् स्याद्वादेनोपराजित ।
निर्णीत स कुतीर्थ्याना स्याद् वादे नो पराजित' ॥३९॥
स्मरामि त्रस्यते भव्यसमूहायाऽभयप्रदम् ।
स्मरा मित्रस्य ते भव्यश्रिया धाम पदद्वयम् ॥४०॥
भव्यहृत्पक्षिणा वासक्षणदानाय काननम् ।
त्वा पर्युपासते धन्या क्षणदानायकाननम् ॥४१॥
जननव्यसनाधीर श्रीवामेय भवे भवे ।
जननव्य सना धीर भूया स्वामी त्वमेव मे ॥४२॥
त्वद्गुणस्तुतिरंऽभोदकान्ते यमकहारिणी ।
भव्यानवतु विज्ञाना कान्तेयमकहारिणी ॥४३॥

एयावत्त नीउजेहिं गुरु अतरगसत्तूहिं ।
पोसेमि सामि त चिय हट्ठी मह मूढया महइं ॥१३॥
वसिउ सह गेहिं सय वेसासिओ मुसति त चेव ।
स गिहाओ उट्ठिउसिहिं अहह कह विज्झवेमि अहं ॥१४॥
ज तुण आणा रहिउ विवहाइ सामि वच्छम्मि ।
पक्खाइ विणा मूढो तुमह उड्डेउ मिच्छामि ॥१५॥
मुचामि नो पमाय पत्थेमि पुणो सुह सरूवाय ।
भक्खिउ मिच्छामि अह तुयरिओ कोपरणेमि अह ॥१६॥
इक्क अकज्जसज्जो अन्न पुण पुक्करे पहु पुरओ ।
गाम पिपीलिवेउ छट्ठो पगरेमि वाहरण ॥१७॥
मग्गामि तुम्ह सरण वसामि मोहस्सरायहाणीए ।
अन्नस्स कडीचडिओ अन्नस्स वहेमि घणमाण ॥१८॥
मोहाएहि मुसिओ न नामि देहिं रक्खिय सक्को ।
णीया तुयगमेउ छड्डा विज्जइ कह खरेहिं ॥१९॥
पहुपसभा मय पाण तुमाउ पत्त गय मह पमाया ।
सिरि सुत्तास्स य गच्छइ पहुणा विणयत्तिय अहवा ॥२०॥
अह किं पयासिएण तुह भव भावाविभावमाणस्स ।
माया मह गिह थुणण किरउ किं माउ पुरउवि ॥२१॥
जयवि अह उल्लठो तहा वि मनु वक्खिउ तुह न जुत्त ।
अम्माप्पिउणो किं पु पहु वाल उज्झति कय हाण ॥२२॥
वम्मह सिरि वद्धाण मोहमहाराय पासवद्धाण ।
रागाइनिरूद्धाण त चिय सरण जए इक्को ॥२३॥
तारिक्खरूक्खहारिणिय अतरगारिगरूय सेनाउ ।
मुत्तूण पुमं सामिय सरण मे नत्थि कोइ जए ॥२४॥
जाणामि सामि सम्म अभग्गसि सिहरो सहावि अह ।
तह चिअ पहु देस सरण मज्झ असरणस्स रहियस्स ॥२५॥

जय जिणनाह न हुतो तुम असंवधववबोधणिय ।
नो ह कस्स सयामे सरण भुवणम्मि मग्गतो ॥२६॥

पहु पाय पोय मुक्खो अपारसंसारसायरे घोरे ।
जम्मजरमरणजलचरगणाह भक्खण जाओ ॥२७॥

हा नाह तारय रुदाओ भीमभवसमुद्दाओ ।
तारिउ को सक्को मुत्तूण तुम तिहुयणे वि ॥२८॥

भयव भवाडवीए मइ भमतेण भूरि रिद्धीउ ।
लद्धा उ सुरावेण न चेव तुह दसण पत्तो ॥२९॥

किमए तुम नं दिट्ठो दिट्ठोवि न वदिओ सहावेण ।
जेणज्जवि जगवधव वधस्स न होइ वुच्छ उ ॥३०॥

कप्पद्दुम्मस्स चितामणिस्स लभाउ अहिय हरिसेण ।
सपइ दिट्ठोसि तुम पुव्वज्जियपुन्नजोएण ॥३१॥

जाए तुह सेवाए सिवगण सामि तुह पयविउगो ।
अह न करेमि तय पहु पुण ससारो अहो कट्ठ ॥३२॥

मन्ने न नाह मुक्ख मुक्खेवि मुणिद मुणिय परमत्था ।
पहु पायाण पुरउ जह जाए मे लुठतस्स ॥३३॥

किं वहुणा भणिएण भवमयभीमो भणामि वयणमिण ।
काउ दय दयाउर जत्थ तुम तत्थ मन्नेसु ॥३४॥

इय विन्नत्तो सिरिजिणपहेण पाठेमि जेण परमपह ।
तमि मणोमहलीण निच्च चिय कुणसु वे राया ॥३५॥

कृतिरिय श्रीजिनप्रभसूरीणा विज्ञप्तिका समाप्ता ।

[लि० प्र० "सवत् १५६६ वर्षे फागुण सुदि ५ वुधवासरे । श्रीमज्जवण-कपुरवरे । दोर्दण्डाखण्डलप्राज्यराज्य सुलित्राणशिकर । प्रभुविजये राज्ये । लिखित श्रीमत्खरतरगच्छे श्रीजिनसिंहसूरि । श्रीजिनप्रभसूर्यान्वये । श्री-जिनराजसूरिशिष्यहेमकुजरमुनिना । श्रीमालान्वये श्रीभडारीयागोत्रे सा जिनदेव तत्पुत्र साह जाल्टा पुत्र पवित्रचतुरचित साह श्रीकरमसिह । तस्यात्मज परमप्राज्य सकलकलासौन्दर्यसज्जन चतुर्दशविद्यानिधान । उपाग-विद्याप्रवान । परतक्षमदनावतार मूर्ति निजयशोधवलीकृतकीर्ति । सघाधिपति श्रीश्रीश्रीश्रीनयमल्लेन निजपठनार्थं लिखापितं । छ । कल्याणमस्तु । ©

सेत्तुंज-रेवय-व्वुय तारण-सच्चउर-थमणपुरेसु ।
सखेसर-फलवद्धी भरूयच्छाएसु जिणा णमिया ॥ २ ॥
साकेय सत्ततित्थी रयणपुरे नागमहिय धम्मजिणो ।
उज्जेणी खउहसे चक्केसरि उवरि रिसहजिणो ॥ ३ ॥

सावत्थि सभवपहु कोसविपुरि पउमपहसामी ।
सीयलकुथु-पभागे पासजिणो कन्नतित्थमि ॥ ४ ॥
पास-सुपासा वाणा-रसीय पाडलपुरम्मि नेमिजिणो ।
चंदापुरीय चदप्पहो य गगानईतीरे ॥ ५ ॥

काकदि पुप्फदतो कपिल्लपुरम्मि विमलजिणचदो ।
वैभार नग य देवा मुणिसुव्वयवद्धमाणाई ॥ ६ ॥
खत्तियकुडग्गामे पावा नालिंद जभियग्गामे ।
सूयरगामि अवज्झा विहार नयरीय वीरजिणो ॥ ७ ॥
मिहिलाए मल्लिनमी उसभजिणो पुरिमतालदुग्गम्मि ।
चपाइ वासुपूज्जो नेमिजिणो सोरियपुरम्मि ॥ ८ ॥

सिरिसतिकुथुअरमल्लि-सामिणो गयउरमिपुरमहिया ।
अहिछत्त महुर पासो वहुविहमाहप्पभावा सो ॥ ९ ॥
भद्दिलपुर सीहपुरऽट्ठावय सम्मेयसेलपमुहाइ ।
तित्थाइ वदियाइ निक्केवलभावजत्ताइ ॥१०॥
एए तित्थविसेसा जिणपहसूरिहि वदिया विहिणा ।
सव्वेवि निरुवसग्ग दितु सुह सयलसंघस्स ॥११॥
जो धारइ रसणग्गे थवणमिण भावसिद्धिसजणण ।
ठाणट्ठिउ वि पावइ सुतित्थजत्ताफलं विउल ॥१२॥

इति श्री तीर्थमालास्तवन समाप्तम् ॥छ॥

[साराभाई नवाव स० १५५८ लि० गुटके से]

❁

(१३) विज्ञप्तिः

सिरिवीरराय देवाहिदेव सव्वनु जणिय जयरिक्ख ।
विन्नवणिज्ज जिणेसर विन्नति मुज्ञ निसुणेसु ॥ १ ॥
सामिय समत्थु जय जतुसत्थनित्थारणे समत्थेण ।
भीभमि भवारन्ने किमह वीसारिउ तुमए ॥ २ ॥

पहु कम्म पयावयणा चउगयभयचक्कमज्झयारमि ।
मही पिंडव्व अह हा वहुरूवीकओ वहुसो ॥ ३ ॥
हा पहु मोहनिवेण पावेण पाडिऊण पहुरहिउ ।
अवहरिय सहमावसरिं भीम भवचार ए खित्ते ॥ ४ ॥

वेसासिऊ ण सामिय सया विसयवासिएहिं विसएहिं ।
तह ह कइत्थिउ जह अज्जवि पउणो न हा होसि ॥ ५ ॥
हा हा कसायसुहडेहिं ताडिउ तह पभायदडेण ।
तिजयपहु संयम पि हु जह संठाण न हु लहेमि ॥ ६ ॥

तुह विरहे तिहुयणगुरु कयत्थिउ कत्थ कत्थ न हुएहिं ।
रागाइवेरिएहिं अणेग हा हा भवारन्ने ॥ ७ ॥
तुह सामित्ताभावे ज पहु पीडति मह महापावा ।
मिच्छा य पमाय रागा य वेरिणो त न हु विरूव ॥ ८ ॥

जं पुण तुममि सते सरणागयरक्खणक्कमे नाहे ।
वाहिं ति व हु ता पहु हा सरण कस्स गच्छामि ॥ ९ ॥
अहवा को तुह दोसो पहुआणाभगधारण दट्ठु ।
दट्ठुं रुद्धति मम पहुमि चित्ते ठिया एए ॥१०॥

तुम्ह चिय किरिभिच्चा मोहाइ अन्नहा कहन्नाह ।
जो सासणे विवट्टइ तुम ह त चेव निवडति ॥११॥
अहह अणिज्झेण मए अकज्ज सज्जेण विगयलज्जेण ।
अवमाणिओ तुमंपि हु तिहुयणचिंतामणी देव ॥१२॥

घोऽमुहमसभक्खग कसिणा चिविडा जंति तिरिनरए।
छट्ठुते इगहत्था विलवासी सोलवरिसाउ ॥२९॥
नव नव दु तडासन्ने रहचक्कवाहाण गगसिघूण।
सव्वे विलवाहभरि वेयद्दे आरओ पुरओ ॥३०॥
छव्वरिस गब्भधरित्थी छ सत्त अरए तहेव अट्ठमए।
पुक्खलसवट्टयखीर अमियरसय च मेह हमे ॥३१॥
इक्किक्को सत्तदिणे वरिसेहि तत्थडि वुई पुढवें।
पढमो बीओ धन्न तेह तइउ चउत्थो य ॥३२॥
पोसेइ उ सहिओ तह रस दव्वाइ पचम मेहो।
अह नवमे अरयम्मि य सलाण पुरिसाण ते वट्ठी ॥३३॥
अवुहजणवोहणत्थ(तहा अ) अप्पणो समासेण।
कालचक्कस्स गाहा जिणपहसूरीहिं सठविया ॥३४॥

इति कालचक्ककुलक समाप्त

[ले० १७वी० 'सुखनिखान पठनार्थम्' अभयजैन ग्रन्थालय प्रति २१८४]

•

श्री जिनप्रभसूरि परंपरा गीतम्

खरतर गच्छि वर्द्धमान-सूरि, जिणेसर सूरि गुरो।
अभयदेव सूरि जिणवलह सूरि जिणदत्त जुगपवरो ॥ १ ॥
सुगुरू परपर थुणहु तुम्हि, भवियहु भत्ति भरि।
सिद्धि रमणि जिम वरई सयंवर नव नविय परि ॥ आचली ॥
जिणचन्दसूरि जिणपतिसूरि, जिणेसर गुणनिधानु।
तदनुवुमि उपनले सुगुरु, जिणसिंघसूरिजुगप्रधानु ॥ २ ॥
तासु पाटि उदयगिरि उदयले, जिनप्रभ सूरि भाणु।
भविय कमल पडिवोहवु, मिच्छत तिमिर हरणु ॥ ३ ॥

राउमहंमद साहि जिणि, निय गुणि रजियऊ ।
मेढ मडलि ढिल्लिय पुरि, जिण धरमु प्रकटु किऊं ।। ४ ।।
तसु गछ धुर धरणु भयलि, जिणदेवसूरि सूरिराऊ ।
तिणि थापिउ जिणमेरुसूरि, नमहु जसु मनइ राऊ ।। ५ ।।
गीतु पवीतु जो गायए, सुगुरु—परपरह ।
सयल समीह सिझहिं, पुहविहिं तसु नरह ।। ६ ।।

जिनप्रभसूरीणां गीतम्

के सलहउ ढीली नयरु हे, के वरनउ वखाणू ए ।
जिनप्रभसूरि जग सलहीजइ, जिनि रजिउ सुरताणु ।। १ ।।
चलु सखि वदण जाण्ह गुण गरुवउ जिनप्रभसूरि ।
रलियइ तसु गुण गाहि राय-रजणु पंडिय-तिलउ ।। आचली ।।
आगमु सिद्धतु पुराणु वखाणिइ, पडिबोहइ सव्वलोइ ए ।
जिणप्रभसूरि गुरु सारिखउ हो विरला दिसउ कोई ए ।। २ ।।
आठाही आठमिहि चउथी, तेजवइ सुरिताणु ए ।
प्रह मितु मुख जिनप्रभसूरि चलियउ, जिमिससि इंदुविमणिए ।।३।।
"असपति" "कुतुबदीनु" मनि रजउ, दीठेल जिनप्रभसूरी ए ।
एकति हि मन सासउ पूछइ, राय मणोरह पूरी ए ।। ४ ।।
गामसूरिय पटोला गज वल, तूठउ देइ सुरिताणू ए ।
सूरि जिणप्रभगुरु कपि नई छइ, तिहुअणि अमलिय माणू ए ।। ५ ।।
ढाले दमामा अरु नीसाणा, गहिरा वाजइ तूरा ए ।
इन परि जिणप्रभसूरि गुरु आवइ, सघ मणोरह पूरा ए ।। ६ ।।

श्री जिनप्रभसूरि गीत

उदय ले खरतर गच्छ गयणि, अभिनवउ सहस करो ।
सिरी जिणप्रभसूरि गणहरो, जगम कल्पतरो ।। १ ।।
वंदहु भविक जन जिणसासण, वठ नव वसतो ।
छतीस गुण सजूत्तो वाइय मयगल दलण सीहो ।। आचली ।।

तेर पंचासियइ पोस सुदि आठमि, सणिहिं वारो ।
भेटिउ असपते "महमदो" सुगुरि ढीलिय नयरे ॥ २ ॥
आपुणु पास वइसारए, नमिवि आदरि नरिन्दो ।
अभिनव कवितु वखाणिवि, राय रज्जइ मुणिंदो ॥ ३ ॥
हरखितु देइ राय गय तुरय, धण कणय देस गामो ।
भणइ अनेवि जे चाह हो, ते तुह दिउ इमो ॥ ४ ॥
लेइ णहु किंपि जिणप्रभसूरि, मुणिवरो अतिनिरीहो ।
श्रीमुखि सलहिउ पातसाहि, विविह परि मुणिसीहो ॥ ५ ॥
पूजिवि सुगुरु वस्त्रादि कहिं, करिवि सहिथि निसाणु ।
देइ फुरमाणु अनु कारवाइ, नव वसति राय सुजाणु ॥ ६ ॥
पाट हथि चाडिवि जुगपवरु, जिणदेवसूरि समेतो ।
मोकलइ राउ पोसालह वहु, मलिक परिकरीतो ॥ ७ ॥
वाजहिं पंच सवुद गहिर सरि, नाचहि तरुण नारि ।
इंदु जम गइद सहितु, गुरु आवइ वसतिहिं मझारे ॥ ८ ॥
धम्म धुर धवल सद्यवइ सघल, जाचक जन दिंति दानु ।
सव सजूत वहु भगति भरि, नमहिं गुरु गुणनिवानु ॥ ९ ॥
सानिधि पउमिणि-देवि रम, जगि जुग जयवन्तो ।
नदउ जिणप्रभसूरि गुरु, सजम सिरि तणउ कतो ॥१०॥

जिनदेवसूरि गीत

निरुपम गुण गण मणि निधानु संजमि प्रधानु ।
सुगुरु जिणप्रभसूरि पट उदयगिरि उदयले नवल भाणु ॥ १ ॥
वदहु भविय हो सुगुरु जिणदेवसूरि ढिल्लिय वर नयरि देसणउ ।
अमियरसि वरिसए मुणिवरु जणु ऊनविउ ॥ आचली ॥
जेहिं कन्नाणापुर मडणु सामिउ वीर जिणु ।
महमद राइ समप्पिउ थापिउ सुभलगनि सुभदिवा ॥ २ ॥

नाणि विन्नाणी कला कुसले विद्या वलि अजेउ।
लखण छद नाटक प्रमाण वखाणए आगमिगुण अमेउ ॥ ३ ॥
धनु कुलधरु कुलि तपनु इहु मुणिरयणु।
धणु वीरिणि रमणि चुडामणि जिणि गुरु उरि धरिउ ॥ ४ ॥
धणु जिणसिंघसूरि दिखियाउ धनु चन्द्र गछु।
धणु जिणप्रसूरि निज गुरु जिणि निज पाटिहि थापियउ ॥ ५ ॥
हलि सखे 'हाणउ मोहावणिय रलियावणिय।
देसण जिणदेवसूरि मुणिरायह जाणउँ नित सुणउ ॥ ६ ॥
महि मडलि धरमु समुधरए जिणसासणिहि।
अणुदिण प्रभावन करइ गणवरो, अवयरिउ वयरिसामि ॥ ७ ॥
वादिय मयगल-दलणसीहो विमल सीलधरु।
छत्तीस गुणधर गुण कलिउ चिरु जयउ जिणदेवसूरि गुरु ॥ ८ ॥

"इति श्रीआचार्याणा गीतपदानि"

●